181. Sb. 89.16
SHELF LISTED

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

भाग १६ | जनवरी १९१२ | संख्या ७

नवीन निवेदन।

जो नयापन इस नए वर्ष दिखाई दे रहा है वह इधर बहुत दिनों से नहीं दिखाई दिया था। पुरानी दिल्ली पर नई रंगत चढ़ रही है, नया बंगविभाग हो रहा है, देश में पुराने जड़ भावों के स्थान पर नए सबल और आशापूर्ण भावों का सञ्चार हो रहा है। चारो ओर नवीनता का प्रवाह उमड़ रहा है। फिर इस पत्रिका से कैसे उस छोटे पुराने पिंजड़े में रहा जाता? यह भी अपना आकार फैला नए रंगढंग और साहस के साथ हिन्दी प्रेमियों के बल पर चल पड़ी। अब इसका पथ निर्वाह उन लोगों के हाथ है जो हिन्दी को अपनी भाषा और उसके साहित्य को अपना साहित्य कहते हैं। हम लोगों की इच्छा है कि इसमें वैज्ञानिक, ऐतिहासिक, दार्शनिक तथा साहित्य और भाषा तत्त्व सम्बन्धी निबन्ध विस्तृत रूप से रहा करें। पर इस इच्छा का पूर्ण होना हिन्दी के मर्मज्ञ और सुशिक्षित लेखकों की कृपा दृष्टि पर निर्भर है। अब तक दो चार सज्जनों को छोड़ हिन्दी के लेखकगण इस से दूर ही दूर रहे हैं। कदाचित महात्मा तुलसी दास जी के शब्दों में वे इसकी 'लघुता से भयभीत' थे। पर अब उनके भय का कारण बहुत कुछ दूर कर दिया गया है। इस से पूरी आशा है कि वे अपने पुष्ट विचारों से इस का पोषण करते रहेंगे।

पाठकों और सभासद महाशयों को एक बात ओर ध्यान में रखनी चाहिए कि यह पत्रिका एक साहित्य-संस्था की ओर से निकलती है। इसका प्रधान लक्ष्य लोगों का दिल बहलाना नहीं बल्कि नवीन, जटिल और गंभीर भावों के लिए राह निकाल कर भाषा की उन्नति करना है। अतः जिन दो एक सज्जनों ने इस में जीवनचरितों के प्रच्छन्न अनुवाद और इधर उधर से संग्रह किए हुए आलोचनायी चुटकुले न देख कर पत्र द्वारा अपना कोप प्रकट किया है उन्हें ग्रंथप्रसारकमंडलियों की ओर ध्यान देना चाहिए। हाँ, इतना हम लोग अवश्य स्वीकार करते हैं कि पाठक जुदी जुदी रुचि के होते हैं, सो अब पृष्ठ संख्या बढ़ गई है कुछ इसके मसाले भी रहा करेंगे।

क विद्वानों ने पत्रिका के भाषातत्त्व पुरातत्त्व सम्बन्धी प्रबन्धों तथा साहित्य-समीक्षाओं को बहुत पसन्द किया । सब से अधिक कृतज्ञ हम लोग 'सरस्वती' के बहुज्ञ और विद्वान् सम्पादक महाशय के हैं जिन्होंने समय समय पर पत्रिका के पुरातत्त्व और साहित्य विषयक निबन्धों का बहुत अच्छे शब्दों में उल्लेख करके हमारे उत्साह को बढ़ाया । इस सम्बन्ध में सहयोगिनी 'शिक्षा' को भी उसकी सहृदयता के लिए हम धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकते ।

सभा पर ऋण !

आश्चर्य्य की बात है । जो नागरी प्रचारिणी सभा अठारह वर्ष से नागरी के प्रचार और हिन्दी साहित्य की उन्नति और उसके उद्धार के लिए यत्न करती आ रही है उस पर ऋण ! जिस सभा के १२०० सभासद हों वह ६०००) का ऋण चुकाने की चिन्ता में लगी रहे ! जिस सभा ने आठ दस करोड़ भारतवासियों की इच्छा को पूर्ण करने का भार अपने ऊपर लिया हो उसकी ओर यह उदासीनता ! क्या इन प्रान्तों में ऐसे लोग नहीं हैं जो अदालतों में नागरी के प्रवेश, वैज्ञानिक कोश के संकलन, पृथ्वीराजरासो के संस्करण, पुरानी पुस्तकों के अनुसंधान और प्रकाशन, ऐतिहासिक वैज्ञानिक और दार्शनिक ग्रंथों के निर्माण, सुबोध व्याख्यानों द्वारा समयापेक्षित ज्ञान के सञ्चार को कोई बात समझते हों ? सभा हिन्दी की ओर लोगों के दिन दिन बढ़ते हुए उत्साह और प्रेम को देख कर ही अपने कार्य्यों में अग्रसर हुई थी । सो, अब क्या [य]ह समझ कर बैठ रहना पड़ेगा कि वह एक [म]नोहर भ्रम था । क्या इस ६०००) के बोझ को [इ]स के कारण सभा अपना हाथ पांव नहीं हिला सकती उठा कर दूर फेंकना हिन्दी का प्रचार चाहने वालों के बल के बाहर है ? यदि प्रति सभासद ही पांच पांच रुपए दे तो सभा ऋणमुक्त हो जाती है । पर सभा की प्रार्थना केवल सभासदों ही से नहीं बल्कि समस्त हिन्दीभाषियों तथा हिन्दीपाठकों से है । इतनी बड़ी जनसंख्या से सहायता का स्वत्व रख यदि सभा को अर्थ संकोच हो तो किसका दोष है, नहीं कहा जा सकता । जो लोग नागरी अक्षर और हिन्दी भाषा को काम में लाते हैं, जिन्हें सूर और तुलसी की वाणी प्रेम और भक्ति से गद्गद करती है, जिनके हृदयों पर सूर, बिहारी, देव और पद्माकर का रस लहराता है, जो अपने कर्त्तव्य निर्धारण के समय गिरिधर और रहीम के वचनों को मुंह पर लाते हैं, जो भारतेन्दु की मधुर आभा को प्रेम से स्मरण करते हैं, जो देश भाषाओं द्वारा ही शिक्षा प्रचार का विश्वास रख उनकी समृद्धि चाहते हैं उन सब से हमारी यह प्रार्थना है कि इस ऋण से सभा का गला छुड़ाइए । और उन्हीं लोगों पर हमारा बस भी है । जो हिन्दी को 'स्टुपिड' हिन्दी और 'अभ्युदय' को 'बाबिहूदे' कहते हैं, जिनकी नस नस से देश के चिर पोषित भाव निकल गए हैं, जिन्हें अपनी भाषा पर कुछ भी ममता नहीं, उन से हम कुछ नहीं कहना चाहते । वे अपने विचार में पड़े रहें, क्यों कि,

याञ्चामोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ।

नागरीवर्णमाला का अक्षरविन्यास

स्वरतः कालतः स्थानात्
प्रयत्नानुप्रदानतः ।
इतिवर्णविदः प्राहु-
र्निपुणं तन्निबोधत ॥

संसार भर की वर्णमालाओं से हिन्दी भाषा या नागरी की वर्णमाला का अक्षरविन्यास विचित्र है । अंग्रेज़ी, फ़ारसी आदि भाषाओं की वर्णमालाओं में वाचक वाच्य से पृथक है और एक एक वर्ण का बोध कराने के लिये बहुवर्णात्मक शब्द काम में लाए जाते हैं । जैसे फ़ारसी और अरबी भाषाओं में 'अ' अक्षर का नाम 'अलिफ' है इसी प्रकार अंग्रेज़ी में 'अ' अक्षर का नाम 'ए' ग्रीक में 'अलफ़ा' इसी प्रकार किसी में कुछ और किसी में कुछ । ये नाम स्वतः वर्णों के वाच्य का यथावत् बोध नहीं कराते किन्तु इन से संकेतों का बोध होता है । शिक्षकों को इन के 'वाच्य' को समझाने में बड़ी कठिनाई पड़ती है । यही कारण है कि एक ही भाषा में एक ही अक्षर का उच्चारण लोग भिन्न भिन्न प्रकार से करते हैं । पर नागरी वर्णमाला में संकेत, वाच्य और वाचक तीनों में अभेद माना गया है । इसमें 'अ' संकेत का नाम है, 'अ' ही इसका वाचक और 'अ' ही वाच्य है । यही प्रधान कारण है कि इस लिपि और भाषा के लिखने पढ़ने और सीखनेवाले को बड़ी सुगमता पड़ती है और थोड़े ही परिश्रम से वह इसमें योग्यता प्राप्त कर लेता है ।

देवनागरी लिपि की वर्णमाला का आदि आविष्कार करनेवाला कौन था, इस विषय में मत भेद है । कुछ लोगों का यह मत है कि शिवजी ने पहिले पहिल अपने डमरू से चौदह * सूत्रों को निकाला । कोई कहते हैं कि पाणिनि जी ने 'शिव' से इन सूत्रों † को प्राप्त किया । पर ये सब बातें कल्पनाप्रसूत हैं क्योंकि शाकटायनाचार्य्य के व्याकरण के आदि में भी ‡ प्रत्याहार सूत्र हैं जो पाणिनीय सूत्रों से जिनका नाम माहेश्वर § सूत्र है बहुत कुछ मिलते जुलते हैं । इस से यह अनुमान होता है कि पाणिनिजी ने शाकटायन के प्रत्याहार सूत्रों ही के आधार पर कुछ कतरब्योंत कर अपने सूत्रों को जो पीछे से माहेश्वर सूत्र कहलाये बनाया है । यह तो प्रत्याहार सूत्रों की बात हुई जिन का काम व्याकरणों में पड़ता है। पर प्रत्येक वैयाकरण वा सूत्रकार को अधिकार है कि वह अपने व्याकरण के लिये नये नये प्रत्याहार

---

* नृत्यावसाने नटराजराजो
ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम् ।
उद्धर्तु कामः सनकादि सिद्धा
नेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम् ॥

† येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् ।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ॥

‡ अइउण् । ऋलृक् । एओङ् । ऐऔच् । हयवरलञ् । ञमङणनम् । जबगडदश् । झभघढधव् । खफछठथ चट टतव् । कपय् । शषस् (अं अः ≍क ≍प) र् । हल् ।

§ अइउण् । ऋलृक् । एओङ् । ऐऔच् । हयवरट् । लण् । ञम ङणनम् । झभञ् । घढधष् । जबगडदश् । खफ छठथ चटतव् । कपय् । शषसर् । हल् ।

सूत्र अपने सुबीते के लिये रच ले। इसी के अनुसार भिन्न २ व्याकरणों में भिन्न भिन्न प्रत्याहारसूत्र मिलते हैं। पर प्रश्न यह है कि वर्णमाला के अक्षर विन्यास किस के किए हैं। वर्णमाला के इतिहास पर जब हम ध्यान देते हैं तब यह पता चलता है कि यह वर्णमाला बड़ी प्राचीन है। तिब्बत, बर्मा, स्याम, लंका, आदि देशों में वर्णमाला का यही क्रम पाया जाता है और प्राचीन ग्रन्थ, और पाली आदि भाषाओं में भी वर्णमाला का यही क्रम प्रचरित मिलता है। * शाकटायनीय शिक्षा में, जो सब से प्राचीन शिक्षा ग्रन्थ है, वर्णमाला का यही क्रम है। अतः हमारी सम्मति में इस वर्ण क्रम का आविष्कारक भी वही ऋषि पुंगव शाकटायन है जिस ने सब शब्दों को यौगिक सिद्ध करने के लिये धातुओं और प्रत्ययों की कल्पना की थी।

जब हम इस के वर्णविन्यास पर ध्यान देते हैं तब हम को इसमें अद्भुत अमानुषी वैज्ञानिक नियम दिखाई पड़ता है जिस के ऊपर हम भारतवासी चाहे जितना गर्व करें कम है। यह विन्यास आदि से अन्त तक वैज्ञानिक रीति (Scientific method) और स्फोट नियम (Phonetic principle) पर है। शब्दों की उत्पत्ति वर्णों से होती है। वर्णों † की उत्पत्ति वायु से है जिसका उद्गम स्थान नाभि के समीप है। वहां से यह वायु वेग से चल कर उरस्थान में होती हुई कंठनाल से होकर मुँह में आती है। मुँह में तात्वादि स्थानों में तीव्र मन्द आदि ठोकर खाकर यह आकाश (Ether) में भिन्न भिन्न संख्यक लहरें (Currents) को उत्पन्न करती है जिनके प्रभाव से श्रोता के कानों में भिन्न भिन्न विचित्र वर्णों का बोध होता है। इस प्रकार एक ही वायु भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न रीति से ठोकरें खाकर समस्त अक्षर समुदाय को उत्पन्न करती है। इन वर्णों को अक्षरसमाम्नाय कहते हैं क्यों कि वर्णों का विस्पष्ट उच्चारण करने के लिये विशेष अभ्यास करने की आवश्यकता है।

इस अक्षरसमाम्नाय में दो प्रकार के वर्ण हैं। एक वे जिन का उच्चारण स्वतन्त्र बिना किसी अन्य वर्ण की सहायता के होता है; दूसरे वे जिनके उच्चारण में अन्य किसी वर्ण की सहायता की अपेक्षा होती है या जिनका उच्चारण स्वतन्त्र बिना किसी वर्ण की सहायता के नहीं हो सकता। शिक्षा शास्त्र में पहिले को स्वर और दूसरे को व्यञ्जन कहते हैं। इन्हीं स्वर और व्यञ्जनों के भेदों को यथास्थान नियमानुसार सन्निवेशित कर यह वर्णमाला बनाई गई है।

अक्षरों के उच्चारण में दो प्रधान बातें अपेक्षित हैं एक तो स्थान दूसरा प्रयत्न। भिन्न भिन्न स्थान जहां वायु ठोकर खा कर वर्णों को उत्पन्न करती है 'स्थान' वा 'आस्य' कहलाते हैं। * प्रधान स्थान शिक्षा ग्रन्थों में आठ माने गए हैं, कण्ठ, तालु, मूर्द्धा, दन्त, ओष्ठ, उर, नासिका और जिह्वामूल। पर कोई कोई शिक्षाकार दन्तमूल नाम का एक नवां स्थान भी मानते हैं। प्रयत्न दस प्रक

* अ आ इ ई उ ऊ। ऋ ॠ ऌ ॡ। ए ऐ ओ औ। क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण। त थ द ध न। प फ ब भ म। य र ल व। श ष स ह। अं अः (ᳵक ᳶप)

† आकाश वायु प्रभवः शरीरात्समुच्चरन्वक्त्रमुपैति नादः। स्थानान्तरेषु प्रविभज्यमानः वर्णत्वमागच्छति यः स शब्दः।

* अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठं शिरस्तथा। जिह्वा मूलञ्च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च।

को कहते हैं जो जिह्वा आदि से बोलनेवाले को वर्णों के उच्चारण में करना पड़ता है। कुछ तो यह प्रयत्न मुंह के भीतर करना पडता है और कुछ बाहर। इस भेद से प्रयत्न के दो भेद हैं 'आभ्यन्तर' और 'बाह्य'। शिक्षाशास्त्रों में आभ्यन्तर के पांच भेद माने गए हैं। स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत, विवृत और संवृत। बाह्य प्रयत्नों को प्राचीनों ने ग्यारह प्रकार का माना है। विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। इसके अतिरिक्त स्वर वर्णों के ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत तीन भेद हैं। तथा व्यञ्जनों के तार और मृदु दो भेद हैं। यह विषय शिक्षा का है जो विशेष कर अभ्यास (Practice) से आता है और शिक्षकों द्वारा सिखाया जाता है। यह लिखने का विषय नहीं है अतः इस पर विशेष न लिखकर हम प्रधान विषय की ओर ध्यान देते हैं।

वर्णविन्यास में सवर्णता पर विशेष ध्यान रक्खा गया है और असंयुक्त को संयुक्त पर मुख्य को गौण पर, निरनुनासिक को सानुनासिक, पर अघोष को घोष पर, तार को मन्द पर, ह्रस्व को दीर्घ पर योगवाह को अयोगवाह पर प्रधानता दी गई है। वर्णों के विन्यास में स्थान पर पूर्ण ध्यान रक्खा गया है और स्थानों का क्रम यथासाध्य कण्ठ तालु मूर्द्धा दन्त और ओष्ठ रक्खा गया है।

सब से पहिले वर्णमाला में स्वर वर्ण रक्खे गए हैं। इन स्वर वर्णों में केवल निरनुनासिक ही का रूप दिखलाया गया है और सानुनासिक को अप्रधान समझ उसके रूपों को सन्निवेशित नहीं किया है। प्लुत को भी दिखलाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई क्योंकि प्लुत विधान के नियमसूत्रों में सन्निवेशित कर दिए गए हैं तथा उदात्तादि भेद भी सूत्र नियमानुसार ही होते हैं, तथा इन के रूपों में और ह्रस्व दीर्घ के रूपों में कोई विशेष भेद भी नहीं है। ये सब परीक्षासाध्य और अभ्यासगम्य हैं अतः स्वरों के निरनुनासिक, ह्रस्व और दीर्घ इन साधारण रूपों को ही वर्णमाला के आदि में रक्खा है। स्वरों के प्रधान दो भेद माने गए हैं * समान (Simple) और सन्ध्यक्षर (double)। समान के मुख्य दो भेद हैं। मुख्य वा प्रधान और गौण। मुख्य स्वर अ, इ और उ हैं और गौण † स्वर

* तत्र चतुर्दशादौ स्वराः। दशसमानाः। द्वौद्वावन्यस्य सवर्णौ। पूर्वो ह्रस्वः। परो दीर्घः। एकारादीनिसन्ध्यक्षराणि।

† ऋ ॠ ऌ ॡ का उच्चारण आज कल रि री लि ली वा रु रू लु लू इत्यादि लोग करते हैं। यह वास्तव में प्राचीन आर्ष परिपाटी के विरुद्ध जान पड़ता है। ऐसा उच्चारण करने में ईषत्स्पृष्ट और विवृत प्रयत्न दोनों को उपयोग में लाना पड़ता है तथा र और ल व्यञ्जनों का भी आश्रय लेना पड़ता है। शिक्षा के अनुसार इनका प्रयत्न विवृत होता है और ये 'अस्पृष्ट' कहे जाते हैं। इसके अतिरिक्त जैसा उन के आकार से प्रतीत होता है ऌ ॡ अक्षर (लिपि) ल और ऋ ॠ के संयोग से बने हुए प्रतीत होते हैं। यदि वास्तव में ऐसा ही है तो इनका प्रथम तो स्वर मानना ही व्यर्थ है फिर यदि स्वर मान भी लेवें तो ल के साथ ऋ और ॠ लगा कर ॡ ॡ ऐसे पदों की उत्पत्ति होती है जिनका उच्चारण होना ही असम्भव प्रतीत होता है। अनुमान होता है कि प्राचीन महर्षिगण पूर्वकाल में इन स्वरों को विवृत प्रयत्न से उच्चारण कर सकते थे। इन का उच्चारण बहुत कठिन था और पीछे से इनेगिने लोगों के अतिरिक्त सर्वसाधारण इन के उच्चारण में असमर्थ हो गये और इन के स्थान में यथेष्ठ स्वर प्रयोग करने लगे। इसी से संस्कृत से निकली हुई पाली आदि भाषाओं में इनका सर्वथा सदा के लिये अभाव हो गया। बौद्ध काल में पाली भाषा ही की प्रधानता थी इने गिने लोग संस्कृत

ऌ और लृ। शेष ए ऐ ओ औ सन्ध्यक्षर हैं। इस लिये स्वर वर्णों के विन्यास में आचार्य्य ने समान स्वरों के सन्निवेशन में प्रधान स्वरों को गौण स्वरों के पूर्व रक्खा है। प्रत्येक ह्रस्व के साथ उनका सवर्ण दीर्घ रूप भी साथ ही साथ रख कर चौदह स्वर माने गए हैं। * वे ये हैं:–

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ।

अब व्यञ्जनों § के अक्षरक्रम पर ध्यान दीजिये। व्यञ्जनों के दो भेद हैं। कुछ व्यञ्जनों के अन्त में स्वर लगा कर उनका उच्चारण किया जाता है और कुछ के उच्चारण में पहिले ही स्वरों की सहायता लेनी पड़ती है। पहिले को योगवाह और दूसरे को अयोगवाह कहते हैं। व्यञ्जन अधिकतर योगवाह हैं अर्थात् स्वरों का पीछे योग पाकर ही उनका उच्चारण होता है। केवल अनुस्वार और विसर्ग तथा ⌅क ⌅प ही अयोगवाह हैं जो अपने उच्चारण के लिये स्वरों की सहायता पहिले ही चाहते हैं। इसी लिये योगवाह व्यञ्जनों को प्रधान मान कर उन्हें पहिले रक्खा है।

इन योगवाह § व्यञ्जनों के प्रयत्नानुसार तीन त्रिक किए गए हैं। पहिले त्रिक में स्पर्श है दूसरे में अन्तःस्थ और तीसरे में ऊष्म।

स्पर्श वर्ण संख्या में २५ हैं। इन्हें स्पर्श कहने का कारण यह है कि इनके उच्चारण करने में जिह्वा और ओष्ठ आदि से तालु आदि स्थानों का स्पर्श करना पड़ता है। कण्ठ, तालु, * मूर्द्धा दन्त और ओष्ठ इन पांच स्थानों के विभेद से इन के पांच भेद किए गए हैं जिनको वर्ग कहते हैं। ये वर्ग अपने आदि अक्षर के नाम से कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग कहलाते हैं अथवा कु, चु, टु तु और पु संकेतों से निर्दिष्ट किये जाते हैं। व्याकरण में एक वर्गस्थ अक्षरों की सवर्ण संज्ञा होती है। एक वर्ण के विकार को जिसमें स्थानैकत्व धर्म हो सवर्ण कहते हैं। इस से यह स्पष्ट है कि आदि में प्रत्येक वर्ग का मूल वर्ण ही रहा होगा पर उच्चारण का क्रमशः अभ्यास बढ़ने के कारण पीछे एक एक वर्ण के कई कई भेद हो गये।

वर्णों के उच्चारण के प्रायः दो भेद होते हैं सानुनासिक और निरनुनासिक। नियमानुसार

पढ़ते थे। एक प्रकार से संस्कृत भाषा लुप्त हो चली थी। पीछे से जब संस्कृत का ब्राह्मणों ने पुनरुद्धार किया तब इन वर्णों के उच्चारण करनेवालों का संसार में अभाव हो गया था अतः भ्रमवश इनका लोगों में रि री लि ली रु रू लु लू आदि पर्यन्त उच्चारण करने की प्रथा चल पड़ी। इसके पीछे जब लिखने की आवश्यकता पड़ी तब इनके लिये जो संकेत कल्पना किये गये उन में इसका प्रभाव रह गया और विवश हो ऌ ॡ के लिये ऐसे संकेत रक्खे गए जिनमें ल और ऋ तथा ॠ के अंश अब तक वर्तमान हैं।

‡ कादीनि व्यञ्जनानि। कादयो मावसानाः स्पर्शाः। अन्तःस्था यरलवा। ऊष्माणः शषसहाः।

* यद्यपि मूर्द्धास्थान कण्ठ और तालु के बीच है और तालु मूर्द्धा और दन्त के बीच पर कण्ठ के बाद तालु दूसरा स्थान क्यों है इसका विचार हम कभी 'वर्ण-विकाश' पर लिखते समय करेंगे। इसका उससे अधिक सम्बन्ध है।

निरनुनासिक वर्णों की प्रधानता है। जैसी सुगमता से निरनुनासिक वर्णों का उच्चारण हो सकता है सानुनासिक का नहीं। सानुनासिक वर्णों के उच्चारण में नासिका से भी सहायता लेनी पड़ती है और वे एक प्रकार से संयुक्त स्थानों से उच्चरित होते हैं और अनेक स्थानभाजी कहे जासकते हैं। शुद्ध एक स्थानभाजी निरनुनासिक वर्ण ही कहे जासकते हैं। इन के भी दो भेद हैं, एक तार दूसरा मन्द। कर्कश वर्ण तार कहलाते हैं जैसे क, ख, च, छ, इत्यादि और इनका उच्चारण सुगमता से होता है। कोमल वा मृदु वर्ण मन्द कहलाते हैं जैसे ग, घ, ज, झ आदि और इनके उच्चारण में कुछ विशेष सावधानी की जरूरत है। इन तार और मन्द वर्णों में प्रत्येक के दो दो भेद हैं, अघोष और घोष। अघोष के उच्चारण मे घोष की अपेक्षा कम वायु काम में लाई जाती है। इनका उच्चारण करना भी घोष वर्णों से कुछ सुगम है। इस विचार से प्रत्येक वर्ग के अक्षरों के पाँच पांच भेद माने गये हैं, पहिले सानुनासिक और निरनुनासिक, फिर निरनुनासिक के भी दो भेद हैं तार और मन्द इसके उपरान्त इन दोनों के भी दो भेद हैं घोष और अघोष इन का क्रम आदि वर्णमालाकार ने इस प्रकार रक्खा है कि पहिले तार के अघोष और घोष वर्ण, फिर मन्द के अघोष और घोष वर्ण और अन्त में सानुनासिक। इस प्रकार २५ स्पर्श वर्ण पांच वर्गों में विभक्त हुये हैं

क्रमसंख्या	स्थान	वर्ग	निरनुनासिक				सानुनासिक	अक्षर संख्या
			तार		मन्द			
			अघोष	घोष	अघोष	घोष		
१	कण्ठ	क	क	ख	ग	घ	ङ	५
२	तालु	च	च	छ	ज	झ	ञ	५
३	मूर्द्ध	ट	ट	ठ	ड	ढ	ण	५
४	दन्त	त	त	थ	द	ध	न	५
५	ओष्ठ	प	प	फ	ब	भ	म	५
	योग	५	५	५	५	५	२५	

व्यंजन का दूसरा त्रिक अन्तःस्थः है। इस त्रिक को स्पर्श के बाद रखने का प्रधान कारण यह है कि इनके वर्णों का प्रयत्न ईषत्स्पृष्ट है अर्थात् इनके उच्चारण में स्थानों का स्पर्श तो होता है पर बहुत कम। इन की संख्या चार है। चार ही अन्तःस्थ क्यों हैं पांच छ क्यों नहीं इस का कारण यह है कि आठ स्थानों में कण्ठ, तालु, मूर्द्धा, दन्त और ओष्ठ पांच प्रधान स्थान हैं और इन्हीं से प्रायः व्यंजनों की उत्पत्ति होती है। कण्ठ का ईषत्स्पृष्ट वर्ण नहीं है। यदि कण्ठ से ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न से वर्ण उत्पन्न करने की चेष्टा की जाय तो पहिले तो कोई वर्ण व्यंजित ही नहीं होगा यदि होगा भी तो वह अव्यक्त होगा। ये वर्ण स्वतः अर्द्ध व्यक्त हैं इसी लिये वैयाकरणों ने इनको स्वरों का विकार माना है। समान स्वरों में केवल इ, उ, ऋ और ऌ के विकार ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न द्वारा व्यंजित होते हैं। अकार का, जिसका स्थान कण्ठ

है, कोई विकार नहीं है क्योंकि कण्ठ स्थान से ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न द्वारा कोई वर्ण व्यंजित नहीं हो सकता। इ का विकार य है और उस का स्थान तालु है, ऋ का विकार 'र' और लृ का विकार ल है और उनके स्थान यथाक्रम मूर्द्धा और दन्त हैं। उ का विकार व है पर इस का स्थान ओष्ठ न हो कर शिक्षाकारों के मत से † 'दन्तोष्ठ' है इसी लिये वर्णमाला कार ने पहिले एक स्थान भागी 'य र और ल' को रख कर अन्त में अनेक स्थान भागी 'व' को रख इस चिह्न का संग्रथन इस क्रम से किया है:—

य. र. ल, व.

इस चिह्न को अन्तःस्थ कहने का कारण यह है कि यह चिह्न क्रम से स्पर्श और ऊष्म के बीच में सन्निविष्ट है अथवा इसके वर्ण व्यंजन और स्वर दोनों के बीच के वर्ण हैं *।

तीसरा व्यंजन चिह्न ऊष्म कहलाता है। इस का प्रयत्न ईषद्विवृत है। इसके उच्चारण में मुँह को कुछ फैलाना पड़ता है। इसमें केवल चार अक्षर हैं:—

श, ष, स, ह.

इन में कोई भी विशुद्ध ओष्ठ और कण्ठ्य वर्ण नहीं हैं। 'ह' को शिक्षाकारों ने प्रायः कण्ठ्य कहा है। पर वास्तव में यह विशुद्ध कण्ठ्य वर्ण नहीं है। शाकटायन जी ने अपनी शिक्षा में पहिले इसे कण्ठ्य वर्णों में परिगणित कर पीछे इसका स्थान 'उर' * भी लिखा है। अतः इसका उच्चारण स्थान विशुद्ध कण्ठ न मान कर उन्हों ने 'कण्ठ और उर' संयुक्त स्थान माना है। यह वर्ण केवल अनेक स्थानभागी ही नहीं है अपितु 'घोष' भी है। इसी लिये वर्णमालाकार ने ह को 'श, ष, स' से जो अघोष वर्ण है पीछे रक्खा है। यद्यपि 'श ष स' † तीन वर्ण प्रतीत होते हैं पर वास्तव

* पाश्चात्य देशों में भी ये चारो वर्ण अर्द्ध व्यञ्जन (Semi-vowel) माने जाते थे। पर अब इनकी संख्या से 'र' 'ल' (r l) को थोड़े दिनों से निकाल दिया है शेष य और व (y w) अब तक अर्द्ध व्यञ्जन (Semi-vowel) माने जाते हैं।

† यद्यपि 'व' का उच्चारण केवल ओष्ठों से ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न द्वारा किया जा सकता है पर उसका शब्द सुनने में दन्त्योष्ठ से कुछ भिन्न सुनाई पड़ेगा जैसे 'वासते' में 'व' सुन पड़ता है। शिक्षा ग्रन्थों में इसका उच्चारण स्थान दन्तोष्ठ कहे जाने से अनुमान होता है कि पूर्वकाल में लोग स्यात् इसका उच्चारण केवल ओष्ठ से नहीं कर सकते थे इसी लिये सब ने एक स्वर हो कर इसे दन्त्योष्ठ कहा है।

* हविसर्जनीययोरुरः।

† इन तीन वर्णों का वास्तव में एक ही प्रकार का उच्चारण है केवल स्थान भेद से ठीक उच्चारण होने पर कुछ थोड़ा सा अन्तर सावधानी से सुनने से श्रोता को प्रतीत होता है जिसे सर्वसाधारण अनुभव नहीं कर सकते। इसी लिये पाली भाषा के समय में स्यात् महात्मा बुद्ध देव से दो तीन शताब्दी पूर्व से ही, इन का पृथक् उच्चारण देश से जाता रहा था केवल संस्कृत में विशेष कर वेदपाठ में इन का विशुद्ध उच्चारण होता था। मुसलमानों के समय में जब फारसी भाषा राजभाषा थी तब उसका प्रभाव देश भाषा पर पड़ा और तालव्य स कार 'श' का पुनः प्रयोग होने लगा और लोग इसका शुद्ध उच्चारण भी करने लगे। फारसी भाषा में यों तो गिनती करने के लिये चार 'सकार' हैं ث س ش और ص, पर ث और ص वास्तव में अरबी भाषा के अक्षर हैं जिन में अन्त का उच्चारण अरबी भाषा में 'स्व' होता है। अतः फारसी भाषा में केवल दो ही सकार हैं एक तो दन्त्य س और दूसरा तालव्य ش मूर्द्धन्य सकार का उसमें सर्वथा अभाव है। इसलिये तालव्य स 'श' का तो लोग शुद्ध उच्चारण करनेलगे पर मूर्द्धन्य स 'ष' का

में ये एक ही वर्ण के स्थान भेद से तीन रूप हैं और ह इन्हीं का घोष वर्ण है। यही कारण है कि व्याकरण में ये एक दूसरे के स्थान में आदेश होते हैं। इस त्रिक का ऊष्म कहे जाने का हेतु यह है कि इसके वर्णों को उच्चारण करते समय मुँह से ऊष्म वा गरम वायु निकलती है।

इस प्रकार योगवाह व्यञ्जनों को तीन त्रिकों में सन्निवेशित कर वर्णमालाकार ने अन्त में अयोगवाह व्यञ्जनों, अनुस्वार, विसर्ग और ≍ क और ≍ प, को रक्खा है। इन में अन्त के दो का काम प्रायःवेदों में पड़ता है पर आदि के दो में पहिले का स्थान नासिका और दूसरे का 'उर' है। अनुस्वार एक प्रकार से वर्ग के पंचम वर्ण का समष्टि रूप है पर अयोगवाह होने से पृथक वर्ण माना गया है। विसर्ग भी ह कार का ही एक भेद विशेष है इसी लिये इसका स्थान उर है तथा इसके स्थान 'स' और स के स्थान विसर्ग आदेश होता है। इसके अतिरिक्त जिस स्वर के अन्त में विसर्ग लगता है उसके स्थान का भी यह आश्रय लेता है इसी लिये इस को आश्रयस्थानभागी भी कहते हैं। इन कारणों से वर्णमालाकार ने अनुस्वार के पीछे विसर्ग को रक्खा था। आधुनिक लोग इसे भ्रम वश स्वर का एक भेद मानने लगे हैं जो सर्वथा विरुद्ध है।

इस प्रकार हमारी देवनागरी वर्णमाला वैज्ञानिक सूत्रों में पिरोई हुई हमारे पूर्वजों के गौरव को प्रकट करती है। सब से प्राचीन ग्रन्थ जिसमें वर्णमाला का यह क्रम मिलता है शाकटायनीय शिक्षा है जिस से हमारा अनुमान है कि शायद इस रत्नमाला का ग्रन्थन करनेवाला वही आदि वैयाकरण महर्षि शाकटायन हो जिसने शब्दों को यौगिक बता कर सब से पहिले गहन दुरूह वैदिक पदों के निर्वाचन करने का मार्ग साफ किया और जिस के विषय में महाभाष्यकार भगवान पतंजलि उच्च स्वर से घोषणा करते हैं:—

नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम्
यत्र विशेषपदार्थसमुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम्

(महाभाष्य)

जगन्मोहन वर्म्मा।

विशुद्ध उच्चारण आज तक शायद ही कोई लोग भारतवर्ष में कर सकते हैं। बड़े बड़े संस्कृत के धुरन्धर विद्वानों को इसके उच्चारण में कोई भेद न करते देखा है। कितने लोग तो षको 'ख' उच्चारण करते हैं जो शुद्ध स्पष्ट कण्ठ्य है। इन तीनों सकारों का एक होना प्राचीनों ने भी स्वीकार किया है इसीलिए पाणिनि आदि वैयाकरणों के व्याकरण में सत्व और षत्व विधान पर "स्तोश्चुनाश्चुः। ष्टुनाष्टुः, इत्यादि सूत्र रचने की आवश्यकता पड़ी। अनुमान होता है कि ये तीनों वर्ण एक ही वर्ण से व्युत्पन्न हुए हैं।

भाषा की शक्ति।

भाषा का प्रयोग मनमें आई हुई भावनाओं को प्रदर्शित करने के लिए होता है। इससे यह समझना कि संसार की किसी भाषा द्वारा मनुष्य के हृदय के भीतर की सब भावनाएँ ज्यों की त्यों बाहरी सृष्टि में लाई जासकती हैं ठीक नहीं। किंतु किसी भाषा की श्रेष्टता निश्चित करने के लिए यह विचार करना आवश्यक होता है कि वह अपने इस कार्य्य में कहां तक समर्थ है अर्थात हृदयस्थित भावनाओं का कितना अंश वह प्रतिबिंबित करके झलका सकती है। अभीतक मानव कल्पना में

ऐसे २ रहस्य छिपे पड़े हैं जिन को प्रकाशित करने के लिए कोई भाषा हो नहीं बनी है। यद्यपि विचारों की सृष्टि भाषा से पहिले की है पर आगे चल कर जब भाषा खूब पुष्ट हो जाती है तब वह विचार करने का उचत ढंग बतलाने लगती है। जो जातियाँ हम से उन्नत हैं उनके विषय में यह अवश्य समझना चाहिए कि उनके विचार करने का ढंग हम से उन्नत है। अतः सब सुधारों से पहिले विचार करने की प्रणाली का सुधार आवश्यक है।

भाषाओं के धनशाली होने की दो वस्तुओं पर अवलंबित है—'शब्द-विस्तार' और 'शब्दयोजना'।

शब्द-विस्तार।

जिस भाषा में शब्दों की कमी है उसका प्रभाव मनुष्य के कार्य्यकलाप पर बहुत थोड़ा है। उस भाषा का बोलनेवाला बहुत सी बातों को जानता हुआ भी अनजान बना रहता है। यद्यपि शब्दों की बहुतायत से भाषा की पुष्टि होती है तथापि कई बातें ऐसी हैं जो उसकी सीमा स्थिर करती हैं। जिस जल वायु ने हमारे स्वभाव और रूप रंग को रचा उसी ने हमारे शब्दों को भी सृजा। ये शब्द हमारे जीवन के अंश समान हैं; इन में से हर एक हमारी किसी न किसी मानसिक अवस्था का चित्र है। इनकी ध्वनि में भी हमारे लिए एक आकर्षण विशेष है। निज भाषा के किसी शब्द से जिस मात्रा का भाव उद्भूत होता है उस मात्रा का समानअर्थवाची किसी विदेशीय शब्द से नहीं। क्योंकि पहिले तो विजातीय शब्दों की ध्वनि ही हमारी स्वाभाविक रुचि से मेल नहीं खाती दूसरे वे विस्तार में हमारे मानसिक संस्कार के नाप के नहीं होते। आज कल हिंदी की अवस्था कुछ विलक्षण हो रही है। उचित पथ के सिवाय उसके लिए तीन और मार्ग खोले गए हैं-एक जिसमें बिना विचार के संस्कृत के शब्द और समास बिछाये जाते हैं, दूसरा जिसको उर्दू कहना चाहिये; इन के अतिरिक्त एक तृतीय पथ, भी खुल गया है जिसमें अप्रचलित अरबी, फारसी और संस्कृत शब्द एक पंक्ति में बैठाये जाते हैं। मैं यह नहीं चाहता कि अरबी और फ़ारसी आदि विदेशीय भाषाओं के शब्द जो हमारी बोली में आ गए हैं, जिन्हें बिना बोले हम नहीं रह सकते, वे निकाल दिए जाएँ। किन्तु क्लिष्ट और अचलित विदेशीय शब्दों को व्यर्थ लाकर भाषा के सिर ऋण मढ़ना ठीक नहीं। सहायता के लिए किसी अन्य विदेशीय भाषा के शब्दों का लाना हानिकारक नहीं; किन्तु उनकी संख्या इतनी न हो कि मिल्टन के शब्दों में, वे स्थानीय भाषा के अधीन रह कर काम करने के स्थान पर उसी को अधिकार-च्युत करने का यत्न करने लगें। अब यहाँ पर प्रश्न हो सकता है कि अरबी वा फ़ारसी के कौन शब्द हिन्दी में लिए जायँ और कौन न लिए जायँ। मेरी समझ में तो वे ही अरबी फ़ारसी शब्द लिए जा सकते हैं जिन को वे लोग भी बोलते हैं जिन्हों ने उर्दू कभी नहीं पढ़ा है—जैसे ज़रूर, मुक़द्दमा, मज़दूर आदि। जो शब्द लोग मौलवी साहब से सीख कर बोलते हैं उनका दूर होना ही हिन्दी के लिए अच्छा है।

राजा शिवप्रसाद खिचड़ी हिन्दी का स्वप्न ही देखते रहे कि भारतेन्दु ने स्वच्छ हिन्दी की शुभ छटा दिखा कर लोगों को चमत्कृत कर दिया। लोग चकपका उठे। यह बात उन्हें प्रत्यक्ष देख पड़ी कि

यदि हमारे प्राचीन धर्म्म, गौरव और इतिहास की रक्षा होगी तो इसी भाषा के द्वारा। स्वार्थी लोग समय २ पर चक्र चलाते ही रहे किन्तु भारतेन्दु की स्वच्छ चन्द्रिका में जो एक बेर अपने गौरव की झलक लोगों ने देख पाई वह उनके चित्त से न हटी। कहने की आवश्यकता नहीं कि भाषा ही किसी जाति की सभ्यता को सब से अलग झलकाती है, वही उसके हृदय के भीतरी पुर्ज़ों का पता देती है जिसका निदान उन्नति के उपचार के लिए आवश्यक है। वही उसके पूर्व गौरव का स्मरण कराती हुई, हीन से हीन दशा में भी, उस में आत्माभिमान का स्रोत बहाती है। किसी जाति को अशक्त करने का सब से सहज उपाय उस की भाषा को नष्ट करना है। हमारी नस नस से स्वदेश और स्वजाति का अभिमान कैसे निकल गया? हमारे हृदय से आर्य्य भावनाओं का कैसे लोप हो गया? क्या यह भी बतलाना पड़ेगा? इधर सैकड़ों वर्षों से हम अपने पूर्वसंचित संस्कारों को जलांजलि दे रहे थे। भारतवर्ष की भुवनमोहिनी छटा से मुँह मोड़ कर शीराज़ और इस्फ़हान की ओर लौ लगाए थे; गंगा जमुनाके शीतल शांति दायक तट को छोड़ कर इफ़रात और दजला के रेतीले मैदानों के लिए लालायित हो रहे थे। हाथ में अलिफ़ लैला की किताब पड़ी रहती थी एक झपकी लेलेते थे तो अलीबाबा के अस्तबल में जा पहुंचते थे। हातिम की सख़ावत के सामने कर्ण का दान और युधिष्ठिर का सत्यवाद भूल गया था; शीरीं फ़रहाद के इश्क़ ने नल दमयन्ती के सात्विक और स्वाभाविक प्रेम की चर्चा बंद करदी थी। मालती; मल्लिका, केतकी आदि फूलों का नाम लेते यातो हमारी जीभ लटपटाती थी या हमको शर्म मालूम होती थी। बसन्त ऋतु का आगमन भारत में होता था, आमों की मंजरियों से चारो दिशाएँ आच्छादित होती थीं पर हमको कुछ खबर नहीं रहती थी; हम उन दिनों गुलेलाला और गुले नरगिस के फ़िराक़ में रहते थे। मधुकर गूंजते और कोइलें कूकती थीं, पर हम तनिक भी न चौंकते थे। बल्कि पर कान लगाए हम बुलबुल का नाला सुनते थे।

अप्रचलित फ़ारसी शब्दों के बिना हमारा कोई काम भी नहीं अँटकता क्योंकि उनके स्थान पर रखने के लिए हमें न जाने कितने संस्कृत क्या हिन्दी ही शब्द मिल सकते हैं। हां, जिन विचारों के लिए हिन्दी या संस्कृत शब्द न मिलें उनको प्रगट करने के लिए हम विजातीय अप्रचलित शब्द लाकर अपनी भाषा की वृद्धि मान सकते हैं। एकही निर्दिष्ट वस्तु के लिए अनेक शब्दों के होने से भाषा की क्रिया में कुछ उन्नति नहीं होती। जैसे सूर्य के लिए रवि, मार्त्तण्ड, प्रभाकर, दिवाकर और चन्द्रमा के लिए शशि, इन्दु, विधु मयंक आदि बहुत से शब्दों के होने से भाषा की बोधनशक्ति में कुछ भी वृद्धि नहीं होती, केवल ध्वनि की भिन्नता वा नवीनता से हमारा मनोरंजन होता है और भाषा में एक प्रकार का चमत्कार आजाता है जो कविता के लिए आवश्यक है। इन अनेक नामों में से साधारण गद्य में उसी शब्द को स्थान देना चाहिए जो सबसे अधिक प्रचलित है जैसे सूर्य्य चन्द्रमा। 'रवि उदय होता है,' 'भास्कर अस्त होता है', 'विधु का प्रकाश फैलता है' ऐसे २ वाक्य कानों को खटकते हैं और कृत्रिम जान पड़ते हैं। हां जहां 'प्रचण्ड मार्तण्ड की उद्दंडता' दिखाना हो वहां की बात

दूसरी है पर मैं तो वहां भी ऐसे शब्दों की उतनी अधिक आवश्यकता नहीं समझता । शब्दालंकार केवल कविता के लिए प्रयोजनीय कहा जा सकता है गद्य में उसकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं गद्य में तो उसके और २ गुणों के अन्वेषण ही से छुट्टी नहीं मिलती । गद्य की श्रेष्ठता तो भावों की गुरुता और प्रदर्शन-प्रणाली की स्पष्टता वा स्वच्छता ही पर अवलंबित है । और यह स्पष्टता और स्वच्छता अधिकतर व्याकरण की पाबंदी और तर्क की उपयुक्तता से संबन्ध रखती है। सारांश यह कि आधुनिक शैली के अनुसार गद्य में वाक्य के क्रम और अर्थ ही का विचार होता है नाद का नहीं ।

शब्द योजना ।

यहां तक तो शब्द विस्तार की बात हुई । आगे भाषा के इससे भी गुरुतर और प्रयोजनीय अंश अर्थात् शब्दयोजना पर ध्यान देना है । भाषा उत्पन्न करने के लिये असंख्य शब्दों का होना ही बस नहीं है क्योंकि पृथक २ वे कुछ भी नहीं कर सकते । वे कल्पना में इंद्रियकम्प द्वारा खचित एक २ स्वरूप के लिए भिन्न २ संकेत मात्र हैं। कोई ऐसा पूरा विचार (Complete notion) उत्पन्न करने के लिए जो मनुष्य की प्रवृत्ति पर कोई प्रभाव डाले अर्थात उस की भौतिक वा मानसिक स्थिति में कुछ फेरफार उत्पन्न करे हमें शब्दों को एक साथ संयोजित करना पड़ता है। जैसे कोई मनुष्य सड़क पर चला जाता है, यदि हम पीछे से उस को सुना कर कहैं कि 'मकान' तो वह मनुष्य कुछ भी ध्यान न देगा और चला जायगा, किंतु यदि पुकारें कि 'मकान गिरता है' तो वह अवश्य चौंक पड़ेगा और भागने का उद्योग करेगा । शब्द योजना का प्रभाव देखिए! प्रत्येक मनुष्य का धर्म्म है कि वह इस कार्य्य में बड़ी सावधानी रक्खे । बहुत से शब्दों को जोड़ने ही से भाषा उत्पन्न नहीं होती; उस में उपयुक्त क्रम, चुनाव और परिमाण का विचार रखना होता है। निश्चय जानिए कि शब्दों के मेल में बड़ी शक्ति है। एक भावुक मनुष्य थोड़े से शब्दों को लेकर भी वह २ चमत्कार दिखला सकता है जो एक स्तब्ध चित्त का मनुष्य चार भाषाओं का कोश लेकर भी नहीं सुझा सकता । कुछ दिन पहिले हमारी हिंदी की स्थिति ऐसी हो गई थी कि उस का विचार-क्षेत्र में अग्रसर होना कठिन देख पड़ता था । बने बनाए समास, जिन का व्यवहार हजारों वर्ष पहिले हो चुका था, लाकर भाषा अलंकृत की जाती थी । किसी परिचित वस्तु के लिए जो २ विशेषण बहुत काल से स्थिर थे, उन के अतिरिक्त कोई अपनी ओर से लाना मानो भारतभूमि के बाहर पैर बढ़ाना था । यहां तक कि उपमाएँ भी स्थिर थीं । मुख के लिए चंद्रमा, हाथ पैर के लिए कमल, प्रताप के लिए सूर्य्य, कहां तक गिनावें । जहाँ इनसे आगे कोई बढ़ा कि वह साहित्य से अनभिज्ञ ठहराया गया अर्थात इन सब नियत उपमाओं का जानना भी आवश्यक समझा जाता था । पाठक! यह भाषा की स्तब्धता है, विचारों की शिथिलता है और जाति की मानसिक अवनति का चिह्न है । अब भी यदि हमारे कोरे संस्कृतज्ञ पंडितों से कोई बात छेड़ी जाती है तो वे झट कोई न कोई श्लोक उपस्थित कर देते हैं और उसी के शब्दों के भीतर चक्कर खाया करते हैं, हजार सिर पटकिए वे

उसके आगे एक पग भी नहीं बढ़ते । यदि कोई चाल वा धोखे से किसी की संपत्ति हर ले तो पंडित जी कदाचित् उस के सम्मुख उस के कार्य्य की आलोचना इसी चरण से करेंगे–"स्वकार्य्य साधयेद्धीमान्" । उन की विचार-शक्ति इन श्लोकों से चारो ओर जकड़ी हुई है ; उसको अपना हाथ पैर हिलाने की स्वच्छंदता कभी नहीं मिलती । ऐसी दशा में उन्नति के मार्ग में एक पग भी आगे बढ़ना कठिन होता है । समाज की यह एक बड़ी भयानक अवस्था है ।

अलंकार ।

इसी प्रकार अनुप्रास से टँकी हुई शब्दों की लंबी लरी इस बात को सूचित करती है कि लेखक का ध्यान विचारों की अपेक्षा शब्दों की ध्वनि की ओर अधिक है । आरंभ ही में कहा गया कि भाषा का प्रधान उद्देश लोगों को भावों वा विचारों तक पहुँचाना है न कि नाद से रिझाना जो कि संगीत का धर्म्म है । शब्दमैत्री वा यमक दिखलाने के उद्देश से ही लेखनी उठाना ठीक नहीं । यदि आपकी कल्पना में सतोगुण की कोई मनोहारिणी छाया देख पड़ी हो तो आप उसे खींच कर संसार के सम्मुख उपस्थित कीजिए, यदि आप के हृदय में विचारों की रगड़ से कोई ऐसी ज्योति उत्पन्न हुई हो जिस के प्रकाश में जीव अपना भला बुरा देख सकते हों तो आप उसे बाहर लाइए, अन्यथा व्यर्थ कष्ट न उठाइए । हम देखते हैं कि इसी रुचि वैलक्षण्य के कारण हमारे हिंदी काव्य का अधिक भाग हमारे काम का न रहा । वहां विचित्र ही लीला देखने में आती है । घनाक्षरी, कवित्त, सवैया के 'कविंदों' ने कुछ शब्दों का अंग भंग कर दो एक ('सु' ऐसे) अक्षरों को अगाड़ी पिछाड़ी लगा कर बलात् और निष्प्रयोजन उन्हें एक में नाथ रक्खा है । वर्णन शक्ति की शिथिलता के कारण रसों (Sentiments) के उद्रेक के लिए अत्यंत अधिकता से नादवैलक्षण्य का सहारा लिया गया है । शृंगार रस की कविता में 'सरस' 'मंजु' 'मंजुल' आदि शब्दों के हेतु कुछ स्थान खाली करना पड़ा है–"मंजुल मलिंद गुंजैं मंजरीन मंजु मंजु मुदित मुरैली अलबेली डोलैं पात पात ।" कवि जी ने न जाने किस लोक में मुरैलियों को पत्तों पर दौड़ते देखा है । इसी प्रकार जहां वीर रस की चर्चा है वहां परुषा वृत्ति अर्थात् द्वित्व और टवर्ग का विस्तार है, जैसे, "हरि हरि ठरि गए आइ डराय डर ठर ठर ठर के धराधर के धर के" । किंतु इस 'खड्ड बड्ड' के बिना भी वीर रस का संचार किया जा सकता है, इस बात के उदाहरण शेखर कविका "हम्मीर हठ", भारतेंदु की "विजयिनी विजय वैजयंती" और नीलदेवी विद्यमान हैं । आज सैकड़ा पीछे कितने आदमी मतिराम, भूषण और घोपति सुजान के कवित्तों को अनुराग से पढ़ते तथा उन के द्वारा किसी आवेग में होते हैं ? पर वही सूर, तुलसी, रहीम और बिहारी आदि की कविता हमारे जातीय जीवन के साथ हो गई है । उन की एक एक बात हमारे किसी काम में अग्रसर होने वा न होने का कारण होती है । इस भेद भाव का कारण क्या है ? वही, एक में शब्दों का व्यर्थ आडंबर और दूसरी में भावों की स्वच्छता तथा वर्णन की उपयुक्तता । वे 'चटकीले मटकीले' शब्द लाख करने पर भी हमारे हृदय पर अधिकार नहीं जमा सकते, निकल कर हवा में मिल जाना ही

उह के कार्य्य का शेष होता है। क्योंकि सृष्टि के नियमानुसार स्ववर्गीय पदार्थ ही एक दूसरे में लीन होने को झुकते हैं, जल ही जल की ओर जाता है, इसी प्रकार चित्त की उपज ही चित्त में धँसती है।

प्रत्येक साहित्य के अर्थालंकार में, प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष, उपमा का प्रयोग बहुत अधिक होता है क्योंकि भौतिक पदार्थों के व्यापार, विस्तार, रूप, रंग तथा मानसिक अवस्थाओं की स्थिति, क्रम, विभेद आदि का सम्यक् ज्ञान उत्पन्न करने के लिए बिना उस के काम नहीं चल सकता। जन्म से लेकर मनुष्य का सारा ज्ञान सृष्टि के पदार्थों के मिलान वा अन्वय व्यतिरेक से उत्पन्न है। शिशु का ज्ञान-सञ्चय इसी क्रिया से आरम्भ होता है * धरती पर गिरते ही वह वस्तुओं के सादृश्य और विभेद को परखने में लग जाता है। उपमा का प्रयोग ज्ञान वा अनज्ञान में हम हर घड़ी किया करते हैं। छोटे २ विचारों को व्यक्त करने में भी हम बिना उसका सहारा लिए नहीं रह सकते। यहां तक कि हमारे सब अगोचर-पदार्थ-वाची शब्द आरंभ में इसी (उपमा) की क्रिया से बने हैं। यह भाषा की बनावट के इतिहास से प्रमाणित है। जब शब्दों का यह हाल है तब फिर इस प्रकार की अभौतिक भावनाओं का क्या कहना है उनका अनुभव तो हम पार्थिव पदार्थों ही के गुण और व्यापार के अनुसार करते हैं अर्थात् भौतिक वस्तुओं के गुण और धर्म्म को अभौतिक वस्तुओं में स्थापित कर के ही हम आध्यात्मिक विषयों की मीमांसा करते हैं। साधारण दृष्टांत लीजिए-'दया ने प्रतिकार की इच्छा को दबा दिया'। "उस के प्रेम से परिपूर्ण हृदय में प्रिय के दुर्गुणों के विचार की जगह न रही।" पहिले में भौतिक पदार्थों के गुरुत्व और अपने से हलके पदार्थों को दबा कर उभड़ने से रोकने की क्रिया का आभास है; इसी प्रकार दूसरे में पदार्थों के स्थान छेंकने का धर्म स्थापित किया गया है। बात यह है कि इन नियमों से पार्थिव और आध्यात्मिक दोनों सृष्टियां समान रूप से बद्ध हैं।

उपमा का कार्य्य सादृश्य दिखला कर भावना को तीव्र करना है। जिस वस्तु के लिए हम कोई शब्द नहीं जानते उस का बोध हम उपमा ही द्वारा करा सकते हैं, जैसे जो मनुष्य हारमोनियम का नाम नहीं जानता वह उस की चर्चा करते समय यही कहेगा कि वह संदूक के समान एक बाजा है। यदि किसी वस्तु का विस्तार इतना बड़ा है कि हम उसे निर्दिष्ट शब्दों में नहीं बतला सकते तो हम चटपट उतने ही वा उस से बहुत अधिक विस्तृत किसी अन्य पदार्थ की ओर इंगित करते हैं, जैसे—'हरियाली चारो ओर समुद्र के समान लहराती देख पड़ी।' 'ज्वालामुखी से भाप और राख उठ कर बादल के समान आकाश में छा गई।' हम यह न देखने जायँगे कि समुद्र का विस्तार हरियाली के फैलाव से नाप में न जाने कितने वर्ग मील बड़ा है। इसकी हमें कोई आवश्यकता नहीं। यह बात निरीक्षण के समय हमारी दृष्टि की पहुंच के बाहर की है अतः जब तक हम विवेचन शक्ति का सहारा न लें यह हमारी प्राप्त भावनाओं में अन्तर नहीं डाल सकती। निरीक्षण के समय हमारी दृष्टि की पहुंच के भीतर इन

---

* (1) देखिए Lock's Essay on the Human understanding.

(2) Brown's philosophy of the Human mind.

दोनों (हरियाली और समुद्र) का अन्त नहीं होता यही इन में समानता है। यदि किसी महा विशाल पिंड के आकार आदि का परिज्ञान कराना रहता है तो उस की तुलना हम समान आकार वाले किसी छोटे पदार्थ से करते हैं, तदनन्तर उस छोटे पिंड में उस आकार के गुण धर्म को परख कर हम उन की स्थापना बड़े पिंड में करते हैं, जैसे स्कूल में लड़कों से कहा जाता है कि "लड़को! पृथ्वी नारंगी के समान गोल है," पर यह कोई नहीं कहता कि नारंगी पृथ्वी के समान गोल है, क्यों कि ऐसी उपमा से हमारा कुछ काम नहीं निकलता। पदार्थों के व्यापार, गुण और स्थिति को स्पष्ट कर के उनका तीव्र अनुभव कराना उपमा का काम है और कुछ नहीं। अतएव एक ही वस्तु के लिए पचीसों उपमाओं का तार बाँध देना, उपमा कथन के हेतु ही किसी वस्तु का वर्णन करने बैठजाना और उससे किसी अंश में समानता रखने वाले पदार्थों की सूची तैयार करना उचित नहीं है। जैसे प्रभात कालीन सूर्य्य मंडल को देख यही बकने लगना कि 'यह थाली के समान है" अथवा 'शोणित सागर में बहता हुआ स्वर्ण कलश है" वा 'स्वर्ग लोक की झलक दिखलाने वाली गोली खिड़की है" किंवा 'होली की महफिल में रक्खे हुए लैंप का ग्लोब है" वाणी का सदुपयोग नहीं कहा जा सकता। मेरा अभिप्राय यह है कि उपमा का प्रयोग आवश्यकतानुसार ही होता है, उस का अनावश्यक और अपरिमित प्रयोग प्रलाप है। पर हमारे हिन्दी-कवि उपमा के पीछे ऐसा लट्ठ लेकर पड़े कि उन्होंने केवल उपमा ही के बहुत से कवित्त और सवैये कह डाले, जैसे—भोजन ज्यों घृत बिनु, पंथ जैसे साथी बिनु, हाथी बिनु दल जैसे दारू बिन बान है। राव जैसे रानी बिनु, कूप जैसे पानी बिनु, कवि जैसे बानी बिनु, सुगर बिन तान हैं। रंग जैसे केसर बिनु, मुख जैसे बेसर बिनु, प्यारी बिनु रैनि ज्यों सुपारी बिनु पान है। भूषण कवि का 'इन्द्र जिमि जृम्भ पर, बाड़व सुअंबु पर" वाला कवित्त इसी श्रेणी का है। न जाने कैसे लोग ऐसे पद्यों को सुनते हैं और ऊबते नहीं।

अकेले वा पृथक रूप में उपमा इस योग्य नहीं कि उसे भरने के लिये हम एक प्रबन्ध वा पुस्तक लिख डालें। यही बात सब अलंकारों के लिए कही जा सकती है। किसी वस्तु को उसकी सीमा के बाहर घसीटना उसको उसके गुण से च्युत करना है। यह बात हमारी हिन्दी कविता में प्रत्यक्ष देखने में आती है। एक साधारण दृष्टान्त लीजिए। भौंरे प्रायः लोगों के पीछे लग जाते हैं। इस प्राकृतिक व्यापार से महाकवि कालिदास ने अपने "अभिज्ञान शाकुन्तल" में शकुन्तला के मुख का लावण्य दिखलाने का काम लिया है, जैसे—

शकुन्तला—(ससंभ्रमम्) अम्मो! सलिलसेअसंभमुग्गदो णोमालिअं उज्झिअ वअणं मे महुअरो अहिवट्टइ (इति भ्रमर बाधां रूपयति)

बेचारे कालिदास ने तो पहिले प्रकृति के एक वास्तविक व्यापार का आरोप किया तब उस पर अपनी उक्ति ठहराई पर हमारी हिन्दी के एक अलङ्कार-कला-कुशल कवि अपनी नायिका का सर्वाङ्ग सौन्दर्य्य झलकाने के लिये बहुत से अप्राकृतिक व्यापार स्वयं गढ़ लेते हैं और होठों को बिम्ब आदि बनाकर यह विचित्र स्वाँङ्ग खड़ा करते हैं—

आनन है अरविंद न फूल्यो अलीगन भूले कहा मँड़रात हैं। कीर कहा तोहि बाई चढ़ी, भ्रम बिंब के ओठन को ललचात है। दास जू व्याली न, बेनी-बनाव, पापी कलापी कहा हरखात है। बाजत बीन न, बोलति बाल कहा सिगरे मृग घेरत जात हैं।

हमारी समझ में तो कीर को नहीं कवि जी को बाई चढ़ी थी जो व्यर्थ इतना बक गए। हमने आज तक किसी नायिका को ऐसी आफ़त में फँसते नहीं देखा है।

किसी नायिका भेद के भक्त ने अकेली नवोढ़ा ही का आदर्श दिखलाया है; किसी नखसिख निहार-नेवाले ने 'अलक' और 'तिल' ही पर शतक बांधा है। आप ही कहिए कि इतने संकुचित स्थान में भीतरी और बाहरी सृष्टि के कितने अंश का व्यापार दिखलाया जा सकता है और पाठक का ध्यान बिना ऊबे हुए कब तक उसमें बद्ध रह सकता है।

धर्म वा व्यापार के पूर्णतया प्रत्यक्ष न होने के कारण जब किसी वस्तु की भावना धुंधली वा मंद होती है तब उसको तीव्र और चटकीली करने के लिए समान धर्म्म और गुणवाले अन्य अधिक परिचित पदार्थों को हम आगे रखते हैं। किन्तु काव्य की उपमा में एक और बात का विचार भी रखना होता है—वह यह कि सादृश्य दिखलाने के लिए जो पदार्थ उपस्थित किए जायें वे प्राकृतिक और मनोहर हों कृत्रिम और क्षुद्र नहीं, जिससे ज्ञान दान के अर्थ जो रूप उपस्थित किए जायँ वे रुचिकर होने के कारण कल्पना में कुछ देर टिकें और हमारे मनोवेगों (Sentiments) को उभाड़ें जो हमें चंचल कर के कार्य्य में प्रवृत्त करते हैं। उपमान और उपमेय में जितनी ही अधिक बातों में समानता होगी उतनी ही उपमा उत्कृष्ट कही जायगी।

वेद और संस्कृत।

इस समय की प्रचलित संस्कृत और वेद की भाषा का मिलान करने से दोनों में बहुत अन्तर मालूम होता है। निरुक्त में जो वेद के ६ अंगों में एक है और जो वैदिक शब्दों का अभिधान या कोश समझा जाता है कितने शब्द ऐसे हैं जिनका प्रयोग केवल वेद की भाषा में पाया जाता है संस्कृत में नहीं। और ऐसे शब्द समूह इतने अधिक हैं कि उनका विवरण जिस में है उसे प्रातिशाख्य कहते हैं। प्रातिशाख्य प्रतिशाखा से बना है। माध्यन्दिनी, कौथुमी तैत्तिरीय आदि अनन्त शाखायें हैं, एक २ शाखा के अलग २ विवरण की समष्टि का नाम प्रातिशाख्य है। भट्टोजि दीक्षित ने सिद्धान्त कौमुदी में "प्रातिशाख्ये प्रसिद्धाः" ऐसा शब्दों के सिद्ध करने में दो एक ठौर प्रातिशाख्य का इशारा दिया है। इस से भी स्पष्ट है कि संस्कृत वेद की भाषा से निराली है पाणिनि ने भी "लोके वेदेच" अपने सूत्र में कह प्रगट कर दिया है कि वेद की भाषा संस्कृत से अलग है। ऐसे ही बृहती जगती आदि वेद के छन्द भी मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी आदि हमारे छन्दों से सर्वथा भिन्न हैं। इससे भी प्रत्यक्ष है कि वैदिक भाषा संस्कृत से अलग है। वैदिक भाषा में भी यजुर्वेद में जैसे ऊबड़ खाबड़ शब्द हैं वैसे ऋग्वेद में नहीं। इससे सिद्ध होता है कि समग्र वेद एक साथ ही नहीं कहे गये वरन् यजुर्वेद को

देख यही मन में आता है कि वेद की भाषा किसी समय भारत में बोल् चाल की भाषा रही हो तो अचरज नहीं। ऋग्वेद तब कहा गया जब यह बोलचाल की भाषा कुछ सुधरने लगी। यद्यपि वाल्मीकि और नाट्याचार्य भरतमुनि आदि के ग्रन्थ लौकिक संस्कृत में मंत्र काल में ही लिखे जा चुके थे तथापि विक्रमाब्द की कम से कम ५ शताब्दी पहिले तक प्राय: वैदिक भाषा का देश में प्रचार था। उपरान्त बौद्धों और जैनियों ने प्राकृत भाषा का प्रचार किया और वेद को हर तरह तोड़ने और दबाने में कहीं से कसर न रख छोड़ी। किन्तु यह प्राकृत वैसी ही रूखी भाषा रही जैसी वैदिक भाषा थी। संस्कृत को सोहावनी भाषा अधिकतर कवियों ने किया। व्यासदेव ने संस्कृत में महाभारत लिखा उपरान्त फिर पुराण लिखे गये इन में जो इतिहास के रूप में रहा वह पांचवां वेद माना गया "इतिहास: पंचमो वेद:"। कात्यायन आश्वलायन गोभिल आदि गृह्यकारों के समय तक वैदिक भाषा का प्रचार था। उपरान्त अक्षपाद कपिल कणाद जैमिनि पतंजलि व्यास आदि शास्त्रों के सूत्रकार तथा वार्तिक और वृत्तिकारों ने संस्कृत में अपने सूत्र वार्तिक और वृत्तियाँ बनाईं। गृह्यकारों की भाषा और इन, सूत्रकारों की भाषा में भी थोड़ा अन्तर है इसी से हम कहते हैं कि गृह्यकारों के समय तक वेदका प्रचार बोलने की भाषा और लिखने की भाषा दोनों में था। जिस समय वेद कहे गये वह समय तो भारत का बहुत ही आदिस्थ काल था, लिखना लोग जानते ही न थे केवल सुन कर याद कर लेते थे इसी से वेद को श्रुति भी कहते हैं। ऋषियों ने जिस समय स्मृतियां बनाईं उस समय संस्कृत का पठन पाठन चल पड़ा था। संस्कृत अर्थात् संस्कार की हुई "यथानामस्तथागुण:" वाली भाषा तो कालिदास आदि कवियों की करतूत का फल है। विक्रम और भोज का समय संस्कृत की परमोन्नति का था। जैसे संस्कृत पद्यात्मक बहुत है वैसे ही वेद अधिकतर गद्यात्मक है। यह भी वैदिक भाषा का असंस्कृत होने का एक प्रमाण है क्योंकि पद्य रचना और साहित्य तथा अलंकार आदि की सृष्टि तभी होती है जब भाषा विशेष सुधर जाती है और सभ्यता का अंश अधिक फैल जाता है। संस्कृत ऐसी रसीली हुई कि इसके आगे लोगों को रूखा वेद न रुचने लगा बल्कि भोजप्रबन्ध से प्रगट है कि छान्दस शब्द भोज के समय में मूर्ख या साधारण पढ़े लिखे के लिये प्रयोग किया जाता था। इन सब का निचोड़ यही मन में आता है कि संस्कृत वही है जो कवियों और शास्त्रकारों तथा अन्य ग्रन्थकर्ताओं की भाषा है। वेद की भाषा संस्कृत नहीं है।

बालकृष्ण भट्ट

सृष्टिविषय पर प्राचीन मत।

सृष्टि की उत्पत्ति कैसे और कब हुई यह एक ऐसा प्रश्न है जिस के सोचने और समाधान करने में अनादि काल से लोग अपना समय लगाते आ रहे हैं और किसी परिणाम को नहीं पहुंचे हैं। इसी प्रकार के प्रश्नों ने ही संसार में नाना मत-वादों को उपस्थित किया। आस्तिक, नास्तिक, द्वैत, अद्वैत, एकात्मवाद, बह्वात्मवाद, एकजन्मवाद, बहुजन्मवाद कर्तृवाद, अकर्तृवाद, आदि जितने मत संसार में प्रचलित हुए सब इन्हीं प्रश्नों के

विचारने और उन का मनमाना समाधान करने के कारण। बहुत से उत्तम कोटि के विद्वानों ने ऐसे प्रश्नों पर जिन पर अनादि काल से मतभेद चला आता है ध्यान नहीं दिया है। संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं एक निर्वचनीय दूसरे अनिर्वचनीय। वे पदार्थ जिन को हम लोग इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष कर सकते हैं वा जिस पर विचार करने से विद्वान् गण एक परिणाम पर पहुँचे हैं निर्वचनीय हैं, और जिन पर विचार करने से लोग जुदे जुदे और विरुद्ध परिणामों पर पहुंचे हैं और जो अतीन्द्रिय हैं अर्थात् जो इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष नहीं हो सकते हैं वे अनिर्वचनीय हैं। गीता में कहा है:-

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्त निधनान्येव तत्र का परिदेवना।

हे अर्जुन, जगत वा जीव आदि भूतों की आदिम अवस्था अव्यक्त है और अन्तिम अवस्था भी अव्यक्त है, केवल मध्य अवस्था ही व्यक्त है जिसे हम लोग जान सकते हैं। अतः जगत की सृष्टि कैसे, कब और किस से हुई इस का लय कैसे और कब होगा, जीव कैसे पैदा होता है मर कर कहां जायगा, जीवात्मा क्या है इत्यादि अव्यक्त प्रश्नों पर चाहे कितना ही विचार किया जाय मतैक्य न होगा। यही उपदेश महात्मा बुद्धदेव का है। वे भी इस प्रकार की अनिर्वचनीय बातों के पीछे दिन रात व्याकुल रहने का निषेध करते हैं। यों कहिए कि भगवान कृष्ण चन्द्र के वचन का मागधी में अनुवाद करते हैं:-

यस्स मग्गं नजानासि आगतस्स गतस्स वा
उभो अन्ते विसंपस्सी निरत्थं परिदेवसि।

जिस संसार आदि के मार्ग को तुम नहीं जानते कि यह कहां से आता है और कहाँ जायगा जिस का आदि अन्त, उत्पत्ति और लय, अव्यक्त है उस के जानने के लिए तुम व्यर्थ श्रम करते हो।

वेदों में भी कहा गया है:-

को अद्धा वेद कइह प्रवोचत्
कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेना-
ऽथ को वेद यत आवभूव।

ऋ० मं १०।१२९।६

यह सृष्टि कैसे उत्पन्न हुई, कब उत्पन्न हुई इत्यादि प्रश्न अनिर्वचनीय हैं इन का ठीक पता न लगा है और न लगने की आशा है। इसी लिये विद्वानों ने सृष्टि को नित्य माना है। आकाश एक महत् विस्तृत अवकाश है जिसमें कितने ही ब्रह्माण्ड (Solar system) नित्य बनते बिगड़ते रहते हैं। कितने सूर्य बनते और कितने नष्ट हो कर विलीन हो जाते हैं, वेदों में एक स्थल में कहा गया है:-

तस्मिन्नग्नौ समिधा यस्य सूर्य्यः।

"कितने सूर्य उस ब्रह्माग्नि में नित्य समिधा के समान भस्म हो कर नष्ट हो जाते हैं।" यह आकाश अनन्त और अपरिमित है, इसकी इयत्ता का पता नहीं। महाभारत में भी कहा है:-

अनन्तमेतदाकाशं दुर्ज्ञेयं सचराचरैः।
ऊर्ध्वन्तरधस्तात्तु चन्द्रादित्यौ न दृश्यते।
तत्र देवाः स्वयंदीप्ता भास्कराभाग्निवर्चसाः।

"यह आकाश अनन्त है। इसे चराचर कोई जान नहीं सकता अर्थात् इस का पता नहीं पा सकता। (इस सौर मंडल के चारों ओर और न जाने कहां

तक दूसरे दूसरे सौर मंडल ग्रह उपग्रहों के सहित फैले पड़े हैं।) मान लो कि कोई ऊपर या नीचे बराबर चलता ही चला जाय तो वह चलते चलते ऐसे स्थान पर पहुंच जायगा जहां से उसे यह (हमारे) सूर्य्य और चन्द्र नहीं दिखाई पड़ेंगे किन्तु वहां दूसरे स्वयं दीप्त देव अर्थात् आकाशचारी ग्रह आदि मिलेंगे जो सूर्य्य के समान प्रकाशित और अग्नि के समान तेजवाले हैं"।

इस सौरमण्डल के चारो ओर और न जाने कहां तक दूसरे सौर मण्डल वहीं उपग्रहों के सहित फैले पड़े हैं।

इसी अनन्त आकाश के एक कोने में हमारा यह ब्रह्मांड है। यह हमारे यहां लिखा है कि इस ब्रह्मांड के उत्पन्न होने के पहिले हिरण्यगर्भ (Nebula) था।उसी हिरण्यगर्भ से यह समस्त ब्रह्मांड जिसमें ब्रह्म वा सूर्य्य प्रधान अंड है उत्पन्न हुआ है। इसी ब्रह्मांड का एक अंग हमारी यह पृथ्वी भी है। इस हिरण्यगर्भ के विषय में वेदों में कहा गया है:—

हिरण्यगर्भ समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम

"पहिले इस ब्रह्मांड की उत्पत्ति के पूर्व हिरण्य गर्भ था वही सब पृथिव्यादि का उत्पन्न करने वाला और पति था। उसी ने आकाश में इस पृथिवी को धारण किया, वही प्रजापति है उस की हम स्तुति करते हैं।"

पृथिव्यादि लोक उस हिरण्यगर्भ ब्रह्मांड से कैसे और कब पृथक हुए यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। *

वेदों में कहा है:—

को ददर्श प्रथमं जायमानम्,
अस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति।

पृथिव्यादि को उत्पन्न होते किस ने देखा जो अस्थवान होने पर भी अनवस्था को धारण करते हैं।

आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों की भी, बहुत दिनों तक सिर खपाने पर अब यही धारणा हो रही है कि पृथ्वी की उत्पत्ति कब हुई इस का ठीक पता नहीं लग सकता। सर आर्किबाल्ड गीकी महोदय जो यूरोप के एक बड़े पदार्थवेत्ता और भूगर्भविद् हैं, लिखते हैं:—

Though the question of the age of the Earth has continued to engage the attention of physicist, geologist, palaeontologists since 1880 no general agreement has yet been reached in regard to it. * * *. In the present state of science it is out of our power to state positively what must be the lowest limit of the age of the Earth.

"यद्यपि १८८० से पदार्थ विद्या, भूगर्भ विद्या विकृताश्मीभूतपदार्थविद्या के मर्मज्ञ विद्वानों का ध्यान इस प्रश्न पर कि पृथ्वी कब उत्पन्न हुई लगातार आकर्षित हो रहा है पर अब तक वे लोग किसी निश्चित परिणाम पर नहीं पहुंचे हैं। साइंस की वर्तमान अवस्था में यह निश्चित रूप से कहना हमारी

* इस विषय पर यद्यपि ब्राह्मणादि ग्रन्थों में नाना प्रकार की कथाएं मिलती हैं पर वे सब की सब परस्पर विरुद्ध हैं, इसी लिये निरुक्त में यास्काचार्य्य जी कहते हैं:— बहुभक्तिवादीनि ब्राह्मणानि भवन्ति, ७. ७. २

शक्ति के बाहर है कि पृथ्वी को उत्पन्न हुए कम से कम कितने दिन हुए।"

पृथ्वी की समान दशा कभी नहीं रही है। जहां आज बड़े बड़े नगर, ग्राम, खेत, रेलवे, आदि हैं हजारों वर्ष पूर्व वहां घोर दुर्भेद्य जंगल और पहाड़ थे। जहां आज स्थल है लाखों वर्ष पहिले वहां समुद्र लहर मारता था। पहाड़ों की चोटियों पर समुद्र में रहने वाले जन्तुओं की हड्डियाँ मिलती हैं जिससे यह स्पष्ट अनुमान होता है कि वे कभी समुद्र के नीचे थीं। हिमालय की चोटी कभी समुद्र के नीचे थी इस का पता अथर्ववेद के इस मन्त्र से चलता है:-

यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः। १९।५।३९।८

"जहां पर नावें टक्कर खाकर टूट जाती थीं और जहां हिमालय की चोटी है।"

यही क्या, जहां पर आज समुद्र लहर मार रहा है वहां लाखों वर्ष पूर्व स्थल था।

After the Palaeozoic era and during the secondary stage of revolution, when India was probably connected with Africa by dry land and ocean current swept from the Persian Gulf to Ararallis (which stood on the edge of the Rajputana sea) the rock area extended over Assam and the Eastern Himalayas while Burma, North-Western Himalayas, and the uplands beyond the Indus were still submarine, or undergoing alteration of elevation and depression.

पेलेजोइक काल के पीछे आरोह के दूसरे कल्प में जब भारतवर्ष शायद अफ्रिका से स्थल द्वारा मिला हुआ था और फारस की खाड़ी से अर्बुदगिरि (अरवली) तक समुद्र लहर मारता था, तब आसाम, पूर्व हिमालय की ओर पथरीली भूमि का विस्तार था। ब्रह्मा तथा सिंधु के पार के पश्चिमोत्तर प्रदेश या तो जल के नीचे थे अथवा निकल रहे थे।

इस प्रकार इस अनवस्थारूपा पृथिवी पर सदा से व्यावर्त होता आया है। मिडागास्कर द्वीप की जंगम और स्थावर सृष्टि को देख कर कितने सृष्टितत्ववेत्ताओं की सम्मति है कि वह कभी भारतवर्ष से सम्मिलित था। यह द्वीप यद्यपि अफ्रिका के समीप है पर इसके जंगम और स्थावर एशिया खंड के भारतवर्षीय जंगम और स्थावरों से मिलते हैं।

इसी प्रकार किसी समय में एशिया भी अमेरिका से जुड़ा था। यों इस पृथिवी के भिन्न भिन्न भाग कभी नीचे कभी ऊपर कभी जल कभी थल में परिणत होते रहते हैं इसी लिये वेदों में इसे "स्पन्दन्तं यदनवस्थाविभर्त्ति" कहा है।

हमारे यहाँ लिखा है कि इस पृथिवी पर सब से पहिले ओषधियों की उत्पत्ति हुई है वेदों में लिखा है:-

"या ओषधी पूर्वजाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा"

देवताओं से तीन युग पहिले ओषधी उत्पन्न हुई। इन्हीं उत्स्रोतस ओषधियों से तिर्य्यक्स्रोतस और तिर्य्यक्स्रोतस से अर्वाक्स्रोतसों की उत्पत्ति हुई। मनुष्य अर्वाक्स्रोतस के अन्तर्गत है। मनुष्यों और मृगादि में केवल यही अन्तर है कि वे तिर्य्यक्स्रोतस हैं और यह अर्वाक् स्रोतस। मनुष्य की सृष्टि पहिले किस वा किन स्थानों में हुई यह ठीक निश्चय नहीं हुआ है पर इसमें किसी को कुछ वक्तव्य नहीं कि बहुत पूर्वकाल में जिसे

हम अनिर्दिष्ट काल कह सकते हैं मनुष्यजाति इस पृथिवी के एक या कई स्थानों में आरोह नियमानुसार उत्पन्न होगई। इसी मानवजाति की आर्य्य जाति भी एक शाखा है जिस का सौभाग्य-सूर्य्य सब से पहिले उदय हुआ। इस जाति ने संसार में सब से पहिले विज्ञान और सभ्यता प्राप्त की। आर्य्यों की सदा से अपने सन्तानों के प्रति यही शिक्षा थी "यान्यस्माकं सुचरितानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि"। इन्हीं ने सब से पहिले अपनी भाषा को परिष्कृत बनाया और इस योग्य किया कि उस भाषा में अपने मानसिक भावों को प्रकट कर सकें। अपनी इस सुविस्तृत वाणी में उन लोगों ने बहुत कुछ गद्य पद्य और गीतों की रचना की जिन्हें उन के सन्तान कंठाग्र रखते आए। ये मन्त्र जो उन के सन्तानों को कंठाग्र थे पीछे भिन्न भिन्न कालों में संहिताओं में संगृहीत हुए जो वेद कहलाए। यद्यपि महाभारत के पीछे तक मन्त्रों की रचना वैदिक भाषा में होती रही पर फिर भी मन्त्रों की रचना कबसे प्रारम्भ हुई इस का पता चलाना दुःसाध्य है। यह कहना अनुचित न होगा कि आर्य्यों को जब वाक्शक्ति प्राप्त हुई और जब इनकी भाषा इस योग्य हुई कि ये अपने अभिप्रायों को शब्दों द्वारा प्रकाशित कर सकें तभी से मन्त्रों की रचना प्रारम्भ हुई।

कोश के विचारणीय शब्द।

कोश के सम्पादन में निम्नलिखित शब्दों के अर्थों का ठीक ठीक निश्चय नहीं हो सका है। आशा है हिन्दी के मर्मज्ञ इन पर विचार कर के अपनी अपनी सम्मतियां शीघ्र भेजेंगे।

अहूख—

सोधो सुरद्रुम विद्रुम बिंब लै फलो फल फूलन दाम्यो दरेरे। देव, तहां रुचि रंचक ही शुचि साधु अगाधु री माधुरी घेरे। पीवत हू पिय प्यास बुझै न अहूख, महूखन, ऊखन हेरे। शुद्ध सुधारस धार सुलै विधि आनि धरी अधरान में तेरे।

(सुखसागर तरंग)

अहोर—

वि० [अ=नहीं+होड़=बाज़ी] अनुपम। बे जोड़? संज्ञा पुं [सं० होड़-नौका विशेष] नाव?

ओर वार दृग जे परे तेरे रूप अहोर।
मन मलाह अब सकत नहिं याते इन्हें बहोर॥

(रसनिधि कृत रतन हजारा)

आढ़ आढ़ करना=

(क) आढ़ आढ़ करत असाढ़ आयो एरी आली डर से लगत देखि तम के जमाक ते। श्रीपति ये मैन माते मोरन के बैन सुनि परत न चैन बुंदियान के झमाक तें॥

(ख) हरि तेरी माया को न बिगोयो?। सौ योजन मरजाद सिंधु की पल में राम बिलोयो। नारद मगन भए माया में ज्ञान बुद्धि बल खोयो। साठ पुत्र अरु द्वादस कन्या कंठ लगाए जोयो। शंकर को चित हस्यो कामिनी सेज छाँड़ि भू सोयो। जारि मोहिनी आढ़ आढ़ कियो तब नख सिख तें रोयो। सो भैया राजा दुरजोधन पल में गरद समोयो। सूरजदास काँच अरु कंचन एक हि धगा पिरोयो॥

[सूरसागर (वेंकटेश्वर) पृ· ५ पं· ६]

(ग) स्वारथ लागि रहे वे आढा। नाम लेत जस पावक डाढ़ा। कबीर।

सूचना और सम्मति।

श्रीयुक्त रवीन्द्रनाथ ठाकुर आजकल बंगभाषा के सर्वप्रधान कवि और ग्रन्थकार हैं। इन्होंने बँगला में जितनी पुस्तकें लिखी हैं उतनी और किसी ने नहीं। जिन्होंने इनकी रचनाओं को विचारपूर्वक देखा है उनमें से अधिकांश का कथन है कि ये बंगाल ही के कवि नहीं बल्कि संसार के उत्तम ग्रन्थकारों के बीच स्थान पाने योग्य हैं। इन्होंने बंगसाहित्य का जो विषय हाथ में लिया उसे अलंकृत किया। मानव हृदय के गूढ़ मर्मस्थलों तक जितना ये पहुंचे हैं उतना और कोई आधुनिक लेखक नहीं। इन्होंने मनुष्य के बाहरी आचरणों का भीतरी कारण दिखाने में बड़ा कौशल दिखाया है। इनके हाथ में पड़ कर बंगसाहित्य अपने संकीर्ण मंडल से आगे बढ़ विश्वसाहित्य का सहवर्ती हुआ है। जिन भावनाओं और आदर्शों से जगत भर के मनुष्य उन्नति और नवीन जीवन के लिए चंचल होते हैं उन्हीं का अनुभव इन्होंने अपने पाठकों को कराया है। इन्हों ने स्वदेशभक्ति और वीररस के सञ्चार के लिए भी जो गान किया है उसमें संसार की किसी जाति वा सम्प्रदाय के विरुद्ध कोई भाव नहीं है। बंगाली लोगों ने अपने इस श्रेष्ठ कवि का आदर भी अच्छा किया। माघ महीने में बंगीय-साहित्य-परिषद् के उद्योग से कलकत्ते के टाउनहाल में बड़े समारोह के साथ रवीन्द्र बाबू की संवर्द्धना (अभिषेक) की गई जिसमें इन्हें हाथीदाँत पर अंकित अभिनन्दनपत्र, चाँदी का अर्घ्यपात्र और सोने का कमल अर्पित किया गया। उत्सव में प्रत्येक श्रेणी के लोग उपस्थित थे।

कुछ दिन हुए कप्तान अमंडसन नामक एक अंग्रेज अन्वेषक दक्षिणी ध्रुव का पता लगाने गए थे। समाचार मिला है कि वे ध्रुव तक पहुंच गए। मार्ग में उन्हें बड़ी बड़ी कठिनाइयां पड़ीं; कुत्तों का मांस तक खाना पड़ा। कप्तान साहब का कथन है कि दक्षिणी ध्रुव बर्फ़ के एक बड़े विस्तृत मैदान के बीच में है जिसकी ऊंचाई समुद्र तल से १०५०० फ़ीट है। अमंडसन साहब ने उस स्थान को निर्दिष्ट करने और अपनी यात्रा का चिह्न रखने के लिए पत्थरों का ढेर लगा कर एक चबूतरा सा बनाना चाहा पर बर्फ़ के कारण वे कृतकार्य्य न हुए। लंडन की रायल एशियाटिक सोसायटी ने उन्हें बधाई का तार भेजा है।

बंगीय-साहित्य-परिषद् के तीन सभ्य बर्दवान ज़िले के अन्तर्भाग में जिसे मध्यकाल में उत्तर राढ़ि कहते थे, पुराने चिह्नों की खोज करते करते पहुंचे। वहां उन्हें एक मसजिद मिली जिस में आठ खंभे थे। खंभों के सिरों पर जो पत्थर दिए थे उनमें कुछ लेख दिखाई पड़े। मिलान करने पर मालूम हुआ कि पहिले सारा लेख एक ही पत्थर पर था जिसके मसजिद बनानेवालों ने आठ बराबर टुकड़े कर दिए। शिलालेख संस्कृत में है और उस में राजा चन्द्रसेन का नाम मिलता है। लेख में राजवंशावली, सम्वत् तिथि तथा और कई बातें थीं पर सब टांकियों से मिटा डाली गईं। मसजिद सन् १५३५ की बनी हुई है।

यूरप से महाभारत का एक नया संस्करण निकलने वाला है। कुछ दिन हुए हमने लिखा था कि उसमें भारतीय विद्वानों का भी योग देना आवश्यक है। इस पर अभ्युदय के अनुभवी सम्पादक महाशय असंबद्ध आक्षेप करते हुए कहते हैं "भारत में इसके योग्य विद्वान है कौन? शायद कोश-विभाग में हों"। ठीक है, इस कार्य्य के लिए तो प्रोफेसर मैकडानल्ल के समान ऐसे विद्वान् होने चाहिए जो "काशिका वृत्ति" को Benares Commentary कहें। डाक्टर भांडारकर मि० दीक्षित, मि० कृष्णमाचार्य्य, मि० श्यामशास्त्री, डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण आदि के नाम शायद अभी आपने नहीं सुने हैं। किसी विषय के विद्वानों के नाम आदि का पता तो उन लोगों को रहता है जो उस विषय से कुछ सम्पर्क रखते हैं। बाज़ार की गलियों में उनके नामों की मुनादी तो होती नहीं रहती कि शाम के वक्त टहलते टहलते गए और सुन आए।

भारत की राजधानी कलकत्ते से दिल्ली जा रही है। प्रवासी के विद्वान् सम्पादक बंगभाषियों को सलाह देते हैं कि वे शीघ्र दिल्ली में जाकर अपना अड्डा जमावें, वहां बँगला के पत्र निकालें और बड़े बड़े पुस्तकालय खोलें। हमारी समझ में हिन्दीवालों को बंगालियों से भी अधिक व्यग्र होना चाहिए क्योंकि बंगला और उर्दू की कार्य्य भूमि भिन्न भिन्न है। पर हिन्दी और उर्दू एक ही चारपाई पर पैर फैलाना चाहती हैं। हमलोगों को इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि दिल्ली पर हमारी हिन्दी का स्वत्व है अतः वहां कोई भाषा इस प्रकार की प्रधानता न पकड़ने पावे जिससे हिन्दी का मार्ग संकीर्ण हो। संयोग से एक ऐसी नगरी राष्ट्रनगरी बन रही है जहां हिन्दी बोली जाती है, अतएव हिन्दी राष्ट्रभाषा मानने वालों को विशेष सतर्क होना चाहिए। दिल्ली में जितने हिन्दी-हितैषी हों उन्हें इस बात का भरपूर उद्योग करना चाहिए कि नई राजधानी के बनते बनते वहां हिन्दी के बड़े बड़े पुस्तकालय खुल जायँ और अच्छे अच्छे पत्र और पत्रिकाएँ निकल पड़ें।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा का साधारण अधिवेशन।

शनिवार तारीख़ ३० दिसम्बर १९११ सन्ध्या के ५½ बजे

स्थान—सभाभवन।

(१) बाबू ब्रजचन्द्र के प्रस्ताव तथा बाबू कन्हैयालाल के अनुमोदन पर मुंशी भगवान दीन सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (ता० २५ नवम्बर १९११) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) प्रबन्धकारिणी समिति का तारीख २५ नवम्बर १९११ का कार्यविवरण सूचनार्थ पढ़ा गया।

(४) निम्न लिखित सज्जन सभासद चुने गए:— (१) सेठ गंगा सहाय खजानची आनरेरी मजिस्ट्रेट—इन्दौर छावनी ५) (२) पं० माताप्रसाद पांडे-तुकागंज-इन्दोर ५) (३) बाबू बलबीर दयाल सबओवरसीयर-उनाव ५॥) (४) पं० कृष्णानन्द मिश्र उपनाम विष्णुचन्द्र-अभनौली पो० सिरसी जि० बस्ती १॥) (५) पं० शिवपाल शर्म्मा, स्टेशन मास्टर, शोहरत गंज, जि० बस्ती ३) (६) मिस्टर ई० डबलू० ई० कम्प, ९ केनिङ्गरोड-इलाहाबाद

३) (७) बाबू जयरामदास-राजघाट-काशी २) (८) बाबू ज्योतिप्रसाद एम० ए०, सम्पादक, जैन-प्रचारक और जैन हितकारी-देवबन्द-जि० सहारनपुर १॥) (९) बाबू गोरख प्रसाद गुप्त मकरन्द नगर-पो० सरायमीरां-जि० फतहगढ़ १॥) (१०) पं० अयोध्या प्रसाद वैद्य ज्योतिषी-आयुर्वेदिक औषधालय-नं० ११८—झांसी १॥) (११) पं० चन्द्रभानु मिश्र पटवारी-ग्रामकोठा-पो० गगहा-जि० गोरखपुर १॥) (१२) बाबू श्यामलाल लखनेश्वर राय लेन नं० १ । १ जोड़ासाकू कलकत्ता ५) (१३) बाबू कन्हैयालाल-एम एल० बी० क्लास-वैश्य बोर्डिङ्ग हाउस आगरा ५) (१४) बाबू चंडी प्रसाद गुप्त-सब ओवरसीयर-उन्नाव १॥) (१५) बाबू कुन्दनलाल-सबओवरसीयर-उन्नाव १॥) (१६) बाबू रामप्रसाद मुंसिफ रायबरेली १॥) (१७) पण्डित सिद्धिनाथ दीक्षित-सुधानिधि कार्यालय-दारागंज प्रयाग १॥) (१८) पण्डित उदित मिश्र-असिस्टेण्ट टीचर-माडल स्कूल-काशी १॥) (१९) पं० रामानन्त शर्म्मा ब्रह्मभट्ट-ई० आई० रेलवे-स्टेशन कानपुर १॥) (२०) बाबू कमला प्रसाद गोभिल-वैश्य बोर्डिङ्ग हाउस-आगरा ३) (२१) पण्डित शंकर दत्त अवस्थी-पुखरायां-जि० कानपुर १॥) (२२) पण्डित लोकनाथ अवस्थी-अवस्थियाना-बिल्हौर जि० कानपुर १॥) ।

(५) सभासद होने के लिये १५ सज्जनों के नवीन आवेदनपत्र सूचनार्थ उपस्थित किए गए ।

(६) लाला छोटे लाल का ११ अक्तूबर का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने उप-सभापति के पद से इस्तीफ़ा दिया था ।

निश्चय हुआ कि यह आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय ।

(७) प्रबन्धकारिणी समिति का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि पण्डित बालकृष्णभट्ट तथा पण्डित गोविन्द नारायण मिश्र ने हिन्दी की बहुत सेवा की है अतः वे सभा के आनरेरी सभासद चुने जांय ।

यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ ।

(८) उपमंत्री ने सोती शंकरलाल सभासद की मृत्यु की सूचना दी जिस पर सभा ने शोक प्रगट किया ।

(९) बाबू लक्ष्मी नारायण कानूंगो फैज़ाबाद का इस्तीफ़ा उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ ।

(१०) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईं:—संयुक्त प्रदेश की गवर्न्मेंट,—Sacred Books of the Hindus Vol. VI, District Gazetteer Vols XYI, XII and XXVI for Moradabad, Etah and Benares, Fauna of British India (Fresh water Sponges, Hydroids and Poly zoa). बाबू जगन्मोहन वर्म्मा, काशी—Trilingual Vocabulary, पण्डित बलभद्र शर्म्मा कविकाव्य रत्नाकर, बम्बई—Welcome. अधिकारी जगन्नाथ दास विशारद, भरत पुर—कविकर्त्तव्य । पण्डित रूपराम शर्म्मा, अलीगढ़—शुभाषीश । बाबू चतुर्भुज सहाय वर्म्मा-रामचरित्रोद्दीपन नाटक, ब्रह्मभट्ट प्रकाश खण्ड १, २ और ३, तत्वविचार, उपनयनोपदेश । पण्डित जगन्नाथ मिश्र-गायत्री भाष्यका. Discriptive Catalogue of Sanskrit Mss. Iudian Antiquary for November & December 1911

(११) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई ।

बालमुकुन्द वर्म्मा, उपमंत्री ।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

भाग १६ | फरवरी १९१२ | संख्या ८

मौर्य्य।

प्रबल प्रतापी महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य्य थे, यह प्रायः निर्विवाद है। किन्तु बहुत से लोगों का मत है कि मौर्य्य वंश एक शूद्रा मुरा से चला है और वह चन्द्रगुप्त की माता थी। अस्तु, यह बात देखनी चाहिये कि महाराज चन्द्रगुप्त जिस वंश में उत्पन्न हुए हैं वह मौर्य्य वंश किसी क्षत्रिय वंश की शाखा विशेष है अथवा किसी मुरा नाम की शूद्रा से चला है।

हिन्दी मुद्राराक्षस की भूमिका में भारतेन्दु जी लिखते हैं कि "महानन्द जो कि नन्दवंश का था, उसके नौ पुत्र उत्पन्न हुए। उसकी बड़ी रानी से आठ और मुरानाम्नी नापितकन्या से नवां चन्द्रगुप्त। उसके मन्त्री शकटार से और उससे वैमनस्य हो गया, इस कारण मन्त्री ने चाणक्य द्वारा महानन्द को मरवा डाला और चन्द्रगुप्त को चाणक्य ने राज्य पर बिठाया जिसकी कथा मुद्राराक्षस में प्रसिद्ध है।"

किन्तु यह भूमिका जिसके आधार पर लिखी गई है वह मूल संस्कृत मुद्राराक्षस के टीकाकार का लिखा हुआ उपोद्घात है। पर भारतेन्दु जी ने उसे भी अविकल ठीक न मान कर कथासरित्सागर के आधार पर उसका बहुत सा संशोधन किया है। कहीं कहीं उन्होंने कई कथाओं का उलटफेर कर दिया है। जैसे हिरण्यगुप्त के रहस्य के बतलाने पर राजा के फिर शकटार से प्रसन्न होने की जगह विचक्षणा के उत्तर से प्रसन्न होकर शकटार को छोड़ देना तथा चाणक्य के द्वारा अभिचार से मारे जाने की जगह महानन्द का विचक्षणा के दिये हुए विष से मारा जाना इत्यादि।

ढुण्ढि जी लिखते हैं कि "कलि के आदि में नन्द नाम का एक राजवंश था। उसमें सर्वार्थसिद्धि मुख्य था। उसकी दो रानियां थीं एक सुनन्दा, दूसरी वृषला मुरा। सुनन्दा के एक मांसपिण्ड और मुरा को मौर्य्य उत्पन्न हुआ। मौर्य्य के सौ पुत्र हुए। मन्त्री राक्षस ने उस मांसपिण्ड को तेल में नौ टुकड़े कर के रक्खा जिससे नौ पुत्र हुए। सर्वार्थसिद्धि अपने उन नौ लड़कों को राज्य देकर तपस्या करने

चला गया और मौर्य्य को सेनापति बना गया। नन्दों ने ईर्षा से मौर्य्य को और उसके लड़कों को मार डाला। केवल एक चन्द्रगुप्त प्राण बचा कर भागा, जो चाणक्य की सहायता से नन्दों का नाश कर के मगध का राजा बना"।

कथासरित्सागर के कथापीठलम्बक में चन्द्रगुप्त के विषय में एक विचित्र कथा है। उसमें लिखा है कि "नन्द के मर जाने पर इन्द्रदत्त (जो कि उसके पास गुरुदक्षिणा के लिये द्रव्य माँगने गया था) ने अपनी आत्मा को योग बल से राजा के शरीर में डाला, और आप राज्य करने लगा। जब उसने अपने साथी वररुचि को एक करोड़ रुपया देने के लिये कहा तब मन्त्री शकटार ने, जिसको राजा के मर कर फिर से जी उठने पर पहिले ही से शङ्का थी, विरोध किया। तब उस योगानन्द राजा ने चिढ़ कर उसको कैद कर दिया और वररुचि को अपना मन्त्री बनाया। योगानन्द बहुत विलासी हुआ, उसने राज्यभार सब मन्त्री पर रख दिया। उसकी ऐसी दशा देख कर वररुचि ने शकटार को छुड़ाया और दोनों मिल कर राज्य कार्य्य करने लगे। एक दिन योगानन्द की रानी के चित्र में उसकी जाँघ पर एक तिल बना देने से राजा ने उस पर शंका करके शकटार को वररुचि के मार डालने की आज्ञा दी। पर शकटार ने अपने उपकारी को छिपा रक्खा।

उस राजा के पुत्र हिरण्यगुप्त ने जंगल में अपने मित्र रीछ से विश्वासघात किया। इस से वह पागल और गूंगा हो गया। राजा ने कहा 'यदि वररुचि होता तो इसका कुछ उपाय करता'। अनुकूल समय देख कर शकटार ने वररुचि को प्रकट किया। वररुचि ने हिरण्यगुप्त को सब रहस्य सुनाया और उसे नीरोग किया। इस पर योगानन्द ने पूछा कि तुम्हें यह बात कैसे ज्ञात हुई? वररुचि ने उत्तर दिया 'योग बल से, जैसे रानी की जाँघ का तिल'। राजा उस पर बहुत प्रसन्न हुआ, पर वह फिर न ठहरा और जङ्गल में चला गया। शकटार ने समय ठीक देख कर चाणक्य द्वारा योगानन्द को मरवा डाला और चन्द्रगुप्त को राज्य दिलाया।

बौद्ध लोगों के विवरण से ज्ञात होता है कि तक्षशिला निवासी चाणक्य ब्राह्मण ने धननन्द को मार कर मोरिय नगर के राजकुमार चन्द्रगुप्त को राज्य दिया।

इन विवरणों से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य्य था, पर न तो कथासरित्सागरकार ने ही और न बौद्धों ही ने उसे नापितकन्यागर्भसम्भव लिखा है। बौद्ध लोग तो उसे एक दूसरे वंश का राजकुमार ही बताते हैं।

ढुण्ढि ने भी नाटक में वृषल और मौर्य्य शब्द का प्रयोग देख कर चन्द्रगुप्त को मुरा का पुत्र लिखा है पर पुराणों में कहीं भी चन्द्रगुप्त को वृषल या शूद्र नहीं लिखा है।

पुराणों में जो शूद्र शब्द का प्रयोग किया है वह शूद्राजात महापद्म के वंश के लिये है। यह नीचे लिखे हुए विष्णुपुराण के उद्धृत अंशों पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जायगा।

"ततो महानंदी १८ इत्येते शैशुनाभा भूपालास्त्रिवर्षशतानि द्विषष्ट्यधिकानि भविष्यन्ति १९ महानन्दिनस्ततः शूद्रागर्भोद्भवोऽतिलुब्धोऽतिबली

महापद्मनामानन्दः परशुराम इवापरोऽखिलक्षत्रिय-नाशकारी भविष्यति २० ततः प्रभृति शूद्राः भूपाला भविष्यन्ति । २१ स एकच्छत्रामनुल्लङ्घितशासनो महापद्मः पृथिवीं भोक्ष्यते २२ तस्याप्यष्टौ सुताः सुमाल्याद्यः भवितारः २३ तस्य महापद्मस्यानुपृथिवी भोक्ष्यन्ति २४ महापद्मपुत्राश्चैकैकः वर्षशतमवनी पतयो भविष्यन्ति २५ ततश्च नव चैतान्नन्दान् कौटल्यो ब्राह्मणः समुद्धरिष्यति २६ तेषामभावे मौर्य्याः पृथिवीं भोक्ष्यन्ति २७ कौटिल्य एव चन्द्रगुप्तमुत्पन्न राज्येऽभिषेक्ष्यति २८"

इससे यह मालूम होता है कि महानन्दि के पुत्र महापद्म ने जो शूद्राजात था अपने पिता के बाद राज्य किया और उसके बाद सुमाल्य आदि आठ लड़कों ने राज्य किया। और इन सब ने मिल कर महानन्द के बाद १०० वर्ष राज्य किया। इनके बाद चन्द्रगुप्त को राज्य मिला। अब यह देखना चाहिए कि चन्द्रगुप्त को जो लोग महानन्द का पुत्र बताते हैं उन्हें कितना भ्रम है—क्योंकि उन लोगों ने लिखा है कि "महानन्द को मार कर चन्द्रगुप्त ने राज्य किया"। पर ऊपर लिखी हुई वंशावली से यह सिद्ध हो जाता है कि महानन्द के बाद १०० वर्ष तक महापद्म और उसके लड़कों ने राज्य किया। तब चन्द्रगुप्त की कितनी आयु मानी जाय कि महानन्द के बाद महापद्मादि के १०० वर्ष राज्य कर लेने पर भी इसने २४ वर्ष शासन किया?

यहां पर यह एक विलक्षण बात होगी यदि 'नन्दान्तं क्षत्रिय कुलम्' के अनुसार शूद्राजात महापद्म और उसके लड़के तो क्षत्रिय मान लिए जांय और "अतः परं शूद्राः पृथिवीं भोक्ष्यन्ति" के अनुसार शूद्रता बेचारे चन्द्रगुप्त से आरम्भ की जाय। महानन्द को जब शूद्रा से एक ही लड़का महापद्म था तब दूसरा चन्द्रगुप्त कहाँ से आया? पुराणों में चन्द्रगुप्त को कहीं भी महानन्द का पुत्र नहीं लिखा है।

ढुण्ढि ने नाटक में चन्द्रगुप्त को वृषल और मौर्य्य लिखा देख कर "अतः परं शूद्राः" इत्यादि का अन्ध अनुसरण किया है। उसके बाद सब राजाओं को शूद्र मान कर "नन्दान्तं क्षत्रियकुलम्" इत्यादि लिखा है।

और ढुण्ढि के उपोद्घात से एक बात का और पता लगता है कि चन्द्रगुप्त महानन्द का पुत्र नहीं किन्तु मौर्य्य सेनापति का पुत्र था। जब कि महापद्मादि शूद्रागर्भोद्भव होने पर भी नन्दवंशी कहाये तब चन्द्रगुप्त मुरा के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण नन्दवंशी होने से क्यों वञ्चित किया जाता है?

मुद्राराक्षस नाटक में राक्षस मन्त्री की कथा प्रधान है, किन्तु मुद्राराक्षस का मूल आधार बृहत्कथा है (१) जिसमें वररुचि मन्त्री से एक सच्चे राक्षस की मैत्री की कथा है(२)। पर ढुण्ढि जी ने लिखा है—

वक्रनासादयस्तस्य कुलामात्या द्विजातयः ।
बभूवुस्तेषु विख्यातो राक्षसोनाम भूसुरः ॥ (३)

ढुण्ढिजी के ध्यान में यह बात न आई कि चतुर नाटककार ने वररुचि ब्राह्मण और उस के मित्र सच्चे राक्षस(४) को एक सांचे में ढाल दिया है।

(१) बृहत्कथामूले मुद्राराक्षसे इति दशरूपावलोकः।
(२) नाम्ना वररुचिः किञ्च कात्यायन इति श्रुतः। पारंसम्प्राप्य विद्यानां कृत्वा नन्दस्य मन्त्रिताम् (कथा-पीठ लम्बक २ तरङ्ग)
(३) तैलङ्ग संस्करण ढुण्ढि का उपोद्घात देखो।
(४) "नहि कन्तु मठं आकां राक्षसो मित्र मस्ति मे"

पर मुरा से मौर्य्य की उत्पत्ति और भी भ्रम में डालती है। क्योंकि मुरा का अपत्य व्याकरण से मौर या मौरेय हो सकता है, पर प्राचीन लोगों ने मौर्य्य शब्द का व्यवहार किया है। मौर्य्यै*र्हिरण्यार्थिभिरर्चाः प्रकल्पिता-पतंजलिभाष्य ५।३।९९॥

क्या शूद्रागर्भसम्भव महानन्द के पुत्र महापद्म की कथा से चन्द्रगुप्त के शूद्र होने की कल्पना तो नहीं की गई?

* यह मौर्य्य शब्द यदि संस्कृत का माना जाय तो मोरी शब्द से बना होगा। नेपाली बौद्धों का एक ग्रंथ लंकावतार सूत्र है जिसमें मोरी और मौर्य्य दोनों शब्द इस प्रकार आए हैं:-

मयि निर्वृते वर्षशते व्यासो वै भारतस्तथा।
पांडवाः कौरवा नन्दाः पश्चान् मौरी भविष्यति।
मौर्य्या नन्दाश्च गुप्ताश्च ततो म्लेच्छा नृपाधमाः
म्लेच्छान्ते शस्त्र संक्षोभः शस्त्रान्ते च कलेर्युगः

यहां या तो दोनों शब्द वंशसूचक हैं अथवा मोरी वंश का आदि पुरुष हो जिससे मौर्य्य हुए।

दूसरी बात यह हो सकती है कि 'मौर्य्य' शब्द संस्कृत सांचे में ढला हुआ पाली का 'मोरिय' शब्द है। पाली भाषा का 'मोरिय' शब्द मोर से बना है जिसका अर्थ मयूर है। कातादीनमिमियाच (कच्चायन ३५५) के अनुसार मोर में 'इयप्रत्यय' लगा कर मोरिय बना है (मोरो अस्स अत्थीति मोरियो)। महावंसो में चन्द्रगुप्त को साफ़ मोरिय लिखा है, जैसे-

मोरियानं खत्तियानं वंसजातं सिरीधरं।
चन्दगुत्तोति पञ्ञातं चाणक्को ब्राह्मणो ततो॥
नवमं धननन्दन्तं घातेत्वा चण्डकोधसा।
सकले जम्बुदीपस्मिं रज्जे समभिसिञ्चि सो॥

यदि कहा जाय कि पाली या प्राकृत का शब्द लौट कर संस्कृत में कैसे गया तो ऐसे बहुत से शब्द बतलाए जा सकते हैं जो अब संस्कृत मान लिए गए हैं पर वास्तव में प्राकृत के हैं, जैसे 'मरंद' (मकरन्द), मेह (मेघ) इत्यादि-सम्पादक

मुद्राराक्षस के तपस्वी सर्वार्थसिद्धि को ढुण्ढि ने नन्दवंश का एक प्रधान राजा माना है। पर इसका ध्यान भी न किया कि विशाखदत्त ने राक्षस की जिस देवोज्ज्वल वृत्ति को दिखाने का उद्योग किया है यह कल्पित सर्वार्थसिद्धि उसी का पोषक मात्र है, क्योंकि यदि नव नन्दों के बाद कोई भी नन्द वंश का शेष न रहा तो चन्द्रगुप्त के साथ राक्षस की कूटनीति का क्या प्रयोजन था? चन्द्रगुप्त यदि महानन्द का ही लड़का था तो सब नन्दों के बाद वही राज्याधिकारी था। इसी से कवि को अवश्य एक शेष नन्दवंशी की कल्पना करनी पड़ी नहीं तो उसकी कथा असम्बद्ध प्रतीत होती और राक्षस स्वामिभक्त के बदले स्वामिशत्रु कहा जाता।

इसी तरह हेमचन्द्राचार्य्य ने चन्द्रगुप्त को मोर पालनेवाले का लड़का बताया है। पर स्थविरावली की कथा बिलकुल निर्मूल है और जैनियों के इतिहास को लोग बहुत ठीक भी नहीं मानते। तथा ठीक उसके विपरीत बौद्धों के प्रसिद्ध ग्रन्थ महावंसो में मौर्य्य को क्षत्रिय वंश में लिखा है। इन्हीं सब कारणों से मौर्य्य वंश को क्षत्रिय कुल की शाखा मानने की धारणा होती है और इसके प्रमाण भी इतिहासों में बहुत मिलते हैं।

जो लोग चन्द्रगुप्त को मौर्य्य वंश का आदिपुरुष मानते हैं उन्हें ध्यान देना चाहिए कि मौर्यवंश चन्द्रगुप्त के बहुत पहले से था। क्योंकि बौद्धों के विवरण से ज्ञात होता है कि महात्मा बुद्ध के शरीरभस्म का एक हिस्सा पिप्पलीकानन (१) के

(१) पिप्पली कानन को कोई लोग हिमालय प्रदेश में

मौर्य्य नृपतिगण ने भी पाया था और इसी से बहुत लोगों का अनुमान है कि चन्द्रगुप्त के आदि पुरुष पिप्पलीकानन के मौर्य्य नृपति ही थे। हमको यह अवश्य मानना पड़ेगा कि मौर्य्य कुल में चन्द्रगुप्त सा पराक्रमी तब तक नहीं हुआ था और इसी से उसके कुलमर्य्यादा-सूचक मौर्य्य संज्ञा का व्यवहार लोग उसी के साथ करने लगे। किन्तु चन्द्रगुप्त मौर्य्य वंश में पैदा हुआ था न कि चन्द्रगुप्त से मौर्य्य वंश चला।

इस मौर्य्य कुल का सब से आदिमस्थान पिप्पली कानन था तथा उसका सबसे प्रसिद्ध पहिला सम्राट् चन्द्रगुप्त हुआ। पिप्पलीकानन के नृपति गण ही चन्द्रगुप्त के आदि पुरुष थे। चन्द्रगुप्त मौर्य्यों के आदि पुरुष नहीं थे बल्कि प्रमार कुल के क्षत्रियों* की मौर्य्य नाम्नी प्रसिद्ध शाखा में उनका जन्म हुआ था और उन्होंने उस की कीर्त्ति विशेष रूप से बढ़ाई थी।

बताते हैं। पर अशोक के स्तम्भ जो गण्डकी के तट पर हैं उन में सब से उत्तर नन्दनगढ़ स्तम्भ है। उसी के समीप ज़िला चम्पारन थाना शिकारपुर में एक गांव का नाम पिपरिया है और उस स्तम्भ को लोग पिपरिया का लौर कहते हैं। क्या आश्चर्य्य है कि यही पिपरिया प्राचीन पिप्पली कानन हो और अपने पूर्वपुरुषों के आदि स्थान को जान कर अशोक ने वहाँ एक स्तम्भ गाड़ दिया हो।

(पिप्पली कानन बस्ती ज़िले में नेपाल की सरहद पर है। यहां अब कूप और स्तूप के सिवाय और कुछ नहीं है इसे आजकल पिपरहिया कोट कहते हैं। फाहियान ने स्तूप आदि देख कर भ्रमवश इसी को कपिल वस्तु समझा था। मि० पीपी ने इस स्थान को खुदवाया था और बुद्ध देव की धातु तथा और जो चीज़ें निकली थीं उन्हें गवर्मेन्ट को अर्पित किया था। धातु का प्रधान अंश सरकार ने स्याम के राजा को दिया था—सम्पादक

* प्रमार वा परमार नाम किसी पुराण वा अन्य प्राचीन संस्कृत ग्रंथ में नहीं आया है। शिलालेखों में इस शब्द का रूप कहीं प्रमार और कहीं परमार मिलता है। पृथ्वीराज रासो में प्रमार को अग्निकुल में लिखा है। उदयपुर की प्रशस्ति में भी परमारों की उत्पत्ति इस प्रकार लिखी है—

अस्त्युर्व्वीध्रः प्रतीच्यां हिमगिरितनयः सिद्धदंपत्य सिद्धे। स्थानं च ज्ञानभाजामभिमत फलदो खर्व्वितः सोर्व्वुदाख्यः। विश्वामित्रो वसिष्ठादहरत व [ल] तो यत्र गां तत्प्रभावा ज्जज्ञे वीरोऽग्नि कुंडाद्रिपुबलनिधनं यश्चकारैक एव। मारयित्वा परां धेनुमानिन्ये सततो मुनिः। उवाच परमाराख्य पार्थिवेन्द्रो भविष्यसि।

अर्थात्—अर्व्वुदागिरि पर से वसिष्ठ की गाय जब विश्वामित्र ले चले तब कुंड से एक पुरुष उत्पन्न हुआ जो गाय को छीन कर वशिष्ठ के पास ले आया। इस लिए मुनि ने कहा कि तुम्हारा नाम परमार होगा।

रासो में प्रमार पाठ है उसमें इस नाम का यह कारण लिखा गया है कि वह पुरुष मार मार कहता हुआ निकला था। रामायण में वसिष्ठ की धेनु नंदिनी से जिन जातियों की उत्पत्ति बताया है वे भारतीय नहीं हैं शक, कम्बोज पल्हव आदि विदेशी हैं। टाड साहब तथा और कई विद्वानों की भी सम्मति है कि ये परमार आदि राजपूत यथार्थ में शकवंशी हैं भारतीय क्षत्रिय नहीं। भारत के इतिहास में ये सब से पहले आठवीं शताब्दी में प्रकट होते हैं। शिलालेखों में जो वंशावली मिलती है उसमें कुछ नाम ऐसे हैं जिनका व्यवहार काश्मीर और तातार देशों में है, जैसे सीयक, वक्पट। इससे भी परमारों का काश्मीर या तातार देश की ओर से आने का इशारा मिलता है।

बौद्ध ग्रंथों में भी कहीं परमार वा प्रमार शब्द नहीं आया है पर मोरिय शब्द मौजूद है। अतः यह कैसे हो सकता है कि मूलवंश परमार का नाम न आवे और उसकी एक शाखा का जगह जगह उल्लेख हो—सम्पादक।

प्रसिद्ध ऐतिहासिक वी० ए० स्मिथ लिखते हैं कि "But it is perhaps more probable that the dynasties of Mauryas and Nandas were not connected by blood.

इससे भी प्रतीत होता है कि नन्दवंश और मौर्य्य वंश दो भिन्न २ वंश हैं।

जब हम मौर्य्य कुल की खोज करते हैं तब मालूम होता है कि वह एक स्वतन्त्र क्षत्रिय कुल की शाखा है जिस का अस्तित्व चन्द्र गुप्त के बहुत पहले बिम्बसार के समय से था।

विक्रमादित्य और चन्द्रगुप्त को एक वंश का पाकर पाठकों को कौतूहल अवश्य होगा। मार्शमेन साहब ने अपनी ब्रीफ़ सर्वे आफ़ हिस्टरी आफ़ इण्डिया नामकी पुस्तकमें विक्रमादित्य के मूल वंश की खोज करने में लिखा है कि "विक्रमादित्य परमार कुल में उत्पन्न हुए थे और उनके पूर्व पुरुषों का अनुसन्धान करने में इतिहास अस्पष्ट रूप से बताता है कि मोरी वंश के मगध राजाओं के आठवें राजा के वंश में विक्रमादित्य हुए। और यह सम्भव भी है, क्योंकि मौर्य्य साम्राज्य चार प्रादेशिक शासकों से शासित होता था। अवन्ती, स्वर्णगिरी, टोसाली, और तक्षशिला में अशोक के चार सूबेदार रहा करते थे। इन में अवन्ती के सूबेदार प्राय: राजवंश के होते थे। स्वयं अशोक उज्जैन के सूबेदार रह चुके थे। सम्भव है कि मगध का शासन डाँवाडोल देख कर मगध के आठवें मौर्य्य नृपति सोमशर्म्मा के किसी राजकुमार ने, जो कि अवन्ती का प्रादेशिक शासक रहा हो, अवन्ती को प्रधान राजनगर बना लिया हो। क्योंकि उसकी एक ही पीढ़ी के बाद मगध सिंहासन पर शुङ्ग वंशियों का अधिकार हो गया। यह घटना सम्भवत: १७५ ई० पू० हुई होगी, क्योंकि १८३ में सोमशर्म्मा मगध का राजा हुआ। ऐसी अवस्था में यह कहा जा सकता है कि महाराज विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त मौर्य्य से आठवें राजा सोमशर्म्मा के वंशधर हों[1]। यदि यह माना जाय तो मौर्य्य कुल को प्रमार वंश की शाखा कहना ठीक ही होगा। क्योंकि टाड साहब ने अपने राजस्थान में भी लिखा है कि जिस चन्द्रगुप्त की महान् प्रतिष्ठा का वर्णन भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा है उस चन्द्रगुप्त का जन्म पवाँर कुल की मौर्य्य नाम्नी शाखा में हुआ है।

मान मौर्य्य के बनवाए हुए मान सरोवर में एक शिलालेख निकला है [2] जिस में लिखा है कि "महेश्वर नामक राजा के भोज नाम का पुत्र

(१) भाटों के ग्रन्थों में लिखा है कि मौर्य्य कुल के मूल वंश से उत्पन्न हुए प्रमार राजा लोग ही उस समय भारत के चक्रवर्ती राजा थे और वे लोग कभी २ उज्जयिनी में अपना राज्यपीठ स्थापित करते थे। इससे विक्रमादित्य का उज्जयिनीपति होना तथा मौर्य्य वा प्रमार कुल से उन का घना सम्बन्ध होना सूचित होता है।

(२) राजस्थान का इतिहास ११ ३६ पेज।

विक्रमादित्य प्रमार वंश में उत्पन्न हुए थे यही सिद्धान्त राजा शिवप्रसाद जी का भी है (देखो इतिहास तिमिर नाशक)

महाराज भोज प्रमार वंश में हुए यह बात टाड साहेब ने लिखी है। उन्हीं भोज राज के वंशधर अर्जुनवर्मदेव के दानपत्र में भी स्पष्ट लिखा है:-

"परमार कुलोत्तंस: कंसजिन्महिमानृप:।
श्रीभोजदेव इत्यासीन्नासीराक्रान्त भूतल:
यह लेख संवत् १२७२ का है।

हुआ, जो धारा और मालव का अधीश्वर था । उसी से मान मौर्य्य हुए" इत्यादि । मानमौर्य्य के पिता दूसरे भोज भी प्रमारही थे, क्योंकि प्रमार कुल में तीन भोज का पता मिलता है । तीनों विद्यानुरागी और प्रतापी थे । टाड साहेब ने तीनों का समय जैनियों के लेख और अबुलफ़ज़ल के लेख तथा भांटों के ग्रन्थों से निर्धारित किया है -

पहिला भोज सं· ६३५
दूसरा भोज सं· ७२१
तीसरा भोज सं· १०३५

इन विवरणों से ज्ञात होता है कि धाराधीश प्रमार दूसरे भोज का पुत्र मानमौर्य्य था जिससे सं· ७८४ में महाराज बाप्पा ने चित्तौर लिया । उसके पहिले चित्तौर का क़िला बनाने वाले भी चित्राङ्ग मौर्य्य थे ।

यह भोजराज उदयादित्य के पिता तीसरे भोज थे । इन का समय १०९१ संवत् निश्चित किया गया है जो उनके एक दानपत्र में मिलता है । वह दान पत्र संवत् १०७८ का है देखो (Ind. ant. 6 53-54., दूसरा भोज जिस का समय प्राचीन जैन ग्रन्थ तथा शिलालिपि से टाड साहब ने निर्धारित किया है वह सं० ७२१ में था । उसका पुत्र मान मौर्य्य था जिससे ७८४ में बाप्पारावल ने चित्तौर लिया ।

जिस महेश्वर का नाम मानसरोवर वाली शिलालिपि में आया है उस के बारे में प्रमार जाति के राजगण की वंशावली में विस्तार से लिखा मिलता है कि "उसने नर्म्मदा के दक्षिण तट पर विख्यात महेश्वर नामक नगर बसाया था"। इस से भी ज्ञात होता है कि प्रमारवंश ही में दूसरा भोज उत्पन्न हुआ था जिस का पुत्र मान था जो कि इतिहासों में मान मौर्य्य नाम से विख्यात है। यह लेख मान सरोवर पर के स्तम्भ में संवत् ७७० की खुदी हुई लिपि का है जिससे स्थिर हो जाता है कि इन्हीं से संवत् ७८४ में चित्तौर को बाप्पा रावल ने लिया ।

सूर्य्यवंशी महाराज बाप्पा का मानमौर्य्य से सम्बन्ध भी था । ऐसी दशा में यह स्पष्ट मानना पड़ेगा कि मौर्य्य वंश प्रमार कुल की एक बड़ी शाखा है जिस में पैदा हुए राजाओं ने मगध, मालव, धारा, चित्रकूट आदि में अपनी राजधानियाँ भिन्न भिन्न समयों में स्थापित कीं ।

जयशङ्कर प्रसाद ।

आर्य्यों का आदि स्थान ।

आर्य्यजाति का आदि वासस्थान कहां था इसके विषय में मतभेद है । कितने ही पाश्चात्य विद्वान् इनका निवास स्थान मध्यएशिया, कोई कासपियन सागर का किनारा, कोई यूराल पर्वत कोई स्कण्डे-नेविया कोई कुछ कोई कुछ बताते हैं । एतद्देशीय विद्वानों में श्रद्धेय पंडित बालगंगाधर तिलक महोदय ने इनका आदिम स्थान 'ध्रुवप्रदेश' माना है । तिलक महोदय ने अपनी इस कल्पना की पुष्टि कई बातों से की है जिनमें प्रधान ये हैं (१) देवताओं का रात दिन एक वर्षके बराबर होता है (२) वेदों में लंबे उषाकाल का उल्लेख है (३) वेदों में लंबी रात और दिन लिखे हैं । अपने इस सिद्धान्त के स्थापन के लिए तिलक महोदय ने वेदों का बड़ा अनुशीलन किया है और याज्ञिक बीज के आधार पर उन्होंने अपना मत निश्चित किया है। आपने जितने मन्त्र अपने सिद्धान्त की पुष्टि में उद्धृत किए हैं प्राय: सबके सब याते याज्ञिक मन्त्र हैं अथवा ऐसे हैं जिनमें आर्य्यों के उच्चसभ्यता प्राप्त हो चुकने के चिह्न हैं । जैसे:—रथ, चक्र, यन्त्र, पथ, अश्व, शासन, गो, वज्र, केतु, योजन, जार, माया, स्तोम, छन्द, इत्यादि । मुख्य मन्त्र ये हैं ।

(क) अमी य ऋक्षा निहितास उच्चाः
नक्तं ददृश्रे कुहचिद्दिवेयुः
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि
विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति। ऋ १-२४ १०

(ख) यो अक्षेणेव चक्रिया शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुतद्याम्। ऋ १० । ८९ । ४

(ग) ससूर्य्यः पर्युरु वरांस्येन्द्रो ववृत्याद्रथ्येव चक्रा। ऋ १० । ८९ । २

इन्हीं मन्त्रों के आधार पर तिलक महोदय अपने The Arctic home in the Vedas के पृ० ६५ ६६ में लिखते हैं:—

"उत्तरीयध्रुवप्रदेश में यह विशेषता है कि वहां गगन-मण्डल घूमता हुआ दिखाई देता है। यह एक ऐसी अद्भुत घटना है जो विशेष कर ध्रुव ही में दृष्टिगोचर हो सकती है। अतः ऐसी घटना का चिह्न उनलोगों के इतिहास गाथादि में कुछ न कुछ अवश्य मिलना चाहिए जो या तो स्वयं ध्रुवप्रदेश के वाशिन्दे हों अथवा जिनके पूर्वज किसी समय में वहां रहे हों। वेदों को जब हम देखते हैं तब हमको उनमें ऐसे वाक्यांश मिलते हैं जिनमें गगन मण्डल के भ्रमण की उपमा रथ चक्र की गति से दीगई है और लिखा है कि गगन मण्डल मानो धुरी पर रक्खा हुआ है। ऋग्वेद १० । ८९ । ४ में लिखा है (यो अक्षेणेव चक्रिया शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुतद्याम्) कि इन्द्र ने अपनी शक्ति से पृथिवी और आकाश को इस प्रकार थाम रक्खा है जैसे रथ के पहियों को उस का धुरा थामता है। ऋग्वेद १० । ८९ । २ में इन्द्र के स्थान में सूर्य्य लाया गया है और लिखा है (स सूर्य्यः पर्युरु वरां स्येन्द्रो ववृत्याद्रथ्येव चक्रा) कि सूर्य्य विस्तीर्ण गगनमंडल को रथ चक्र की नाईं घुमाता है। मन्त्रांश में 'वरांसि' शब्द आया है जिसका अर्थ अवकाश वा आकाश (Expanse) है। पर सायणाचार्य्यजी ने इसका अर्थ प्रकाश और तारामंडल किया है। हम चाहे जो अर्थ मानें इस मन्त्र में गगनमंडल के भ्रमण की उपमा रथ चक्र से दी गई है। शान्त और उष्णकटिबद्धगत देशों में गगनमंडल का भ्रमण पूर्व से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व चक्राकार होना तो कहा (माना) जा सकता है पर उनमें भ्रमण चक्र का केवल आधा ही भाग देखने वाले को सदा दिखाई पड़ेगा। और हम ग्रीष्म कटिबद्धान्तर्गत गगनमंडल को अक्ष वा दण्ड पर स्थित नहीं कह सकते क्योंकि उत्तरीय ध्रुव जो इस स्थिति का केन्द्रबिन्दु होगा वह शीर्षबिन्दु पर न होगा। अब यदि हम इन दोनो बातों (अवस्थाओं) को-अर्थात् गगनमण्डल का एक अक्ष वा दण्ड पर स्थित होना और उसका चक्राकार भ्रमण करना-एकसाथ लें तो यह निचोड़ निकलता है कि यह भ्रमण वास्तव में ऐसा है जिसका दृश्य केवल ध्रुव पर दिखाई दे सकता है। ऋग्वेद १ । २४ । १० में (अमीय ऋक्षा निहितास उच्चाः) सप्तर्षिमण्डल (ऋक्षाः) ऊंचे (उच्चाः) रक्खा हुआ कहा गया है। इससे इस (सप्तर्षि) मण्डल का शीर्ष पर होना प्रकट होता है। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि यह मंडल दर्शक के सिर के ऊपर अवश्य रहा होगा और यह दशा केवल ध्रुव प्रदेश ही में हो सकती है।

अब सब से पहिले ऋ० १० । ८९ । ४ और २ मन्त्रांशों पर विचार करने की आवश्यकता है। यह सूक्त १८ ऋचाओं का है जिसकी दूसरी ऋचा का पूर्वार्द्ध ।

ससूर्य्यः पयुरु वरांस्येन्द्रो व वृत्याद्रथ्येवचक्रा ।

और चौथी का 'यो अक्षेणेव चक्रिया शचीभि र्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुतद्याम् है ।

इस सूक्त में सूर्य्य की विभूति का वर्णन है और इसमें रथ, चक्र आदि ऐसे शब्द आए हैं जो आर्य्यों के उच्चसभ्यताप्राप्त होने के चिह्न हैं। इसमें कोई भी ऐसा चिह्न नहीं है जिससे हम इसे उस पूर्व काल का मान सकें जिस के विषय में स्वयं अवर कालीन ऋषियों नें 'अग्निःपूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनेरुत' इत्यादि लिखा है। इन मन्त्रों में तो आर्य्यों के परिवर्धित विज्ञान का बीजमिलता है। परमपदप्राप्त श्री सत्यव्रत सामश्रमी ने बहुत विचार पूर्वक इन ऋचाओं के ये अर्थ किए हैं:–

(ग) 'इन्द्रः' परमैश्वर्य्यादिगुण युक्तः 'सः' सूर्य्यः ' 'उरू' उरौ विस्तीर्णान्तरिक्षे 'वरांसि' पृथिव्यादि ग्रहोपग्रहमण्डलानि 'अववृत्यात्' सदैव आवर्तयति 'रथ्याचक्र इव' यथा अक्षः मध्यस्थः सन् रथ सम्बन्धीनि चक्राणि भ्रामयति चक्राणामितस्ततो विक्षिप्त पतनतो रक्षयति च तद्वत् ।

(ख) 'यः' सूर्य्यः 'शचीभिः' 'आकर्षणक्रियाभिः' पृथिवीम्'स्वनीचैःस्थितांभूमिं'ग्रहमण्डल निम्नार्द्धभाग गताम्'उत' अपि'द्याम्' स्वोच्चैस्थितां सुतरां द्युस्थां ग्रहमण्डलोर्द्धमार्गगतां 'विष्वक्' सर्वतः 'तस्तम्भ' स्तम्भन् वर्तते ।

भावार्थः–परमैश्वर्य्यादिगणयक्त सूर्य्य विस्तृत आकाश के अन्तरिक्ष में पृथिवी आदि ग्रहों को सदैव रथ के चक्र के समान फिराता है।

वही सूर्य्य अपनी आकर्षणशक्ति से पृथिवी को, और द्यु अर्थात् ऊपर की ओर तथा दूसरी ओर ठहरे हुए ग्रहमंडल को चारो ओर से थामे हुए हैं।

अब इन दोनों मन्त्रों में विचारणीय यह है कि इनमें कहीं तिलकजी के विचार की गन्ध नहीं पाई जाती। 'वरांसि' शब्द का अर्थ 'Expanse' नहीं है और न उरू जिसका अर्थ तिलक महोदय ने widest किया है इसका विशेषण है बल्कि दोनों स्वतन्त्र शब्द हैं जिनमें उरू का अर्थ विस्तीर्ण अन्तरिक्ष और वरांसि का अर्थ पृथिवी आदि ग्रह है। इन मन्त्रों से यह ज्ञात होता है कि जब ये मन्त्र रचे गए उस समय आर्य्यों को पृथिवी आदि ग्रहों के सूर्य्य के चारो ओर घूमने तथा सूर्य्य के इनको अपनी कक्षा में धारण करने और घुमाने का पता लग गया था। यदि यह मान भी लें कि ये आदिमकालीन मन्त्र हैं तो उस समय में इतने परिवर्धित ज्ञान का होना ठीक नहीं ज्ञात होता। क्योंकि स्वयंम् वेदों में ऐसे मन्त्र हैं जिनमें आर्य्यों का किसी काल में नंगे सहायहीन तथा जंगलियों के समान होना मिलता है F. P. अब ऋ १ । २४ । १० । को लीजिये। इस का अर्थ सामश्रमी जी ने इस प्रकार किया है।

अर्थः–'अमी' 'ये' 'ऋक्षाः' 'उच्चाः' 'उच्चै.' 'निहितासः' स्थापिताः ते 'नक्तं' रात्रौ 'ददृश्रे' दृश्यन्ते 'दिवा' 'कुहचित्' 'ईयुः' गच्छेयुः न दृश्यन्ते 'इति, 'चन्द्रमाः' अपि 'नक्तम्' एव 'विचाकशत्' प्रदीप्यमानः 'एति' दृश्यत इति । तदेतद्देवमाहीनि

'वरुणस्य' 'राजः' 'अदब्धानि' कथमप्यविनश्यानि 'व्रतानि' कर्माणि ।

ये ऋक्ष (नक्षत्र) जो ऊंचे रक्खे गये हैं रात को देख पड़ते हैं दिन को कहीं चले जाते हैं । चन्द्रमा भी रात को प्रकाशित होता है । ये सब वरुण के अविनाशी कर्म हैं ।

यहां 'ऋक्ष' शब्द जो बहुवचन में है विचारणीय है । शतपथ ब्राह्मणमें (२· १· २· ४) ऋक्ष शब्द से सप्तर्षि का अर्थ ग्रहण किया गया है पर वह इस लिये कि यह तारापुंज एक रीछ की शकल का देखा जाता है । अब यदि ऋक्ष शब्द से मन्त्रकार का अभिप्राय सप्तर्षिमंडल होता तो ऋक्षाः शब्द के स्थान में 'ऋक्षः' एक वचन लिखा होता क्यों कि सप्तर्षिमंडल एक है बहुत नहीं । यदि यह कहा जाय कि पहिले यह एक वचन था पीछे से कहते कहते बहुवचन होगया वा व्यत्यय से एकवचन के स्थान में बहुवचन आया है तो भी ठीक नहीं है क्यों कि 'अमी' और 'ये' ये दोनों पद बहुवचन हैं अतः 'ऋक्षाः' पद से निरु० ४।२० के अनुसार साधारणतया सब नक्षत्रों का ग्रहण ठीक है जो प्रायः देखनेमें रातको ऊपर दिखाई देते हैं । 'वरुण' इस मन्त्र का देवता है और उसी की विभूति इस मन्त्र में वर्णन की गई है । वरुण का अर्थ 'वृणोतीति सतः' है और ऐतरेय ब्राह्मण में 'रात्रिर्वरुणः' कहा गया है । इसका आशय यह है कि सूर्य्य जब रात को पृथिवी के अपनी धुरी पर घूमने से दूसरे भागकी ओर होजाता है और जब उसका प्रकाश आवृत होता है तब उसे वरुण कहते हैं । सूर्य्य के अस्त होने पर रात को नक्षत्रादि देख पड़ते हैं तथा चन्द्रमा भी रात ही को प्रकाशित होता है । यह सब वरुण अर्थात् अस्तप्राप्त प्रकाशावृत सूर्य्य काही व्रत है अर्थात् सूर्य्य के अस्त होने से ही होता है जो सर्वत्र अविनाशी वा अनिवार्य्य कर्म हैं । इस मन्त्र में कोई ऐसा पद नहीं है जिससे यह कह सकें कि यह अवस्था ध्रुव प्रदेश में ही चरितार्थ हो सकती है । यह पृथिवी के प्रत्येक भाग में होता है कि जब सूर्य्य के प्रकाशका अवरोध होता है तब चन्द्रमा और नक्षत्र दिखाई पड़ते हैं चाहे ध्रुव प्रदेश हो अथवा कर्क और मकर रेखागत देश ।

आगे चल कर आप लिखते हैं कि बहुत से मन्त्रों में छ छ महीने के दिन रात का वर्णन है । यह उन मन्त्रों पर विचार करने के पूर्व ही विचारणीय है कि यदि वास्तव में वे ध्रुव देश में ही रचे गये तो वहांके लोगों को २४ घंटे के दिन रात का कैसे पता लगा और बिना इस ज्ञान हुए वे कैसे यह कहने में कुशल हो सके कि इतने दिनों की रात और दिन होते हैं । बिना दो विभिन्न वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त किए और अन्वय व्यतिरेक का नियम काम में लाये छोटे बड़े और भले बुरे का ज्ञान हो ही नहीं सकता । वह मनुष्य जिसने अपना सारा जीवन सहरा के रेगिस्तान में बिताया हो यह कभी अनुमान नहीं कर सकता कि संसार में कोई ऐसा भी प्रदेश है जहाँ चारो ओर हरियाली लहराती है । यह शंका महात्मा तिलक के भी अन्तःकरण में उठी थी और आपने इसका समाधान इस प्रकार किया है:—

We have also seen that at the Pole it is quite possible to mark the periods of Twenty-four hours by the rotation of the Celestial sphere and

the circumpolor stars and these could be or rather must have been termed 'days' by the inhabitants of the place.

"हम दिखा चुके हैं कि ध्रुवस्थल में यह अच्छी तरह संभव है कि नभमंडल या ध्रुवस्थ ताराचक्र के चक्कर मारने के देख कर वहाँ के रहने वालों ने २४ घंटे के काल के जान लिया हो और उसे दिन कहने लगे हों " ।

इस समाधान से किसी का संतोष नहीं हो सकता । केवल तारों के भ्रमण का मान बांधना और उससे फिर वहां के बड़े दिन के नापना समझ में नहीं आता ।

दूसरी बात यह है कि तिलक महोदय ने अपने इस सिद्धान्त के स्थापन करने की विशेष सामग्री याज्ञिक मन्त्रों से ली है जो सब के सब याज्ञिक कल्प के हैं । उषाकाल के दीर्घत्व में प्रातरनुवाक का सहस्रर्च होना, 'सहस्रमनूच्य स्वर्गकामस्य' के आधार पर मान कर आप लिखते हैं :–

So between the first appearance of light and the rise of the sun, there must have been, in those days, time enough to recite the long laudatory song of not less than a thousand verses.

"उस समय में प्रथम प्रकाश स्फुरण और सूर्योदय के बीच अवश्य इतना काफी समय मिलता था कि सहस्रऋचाओं वाले प्रातरनुवाक का पाठ होना सम्भव हो" ।

अर यह विचारना चाहिये था कि उक्त वाक्यों में 'स्वर्गकामस्य' शब्द है जिससे यह स्पष्ट है कि यह आवश्यक नहीं कि सर्वथा ही सहस्र ऋचाओं का पाठ कर्मकाण्ड में हो । इसके अतिरिक्त प्रधान प्रातरनुवाक में केवल २१ ही ऋचाएँ हैं और एतरेय ब्राह्मण २। ३। ६ में २१ ऋचात्मक प्रातरनुवाक का ही पाठ आवश्यक माना गया है जो सब जगह उषाकाल में किया जा सकता है इस 'सहस्र मनूच्य स्वर्गकामस्य' वाक्य की असम्भवता एतरेय को भी खटकी थी तभी उसने 'अपरिमितमनूच्यम् २। २। ७ अर्थात् कोई परिमाण नहीं, जहां तक अधिक हो सके काम्य पाठ करना चाहिए' लिखा । इस के अतिरिक्त उपर्युक्त वाक्य ब्राह्मण के हैं, संहिता के नहीं । फिर यदि हम तिलक महोदय की बात मानलें तब तो सभी कुछ मेरु प्रदेश ही का ठहरेगा । ब्राह्मण ग्रन्थों में तो बहुत कुछ असंभव बातें भरी पड़ी हैं । क्या सब की सब यथातथ्य मान्य हो सकती हैं, ? यह असम्भवता समय समय पर विद्वानों को मालूम हुई है और उन्हों ने निष्पक्ष होकर उसको स्वीकार किया है । स्वयं मीमांसाकार जैमिनि मुनि ने 'सहस्रसांवत्सर' पर बहुत कुछ पूर्वापर पक्ष कर उसका खंडन किया है तथा महर्षि यास्काचार्य्य ने स्पष्टशब्दों में 'बहुभक्तिवादीनि हि ब्राह्मणानिभवन्ति' कह कर कई स्थलों पर ब्राह्मणों की अप्रमाणता को प्रमाणित किया है ।

वेदों के देखने से यह स्पष्ट विदित होता है कि सारे कर्मकाण्ड के झमेले 'अथर्वा' ऋषि के समय से चले हैं और उन्हों ने इधर उधर विकीर्ण मन्त्रों को संगृहीत कर पहिले पहल उन्हें चार संहिताओं में विभक्त किया । चातुर्होत्र कर्म की परिपाटी उन्हीं के समय से चली । इन अथर्वा के वंश के लोग यज्ञ के प्रधानयाजक

होते थे। इन्हीं लोगों के द्वारा बड़े बड़े राजा महाराजा अश्वमेध वाजपेय अतिरात्र आदि यज्ञों को करते थे। अथर्वा शब्द प्रधान याजक के अर्थ में वेदों और अवस्था में बराबर मिलता है। इन्हीं अर्थवाओं के कई भेद थे नवग्वा, दशग्वा, शतग्वा आदि। ये नाम इनके इस कारण से पड़े थे कि उस समय आर्य्यों की प्रधान सम्पत्ति गौ थी और गौ ही यज्ञों में प्रधान दक्षिणा दी जाती थीं। यज्ञों में जिन को दश गौ मिलती थीं वे 'दशग्वा' जिनको नव मिलती थीं वे 'नवग्वा' जिन्हें सौ मिलती थी वे 'शतग्वा' कहलाते थे। महात्मा तिलक 'दशग्वा और' 'नवग्वा' पद मन्त्रों में देख लिखते हैं:-

In short, the Dashagvas and the Navagvas, and with them all the ancient sacrificers of the race, lived in a region where the sun was above the horizen for ten months, and then went down producing a long early night of two months' duration, these ten months therefore formed the annual sacrificial season or the calendar year of the oldest sacrifices of the Aryan race.

अर्थात्—नवग्वा और दशग्वा प्राचीन याज्ञिक वंशधरों के साथ ऐसे देश में रहते थे जहाँ सूर्य्य दश महीने तक उदय रह कर अस्त होता था और सूर्य्यास्त होने पर दो महीने की रात होती थी। इसीलिये प्राचीन आर्य्य याज्ञिक जातियों का यज्ञकाल दस महीने का होता था"। यह लिखते समय शायद तिलक महोदय ने यह नहीं सोचा कि वेदों में 'शतग्वा' * शब्द भी है जिसपर यही न्याय लगा कर क्या तिलक महोदय यह नहीं कह सकते कि ये लोग ऐसे देश में रहते थे जहां सौ महीने तक सूर्य्यास्त नहीं होता था? क्या ऐसा भी कोई स्थान इस पृथिवी पर क्या इस सौर जगत में है जहां सौ महीने का दिन होता हो?

ऐसे ही और भी प्रमाण हैं जिनके आधार पर तिलक महोदय ने ध्रुवप्रदेश को प्राचीन आर्य्यों का आदिम निवासस्थान निर्णय करनेका प्रयत्न किया है। उन सबपर विचार न कर हम आगे बढ़ते हैं।

वेदों में ऐसा कोई भी मंत्र नही है जिससे यह स्पष्ट रूप से पता चल सके कि वैदिक आर्य्य भूभाग के अमुक स्थान में रहते थे और अमुक मार्ग से हो कर भारतवर्ष और मध्य एशिया में आये और आबाद हुए। अत: उनके पूर्वस्थान के विषय में जब तक कि वेदों में स्पष्ट प्रमाण न मिले हम समस्त विद्वानों की सम्मतियों को चाहे वे प्राच्य हों वा पाश्चात्य कल्पनाप्रसूत मानते हैं। हमारे विचार में वेदों से पुरानी पुस्तक न संसार में है और न आगे मिलने की आशा है। वेदों में आर्य्यों की वन्य अवस्था से लेकर उन के साम्राज्य प्राप्त करने तक के समय के मन्त्र हैं। ऋग्वेद मंडल १ सूक्त १२६ में ७ वें मंत्र में आर्य्यों की ऐसी अवस्था का वर्णन मिलता है जब इन लोगों के शरीर में बड़े बड़े बाल होते थे। इस मंत्र का ऋषि एक स्त्री है। पर कौन स्त्री इस का पता आज तक नहीं चला है। अनुक्रमणिकाकार ने मंत्र में 'रोमशा' पद देख 'रोमशा' को इस मंत्र का ऋषि लिख मारा है। मंत्र अनुष्टुप छन्द में है

* शतैरपद्रन्पणय इन्द्रात्रदशोणयः कवयेऽर्कसातौ ।
शतैरशाये शत्रुतिभिर्दिवे च विश्वादावज्ञ: शतग्विन: ।
विवक्षणा अनेहसः । ऋ ८ । ४५ । १
आ न इन्द्र शतग्विनम् । ऋ ६ । ६७ ६

जिस से यह अनुमान होता है कि उस समय आर्य्यों की छन्द रचना अभ्यस्त और प्रौढ़ हो गई थी। इसकी पुष्टि इससे और अधिक होती है कि इसमें 'उपमालंकार' है। वह मंत्र यह है:-

उपोप मे परामृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः।
सर्वाहमस्मि रोमशा गान्धारीणामिवाविका।

मेरे पास आओ, मेरे साथ परामर्श करो मुझ में कमी मत मानो वा आशंका मत करो। देखो मेरा सारा * शरीर बालों से गान्धार की भेड़ की तरह ढका है।

मंत्र स्वाभाविक भाषा में रचा गया है। यदि यह कहनेवाली का वाक्य यथातथ्य न भी माना जाय बल्कि किसी वैदिक काल के कवि का कहा माना जाय जिसने इस मंत्र को वैसेही रचा जैसे महाभारतकार ने गीता रची है फिर भी जिस अवस्था का इस मंत्र वर्णन है वह ऐसी नहीं है कि उसे हम उच्च सभ्यता की अवस्था मान सकें। इस मंत्र से निम्न लिखित बातों का पता चलता है:-

(१) उस समय में आर्य्यों के सारे शरीर पर भेड़ आदि के समान बाल होते थे। यह बाल पुरुषों ही के शरीर पर नहीं बल्कि युवती स्त्रियों तक के शरीर पर निकलते थे *।

(२) समाजबंधन का बिल्कुल अभाव था। स्त्रियां खुले मैदान पुरुषों को आह्वान करती थीं।

(३) विवाहादि का नियम नहीं था। स्त्रियां स्वयं युवावस्था प्राप्त होने पर पशुओं की भांति पुरुष को खोज लेतीं थीं।

(४) भाषा प्रौढ़ हो गई थी और कुछ देशों के नाम भी पड़ गए थे।

इन सब में मुख्य अंश 'शरीर पर बाल होना' है। यह अवस्था मनुष्यों की उस समय थी जब वे कपड़े आदि बनाने में कुशल न थे।

यूरोप के प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता डार्विन महोदय अपने ग्रन्थ 'मनुष्य जाति की उत्पत्ति (Descent of man) के पृष्ट २४० में लिखते हैं:-

At the period and place whenever and wherever it was, when man first lost his hairy covering, he probably inhabited a hot country.

"मनुष्य के शरीर के बाल चाहे जब और चाहे जहां दूर हुए हों पर यह अधिक सम्भव है गरम देश में ही ऐसा हुआ होगा"।

यही नहीं, ऋग्वेद मंडल ७ सूक्त ९५ में एक मंत्र है जिसमें सरस्वती नदी का समुद्र में गिरना लिखा गया है। जिन लोगों ने सरस्वती नदी को देखा है वे जानते हैं कि यह नदी राजपूताने की मरुभूमि में जाकर विलुप्त हो जाती है। इसी लिये सरस्वती को लोग 'अन्तः सलिला' भी कहते हैं। मंत्र का ऋषि वशिष्ठ है और इस पर भी विशेषता यह है उसमें 'नाहुष' राजा का भी नाम आया है, जिससे यह भी अनुमान होता है कि उस समय में जब की बात इस मंत्र में है आर्य्यों की सभ्यता इतनी बढ़ गई थी कि इन लोगों में राजा होने लगे थे। मंत्र यह है:-

एका चेतत्सरस्वती नदीनां
शुचीर्यती गिरिभ्य आसमुद्रात्।

* मेरी समझ में 'सर्वाहमस्मि रोमशा" "के सर्वा" पद से केवल गुप्तांगों का पता क्योंकि जिन लोगों के सारे शरीर में बाल होते हैं उन्हें जन्म ही से होते हैं युवावस्था प्राप्त होने पर नहीं-सम्पादक।

रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरे
घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय। २।

नदियों में शुचि सरस्वती नदी ने जो पर्वतों से निकल कर समुद्र में गिरती है यह जाना और नाहुष अर्थात् नहुष के पुत्र को भुवन का बहुत धन तथा घी और दूध दिया।

इस मंत्र से इन बातों का पता चलता है:—

(१) सरस्वती नदी पर्वतों से निकल कर समुद्र में गिरती थी।

(२) उसके किनारे नहुष के बेटे का राज्य था।

(३) उस नदी के किनारे खेती होती और गायें चरती थीं। गायों से दूध और घी मिलता था। लोग गायें पालते थे।

अब विचारणीय यह है कि जब सरस्वती समुद्र में गिरती थी तब राजपूताना अवश्य समुद्र के नीचे रहा होगा क्योंकि यदि राजपूताना मरुभूमि मात्र था तो मंत्र में 'गिरिभ्यः आसमुद्रात्' पद निरर्थक है। राजपूताना का समुद्र के नीचे होना भूतत्ववेत्ताओं ने स्वीकार भी किया है। इम्पीरियल गजेटियर जिल्द १ पृ १ और २ में लिखा है:—

The Aravalis, are but the depressed and degraded relics of a far more prominent mountain system, which stood, in Palaeozoic times on the edge of the Rajputana Sea * * * * After the Palaeozoic era, and during the secondary stage of evolution, when India was probably connected with Africa by dry land and ocean current swept from the Persian gulf to the Aravalis, the rock area extended over Assam and Eastern Himalayas, while Burma the North-west Himalayas, the upland beyond the Indus were still submarine or undergoing alternation of elevation and depression.

अर्थात्—अरावली पर्वत एक बहुत प्राचीन पर्वत श्रेणी का अवशिष्ट अंश है जो नीचे धँस गया है। यह पर्वत श्रेणी प्रथम (Palaeozoic) कल्प में राजपूताने के समुद्र के किनारे था। प्रथम (Palaeozoic) कल्प के बाद और आरोह के द्वितीय कल्प में जब भारतवर्ष स्थल मार्ग द्वारा अफ्रिका से मिला हुआ था और समुद्र की लहरें फारस की खाड़ी से आकर अरावली पर्वत में टक्कर खाती थी। आसाम और पूर्वीय हिमालय के उपर पत्थर जम चुके थे, बरमा उत्तर-पश्चिम हिमालय और सिन्धु के पार की भूमि समुद्र के नीचे थी या ऊंची नीची हो रही थी।

इस से यह स्पष्ट है कि मंत्र में द्वितीय वा तृतीय कल्प अथवा उस के कुछही पीछे की घटना का वर्णन है।

पाश्चात्य विद्वानों ने भूमि के समय को पांच प्रधान भागों में विभक्त किया है। (१) आदि (Archaen or Ezoic), (२) प्रथम (Primary or Palaezoic), (३) द्वितीय (Secondary or Mesozoic) तृतीय (Tertiary or Carnozoic) और (४) चतुर्थ (Post Tertiary or Quarternary)। इसी चतुर्थ कल्प के अन्तर्गत पोस्ट ग्लेशियल काल है जिसमें तिलक महोदय के कथनानुसार आर्य्य लोग ध्रुव से मध्य एशिया की ओर बढ़े *।

* In short the Vedic traditions, far from being contradictory to the Scientific evidence, only serve to check the extravagant estimate regarding the age of the last Glacial Epoch

है । अब यदि महात्मा तिलक के विचार को हम सत्य मानलें तो आर्य्य लोग चतुर्थ कल्प में (ध्रुव) से मध्य एशिया खंड मे आये । फिर उनके रचे वेद मन्त्रो में * ऐसी घटना का वर्णन कैसे आया जिसका होना सर्वथा द्वितीय वा तृतीय कल्प में ही माना जा सकता है ?

वेदों में जो देखा जाता है तो अफगानिस्तान (गान्धार) और सारस्वत प्रदेश हीं में आर्य्यांकी इतनी आदिम अवस्था का पता लगता है कि उस के और पहिले का विचार करना असम्भव दिखाई देने लगता है। अतः यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वे वहां और स्थान से आए वा नहीं, और यदि आए तो कहां से और कब ।

जगन्मोहन वर्म्मा

---

and if the sober view of the American Geologists be adopted both Geology & the traditions recorded in the ancient books of the Aryan race will be found alike to point out to a period not much older than 8000 B, C. for the commencement of the Post-glacial Era and the compulsory migration of the Aryan races from their arctic homes.

* प्रायः लोग यह शंका करेंगे कि इतने दिनों की बात लेख में कैसे संभव है । पर यह शंका सर्वथा निर्मूल है । वेदों को संस्कृत में 'श्रुति' और 'आम्नाय' कहते हैं। न जाने कितने काल से लोग इन मंन्त्रों को सुन कर अभ्यास द्वारा कंठ रखते आए थे उस समय लिखने की प्रणाली नहीं थी । संहिता और सूत्रादि में मंत्रों का संग्रह बहुत पीछे हुआ । यह भी सम्भव है कि पीछे मन्त्रों की भाषा में भी समयानुसार कुछ हेर फेर होता आया हो पर उनकी बातें बहुत प्राचीन हैं जिनके लिये यह आवश्यक नहीं कि उन के प्रवर्तकों ने उन्हें उन्हीं शब्दो में कहा हो जिन में वे अब मिलती हैं ।

महाराज हर्षवर्द्धन ।

आज हम रत्नावली के रचयिता उत्तरीय भारत पर एक छत्र साम्राज्य स्थापित करनेवाले कन्नौज के महाराज हर्षवर्द्धन का वृत्तान्त उपस्थित करना चाहते हैं । न जाने क्यों इस देश में और सब बातों के होते हुए भी क्रमबद्ध इतिहास की प्रथा नहीं चल पाई जिस कारण हमारे पूर्व पुरुषों के कृत्यों क्या उनके नामों तक का पता आज हम लोगों को नहीं मिलता है ।

आज हमारे यहां कोई भी इतिहास कहेजाने योग्य ग्रंथ होता तो हमें क्यों विदेशी विद्वानों की अटकलपच्चू बातों पर विश्वास करना पड़ता । हम बिना कान पूंछ हिलाए जिसका सिद्धान्त कुछ पुष्ट हुआ उसे मान लेने के लिये तैय्यार हो जाते हैं । ऐसी अंधकार की अवस्था में हमें केवल ताम्रपत्र और शिलालिपियों के प्रकाश का कुछ सहारा मिलता है, जिसके बल पर हमारे भारतीय विद्वान भी कभी २ विदेशी पुरातत्त्ववेत्ताओं के सिद्धान्तों को छिन्न भिन्न कर देते हैं। F. P. भारत के विख्यात तीर्थ कौरव पाण्डवों की युद्ध भूमि धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र का किसने नाम न सुना होगा ? इस कुरुक्षेत्र को थाने-श्वर भी कहते हैं जो संस्कृत शब्द स्थानेश्वर का अपभ्रंश मालूम होता है । किसी समय इसी स्थानेश्वर नगर में महाराज पुष्पभूति ने वर्द्धनराजवंश की प्रतिष्ठा की थी । यहां पर बहुत प्राचीन समय में "स्थाणु" नामक महादेव की एक प्रस्तर मूर्त्ति स्थापित थी इसी से देवाधिदेव महादेव का परम प्रिय यह स्थान "स्थाण्वीश्वर" के नाम से प्रसिद्ध

हुआ। कालक्रम से वही स्थानेश्वर या थानेश्वर नामों में परिणत होगया। स्थाण्वीश्वर वा स्थानेश्वर प्राचीन समय में हिन्दुओं का परम पवित्र तीर्थ था। यह परम पुनीत स्थान सरस्वती नदी के बांए किनारे पर है। हमारे ऋग्वेद में इस पुण्य-तोया सरस्वती की बहुत कुछ महिमा गाई गई है। वर्तमान थानेश्वर पञ्जाब प्रान्त के अम्बाले जिले का एक नगर है। अम्बाला शहर से २५ मील दक्षिण की ओर स्थानेश्वर का खंडहर दिखाई पड़ता है। यहां हिन्दुओं में ब्राम्हणों की संख्या सब से अधिक है, जो यात्रियों के दान से अपना उदर पोषण करते हैं। प्राचीन काल में इसी स्थानेश्वर के विस्तृत मैदान में चन्द्र और सूर्य ग्रहण के समय पांच लाख से भी अधिक लोगों का समारोह होता था। किन्तु अब इस समय में शायद इस पवित्र तीर्थ में उसके दशमांश भी एकत्रित न होते होंगे। किसी समय स्थानेश्वर के चारों ओर ३६० तीर्थ विद्यमान थे सन् १०११ ईसवी में हिन्दुओं के परम शत्रु सुलतान महमूद ग़ज़नवी ने इस पवित्र तीर्थ पर आक्रमण करके इसको खूब अच्छीतरह लूटा। कट्टर मुसल्मान बादशाह ने यहां के समस्त देवमन्दिरोंको विनष्ट करके मूर्तियोंको चूर चूर किया और थानेश्वर को मटियामेट कर डाला। यहां के सर्व प्रधान देवता चक्रपाणि को मन्दिर से उखाड़ कर उसने ग़ज़नी के प्रधान राजपथ पर लगाया। किसी देवमन्दिर के टूटने पर और उसमें से एक बड़े एवं बहुमूल्य मणि मिलने के कारण छिपे हुये धन की आशा से महमूदने सारे देवमन्दिरों और तीर्थोंको तहस नहस करने का हुक्म दिया। इस प्रकार हिन्दुओं के परम पुनीत तीर्थ स्थानेश्वरकी अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त हुई। इसके अनन्तर सुलतान महमूद विजयोल्लास से पुलकित होकर ग़ज़नी लौट गया। इस घटना के सात सौ वर्ष बाद इसी थानेश्वर को परम प्रतापी हिन्दुओं के कट्टर शत्रु अन्तिम मुगल सम्राट् औरङ्गज़ेब के हाथ से फिर ध्वस्त होना पड़ा। इसीसे आज हिन्दुओं के प्रधान तीर्थ थानेश्वर में प्राचीन देवमन्दिरों और देवमूर्त्तियों के चिन्ह नहीं पाये जाते। हां, कुछ बौद्ध और जैनमूर्तियों के टूटे हुये टुकड़े जो इधर उधर से खोद कर रक्खे गए हैं इसकी प्राचीनता की गवाही दे रहे हैं। स्थानेश्वर के दक्षिण ओर सरस्वती नदी के पास एक बहुत बड़ा सरोवर है जो कि अत्यन्त प्राचीन और पवित्र हैं। यह पूर्व से पश्चिम ओर ३५४६ फुट लम्बा तथा उत्तर से दक्षिण ओर १९०० फ़ीट चौड़ा है। इस तालाब के बीचोबीच एक टापू की तरह है जिसके चारों ओर तीर पर से यात्रियों को आने जाने के लिये सीढ़ियां बनी हुई थीं। अब इस समय केवल पश्चिम ओर सीढ़ियां बची हैं और तीन ओर की सीढ़ियां टूट फूट कर खंडहर हो गई हैं। इसी टापू के मध्य भाग में "चन्द्रकूप" नामक एक पवित्र कूंए का चिन्ह है। इसके विषय में ऐसा प्रवाद है कि चन्द्रग्रहण के समय इस कूप का जल दूध होकर चारों ओर उछलने लगता था और इसी चन्द्रग्रहण के समय स्थानेश्वर के इस पवित्र सरोवर में हिन्दुओं के सम्पूर्ण तीर्थ भी आकर सम्मिलित होते थे। अब सरोवर के तट से

चन्द्रकूप तक जाने के लिये जो पत्थर के फ़र्श का रास्ता था वह बिल्कुल नष्ट हो गया है। मोगल शासन के समय-यह चन्द्र कूप गलाया हुआ सीसा डाल कर बन्द कर दिया गया। महाराष्ट्रों के अभ्युदय काल में तो गोला बारूद-से इस पवित्र चन्द्र कूप का चिन्ह तक मिटा दिया गया। ऋग्वेद में स्थानेश्वर के इस पवित्र सरोवर का नाम "सर्य्यनावत" लिखा है। कहते हैं कि महर्षि दधीचि से दैत्यलोग सदा भयभीत रहा करते थे। एक बार असुरों ने फिर सिर उठाया और देवताओं को अनेक प्रकार से सताने लगे तथा दधीचि के शरीर से उनका मस्तक काट कर चुरा ले गए। यहां दधीचि से विद्या पढ़ने के लिये आए हुए अश्विनी कुमारों ने दधीचि ऋषि का मस्तकविहीन शरीर इस सरोवर के तीर पर पड़ा हुआ देखा। यह देख कर उन युगल कुमारों ने उस बेसिर की लाश में एक घोड़े का सिर जोड़ दिया। इधर देवता लोग अपने चिर शत्रु दैत्यों से उद्विग्न हुए। अब देवराज इन्द्र की आज्ञा से दधीचि ऋषि का मृत देह ढूंढ़ा जाने लगा। खोजते खोजते सर्य्यनावत् सरोवर के तीर पर घोड़मुहे दधीचि के शरीर को पड़ा हुआ देख कर देवता लोग उसे वहां से उठा ले गये। इन्हीं महर्षि दधीचि की हड्डी से स्वर्गपति इन्द्र का परम प्रसिद्ध अस्त्र वज्र निर्मित हुआ और इन्द्र ने अपने इसी वज्र द्वारा इसी सरोवर के तट पर परम प्रचण्ड दानवेन्द्र वृत्रासुर का संहार किया। किसी समय इसी सरोवर के तीर पर तपस्या करते हुये पितामह ब्रह्मा को सिद्धि प्राप्त हुई थी। तभी से यह "ब्रह्मसर" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। विष्णु के अवतारों में परम उग्र परशुराम जी ने क्षत्रिय वर्ण का ध्वंस कर के स्यमन्त पञ्चक नाम के पांच सरोवर बनाए। किन्तु ब्रह्मसरोवर इतना पवित्र था कि महाराज परशुराम को भी इसमें स्नान करके क्षत्रिय हत्या के पाप से अपने को मुक्त करना पड़ा। तब से यह ब्रह्मसरोवर से "रामह्रद" कहा जाने लगा। चन्द्रवंशी महाराज पुरूरवा ने इसी सरोवर के तीर पर अपनी बिछुड़ी हुई प्रियतमा उर्वशी को फिर से पाया था। इसी घटना के आधार पर कविकुलगुरु कालिदास ने अपना विक्रमोर्वशी नाटक रच डाला। इसी सरोवर के निकट एक बार विष्णु भगवान किसी , कारण वश बाल ब्रह्मचारी राजर्षि भीष्मपितामह पर क्रुद्ध हो कर अपना चक्र सुदर्शन ले मारने दौड़े थे। तब से यह चक्रतीर्थ कहलाया। महाराज पुरूरवा के वंशधर कौरवों के आदि पुरुष चन्द्रवंशी कुरुराज इस सरोवर के तट पर बहुत दिनों तक कठोर तप करके गुप्त हुए थे। तबसे इसके चारों ओर का प्रदेश धर्मक्षेत्र किम्वा कुरुक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। महाभारत में कुरु के वंशधर महाराज शान्तनु को पाण्डव और कौरवों का पूर्वपुरुष होना लिखा है। इन्हीं महाराज शान्तनु और देवाधि के परस्पर सम्वाद का वर्णन ऋग्वेद के दशम मण्डल में मिलता है। ऋक्संहिता के लिपिबद्ध और पुस्तक रूप में परिणत होने के पहिले ही कुरुक्षेत्र में महा-भारत का महा युद्ध हुआ था। इस कुरुक्षेत्र की

विस्तृत समर भूमि में कई बार अत्यन्त भीषण युद्ध हुए और भारत के अनेक प्रदेशों के क्षत्रियों का मूलोच्छेद हुआ। कौरव पाण्डवों के ऐतिहासिक युद्ध का विस्तृत रूप से महाभारत में वर्णन है। इस महाग्रन्थ के एक चौथाई भाग में इन्हीं सब घटनाओं का विवरण किया गया है। प्रसिद्ध ज्योतिर्विद वाराहमिहिर और प्राचीन इतिहास राजतरंगिणी के मत से महाभारत का युद्ध ईसा से २४४८ वर्ष पहिले हुआ था। इसी कुरु और पाञ्चाल देश से किसी समय सारे भारतवर्ष में भारतीय धर्मसाहित्य और सभ्यता का सूत्रपात हुआ और सम्पूर्ण देश में फैला। इसी कुरु तथा पाञ्चाल जाति के अभ्युदयकाल में ही ऋक् तथा सामवेद संहिता के सब मन्त्र एक जगह इकट्ठा कर के वर्त्तमान आकार में लाए गए और इसी समय ऐतरेय तथा सांख्यायन नामक दो ऋग्वेदीय अति प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थ भी सङ्कलित हुए। नैमिषारण्य में जिस महायज्ञ का अनुष्ठान हुआ था उसका सांख्यायन ब्राम्हण तथा महाभारत में विस्तृत रूप से विवरण दिया गया है। इसके अतिरिक्त सामवेदीय ताण्ड्य ब्राम्हण में भी कुरुक्षेत्र में किए हुए अनेक यज्ञादिकों का विशेष रूप से वर्णन मिलता है। कुरु और पाञ्चाल जाति के अधःपतन होने के पीछे भारत में काशी कोशल और विदेह में तीन स्वतन्त्र और बड़े राज्यों की प्रतिष्ठा हुई। ताण्ड्य ब्राम्हण में विदेह देश का नाम मिलता है। कोशल और विदेह जाति के अभ्युदयकाल में कृष्ण और शुक्ल यजुर्वेद संहिताएं एकत्रित कर के पुस्तक रूप में की गई थीं। विदेह देश से उपनिषद् और दर्शनशास्त्र की चर्चा आरम्भ होकर क्रमशः सारे जगत में उद्भासित हुई। यह कुरुक्षेत्र तो सर्वदा से भारतीय धर्म्म साहित्य और सभ्यता की जन्मभूमि रहा। पुण्यसलिला सरस्वती और दृषद्वती नदियों के बीच के प्रदेश को भगवान् मनु ने अपनी स्मृति में ब्रम्हावर्त्त के नाम से लिखा है। किसी समय इसी ब्रम्हावर्त से सब से प्रथम हिन्दूधर्म, साहित्य, सभ्यता, शिल्प, विज्ञान, गणित, ज्योतिष आदि अङ्कुरित होकर समस्त भारतवर्ष में व्याप्त हुए थे। मनु के अनुसार कुरुक्षेत्र ब्रम्हर्षि देश के अन्तर्गत है:—

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रम्हावर्त्तं प्रचक्षते॥ १॥
कुरुक्षेत्रञ्च मत्स्याश्च पाञ्चाला शूरसेनकाः।
एषब्रम्हर्षिदेशोवै ब्रम्हावर्त्तादनन्तरम्॥ १९॥
एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वस्वं चरित्रंशिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥२०॥

मनुसंहिता द्वि० अ०

दक्षिणेन सरस्वत्या दृषद्वत्युत्तरेण च।
ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे तेवसन्ति त्रिविष्टपे॥

महाभारत वनपर्व

महाभारत और वामन पुराण में कुरुक्षेत्र एवं स्थानेश्वर का विशेष माहात्म्य लिखा हुआ है। पर कुरुक्षेत्र के समस्त ३६० तीर्थों का "कुरुक्षेत्र प्रदीप" नामक ग्रन्थ में वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थ को महेश मिश्र के पुत्र वनमाली मिश्र ने रचा था। इन वनमाली मिश्र ने अपने को भट्टोजी दीक्षित का शिष्य कहा है।

(क्रमशः)

सूचना और सम्मति।

दक्षिण अमेरिका के पेरु प्रदेश में एक बहुत बड़ा पेड़ होता है। इसके बड़े बड़े पत्ते हवा से ओस इकट्ठी कर के उसे निरंतर जलरूप में बरसाया करते हैं। जब सूखा पड़ता है और नदी नालों में जल कम हो जाता है तब इन पत्तों की पानी बरसाने की शक्ति और भी बढ़ जाती है। पत्तों से बूंदों की झड़ी लग जाती है और धड़ से भी पानी की बहती हुई धारा आस पास की तपती हुई धरती को सींचती है। इस पानी को इकट्ठा कर के नालियों द्वारा बहुत दूर तक पहुंचा सकते हैं। ऐसा कहा जाता है कि एक पेड़ से एक दिन में एक मन के लगभग पानी निकलता है। यदि एक स्थान पर हज़ार पांच सौ पेड़ लगा दिए जायँ और पानी इकट्ठा करने के लिए गड्ढा बना दिया जाय तो सिंचाई का काम निकल सकता है। इस पेड़ में बड़ा भारी गुण यह है कि यह सब देशों में लग सकता है और बहुत जल्दी बढ़ता है। ऊसर धरती को उपजाऊ करने में इस पेड़ से सहायता ली जा सकती है। इस से आशा है कि इसके लगाने की ओर और देश के लोगों का भी ध्यान आ जायगा।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रधान (चैंसलर) श्रीमान् वाइसराय ने अपने कनवोकेशन के ऐड्रेस में कहा है—

"हम लोग दिल्ली में एक पुरातत्वानुसंधान विद्यालय खोलने की तजवीज़ में हैं जिससे पूर्वीय विषयों के आलोचना पूर्ण अध्ययन में एक नई जान आ जायगी। वहां ऐसे शिक्षक उत्पन्न हो जायंगे जो भारत के पुरावृत्त और उसकी प्राचीन भाषाओं के अध्ययन की बहुत उन्नति करेंगे। हम लोग भारत की प्राचीन विद्याओं की रक्षा के उपाय भी सोच रहे हैं। आशा है कि कुछ दिनों में हमारे विश्वविद्यालयों में पूर्वीय विषयों की भी पुष्ट संस्थाएँ स्थापित हो जायँगी। पर अभी उन प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुरातत्वविदों ने जो गतवर्ष शिमले में एकत्रित हुए थे, यही सम्मति दी है कि पहिले एक पुरातत्वानुसंधान विद्यालय खोल कर देखा जाय, और बात भी ठीक है।"

पाठकों को सुन कर कौतूहल होगा कि यूरप में जो बहुत बड़े बड़े ग्रन्थकार हो गए हैं उनमें से बहुतों को पुस्तकों से प्रेम नहीं था। फ्रांस देश के प्रसिद्ध दार्शनिक रूसो ने एक बार साफ़ साफ़ कह दिया कि 'मुझे पुस्तकों से चिढ़ है क्योंकि वे लोगों को ऐसी बातें बकना सिखलाती हैं जिन्हें वे समझते नहीं'। फ्रांसीसी उपन्यास लेखकों का राजा विक्टर ह्यूगो अपने यहां पुस्तकें ही नहीं रखता था। उसके विषय में उसके एक मित्र ने लिखा है—"ह्यूगो के घर मुशकिल से एक किताब भी ढूंढ़ने से निकलेगी और मेरे घर में २५००० पुस्तकें रक्खी हुई हैं। एक बहुत बड़ा ग्रन्थकार पुस्तकों के बारे में कहता है कि वे "लोगों को मानव जीवन पर अच्छी तरह दृष्टि नहीं डालने देतीं, उन्हें भ्रम में डालती हैं, और उनके चित्त को बहँका देती हैं। फ्रांस के प्रसिद्ध उपन्यास लेखक ज़ोला एक चिट्ठी में लिखते हैं कि "काहिलों को छोड़ और पुस्तकें पढ़ता कौन ?

इंगलैंड के प्रसिद्ध लेखक ऐंड्रू लांग के पास यद्यपि बहुत सी पुस्तकें हैं पर उनकी पढ़ी हुई बहुत कम हैं। एक ग्रन्थकार ने तो एक बार यहां तक कह डाला कि "मुझे छपा हुआ पन्ना देखते ही डर लगता है क्योंकि किताबें मूल विचार का नाश करती हैं"।

लंडन की रायल एशियाटिक सोसायटी प्रति तीसरे वर्ष पूर्वीय विषयों की छान बीन में नाम पैदा करनेवाले को एक स्वर्णपदक देती है। इस बार यह पदक प्राचीन शिलालेखों और ताम्रलिपियों के उद्धार के उपलक्ष में डाक्टर जे० एफ़० फ्लीट को मिला है।

सभा का कार्य विवरण।

प्रबन्धकारिणी समिति।

शनिवार ता० २३ दिसम्बर १९११ सन्ध्या के ५ बजे स्थान सभा भवन।

(१) गत अधिवेशन (ता० २५ नवम्बर १९११) का कार्य विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) पुस्तकाध्यक्ष के पद के लिये आए हुए प्रार्थना पत्र पुस्तकालय के निरीक्षक की सम्मति के सहित उपस्थित किए गए।

निश्चय हुआ कि इन पर विचार कर इस पद पर एक योग्य मनुष्य नियत करने के लिये निम्न लिखित सज्जनों की सब-कमेटी बना दी जाय अर्थात् प्रबन्धकारिणी समिति के उप सभापति, पुस्तकालय के निरीक्षक और सभा के मंत्री अथवा इनकी अनुपस्थिति में उपमंत्री।

(३) पण्डित कण्वाराम मेहता का १ दिसम्बर का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्हों ने अनवकाश के कारण प्रबन्धकारिणी समिति से इस्तीफ़ा दिया था। उप मंत्री ने सूचना दी कि उन्होंने मेहताजी से इस्तीफ़ा लौटा लेने के लिये प्रार्थना की थी पर मेहता जी को चार पांच मास तक कुछ भी अवकाश नहीं है।

निश्चय हुआ कि पण्डित कण्वाराम मेहता का इस्तीफ़ा स्वीकार किया जाय और उनके स्थान पर पण्डित जीवानन्द शर्म्मा प्रबन्धकारिणी समिति के सभ्य चुने जांय।

(४) साहित्य सम्मेलन कार्य्यालय प्रयाग के मंत्री का पत्र उपस्थित किया गया जिस में उन्हों ने सभा द्वारा प्रकाशित सब पुस्तकों की एक एक प्रति बिना मूल्य मांगी थी।

निश्चय हुआ कि सभा अपनी पुस्तकें उन्हें सहर्ष भेज सकती है परन्तु जब तक सम्मेलन की नियमावली में पुस्तकालय का स्थापित होना निश्चित न हो जाय तब तक पुस्तकों का भेजना कदाचित उचित न होगा।

(५) पण्डित रामनारायण मिश्र का २४ नवम्बर १९११ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण सभा के मंत्री और कोश कार्य्यालय के निरीक्षक के पद से इस्तीफ़ा दिया था।

निश्चय हुआ कि कोश कार्य्यालय के निरीक्षक के पद से उनका इस्तीफ़ा स्वीकार किया जाय और पण्डित माधव प्रसाद पाठक उन के स्थान पर नियत किए जांय। साथ ही पण्डित रामनारायण मिश्र से प्रार्थना की जाय कि वे सभा के मंत्री के पद से अपना इस्तीफ़ा लौटा लें क्योंकि कोश कार्यालय के निरीक्षक का कार्य छोड़ देने से उन्हें अब विशेष कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा।

(६) नागरी प्रचारिणी पत्रिका के सम्पादक का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि पत्रिका का आकार बदल दिया जाय और उस की पृष्ठ-संख्या बढ़ा दी जाय।

निश्चय हुआ कि पत्रिका किस आकार के कितने पृष्ठों में निकाली जाय इस सम्बन्ध में सम्पादक का ब्योरेवार प्रस्ताव कार्यालय की रिपोर्ट के सहित आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय।

(७) जुलाई १९०९ से जून १९१० तक का हिसाब जांच कर्त्ताओं के हस्ताक्षर सहित उपस्थित किया गया और साथ ही उन के सम्बन्ध में मिस्टर एस० आर० बद्दा (जांच कर्त्ता) की रिपोर्ट उपस्थित की गई।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय और मिस्टर बद्दा ने हिसाब रखने की रीति के विषय में जो प्रस्ताव किए हैं वे मंत्री की सम्मति के सहित आगामी अधिवेशन में उपस्थित किए जांय।

(८) उन सभासदों की नामावली उपस्थित की गई जिनके यहां तीन वर्ष का चन्दा बाकी पड़ गया है।

निश्चय हुआ कि इन सज्जनों की सेवा में जनवरी और फरवरी मास में पन्द्रह पन्द्रह दिन के अनन्तर चार पत्र चन्दे के लिये भेजे जांय और इस पर भी यदि इनका चन्दा न आवे तो इनका नाम नियमानुसार सूची "ख" में लिखा जाय।

(९) उपदेशक के पद से पण्डित गोविन्दाचार्य का इस्तीफ़ा उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ।

(१०) मुंशी देवी प्रसाद का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभा बाहरी पुस्तकों की बिक्री भी कमिशन पर किया करे।

निश्चय हुआ कि इस समय सभा इस बोझ के उठाने में असमर्थ है।

(११) उपमंत्री ने सूचना दी कि भारत प्रेस ने अब तक हिन्दी पुस्तकों की खोज की त्रैवार्षिक रिपोर्ट के केवल दो फर्मे छापे हैं और अब आगे वे इसे छापने में असमर्थ हैं।

निश्चय हुआ कि यह रिपोर्ट इण्डियन प्रेस में छपवाई जाय। इस की छपाई के लिये गवर्न्मेंट ने जितना द्रव्य देने के लिये कहा है उससे अधिक यदि व्यय हो तो उसके लिये बाबू श्यामसुन्दर दास जी ने आवश्यकता पड़ने पर कुछ आर्थिक सहायता देने के लिये कहा।

(१२) कोश कार्यालय के निरीक्षक की नवम्बर १९११ की रिपोर्ट सूचनार्थ उपस्थित की गई।

(१३) बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभा में चार अलमारियों की बड़ी आवश्यकता है।

निश्चय हुआ कि इनके व्यय के सम्बन्ध में मंत्री की रिपोर्ट के सहित यह प्रस्ताव आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय।

(१४) निश्चय हुआ कि श्रीमान् महाराजा सर प्रभुनारायण सिंह काशीनरेश जिन्होंने १०००) रु० से सभा के स्थायी कोष में सहायता की थी, इस सभा के स्थायी सभासद चुने जांय।

(१५) उपमंत्री ने सूचना दी कि श्रीमान् बड़ोदा नरेश ने अपने राज्य के गुजराती पाठशालाओं में भी अन्तिम तीन कक्षाओं में हिन्दी की शिक्षा आवश्यक करदी है और इसके लिये उन्होंने सभा की ओर से श्रीमान् को धन्यवाद का तार भेजा है।

(१६) पण्डित निष्कामेश्वर मिश्र का १२ दिसम्बर १९११ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि उन्हें इस वर्ष संस्कृत की प्रथम परीक्षा देना है अतः दो मास के लिये वे उपमंत्री का कार्य न कर सकेंगे।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(१७) निश्चय हुआ कि मंत्री को अधिकार दिया जाय कि अब तक ५) रु० मासिक वेतन पर जो चपरासी नियत था उसके स्थान पर ६) रु० मासिक वेतन तक वे एक पढ़ा हुआ चपरासी नियत कर लें।

(१८) निश्चय हुआ कि हिन्दी कोश में "ब" और "व" तथा अनुस्वार और पंचम वर्ण आदि के विषय में कोश समिति ने अब तक कुछ निश्चय नहीं किया। कोश का छपना अब शीघ्र ही प्रारम्भ होगा अतः यदि ७ जनवरी १९१२ तक कोश कमेटी इस विषय को निश्चित न करे तो कोश के सम्पादक ने अपने १२ अगस्त १९११ के पत्र में इस सम्बन्ध में जो सम्मति दी है वह स्वीकार की जाय और उसी के अनुसार कार्य्य किया जाय।

(१९) निश्चय हुआ कि हिन्दी कोश का प्रत्येक अंक सौ सौ पृष्ठों का निकाला जाय और उसका मूल्य १) रु० रक्खा जाय।

(२०) बाबू श्याम सुन्दर दास जी के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि कोश के सहायक सम्पादकों की संख्या ५ कर दी जाय अर्थात् ५०) रु० मासिक वेतन पर एक सहायक और बढ़ा लिया जाय और यदि सम्पादक इस पद पर मुंशी भगवान दीन को नियत करना निश्चित करें तो इस समिति को इसमें कोई आपत्ति न होगी।

(२१) निश्चय हुआ कि पण्डित माधव प्रसाद पाठक को अधिकार दिया जाय कि वे हिन्दी कोश के लिये द्रव्य एकत्रित करने के सम्बन्ध में सब पत्र-व्यवहार करें और इसके लिये काशी में चन्दा एकत्रित करने के लिये इस समिति के सब सभ्य उद्योग करें।

(२२) निश्चय हुआ कि हिन्दी कोश के सम्पादक ने तारीख २८ जुलाई १९११ के पत्र में कोश सम्पादन के लिये जिन ढाई सौ पुस्तकों के नाम लिखे हैं वे स्वीकार की जांय

और सम्पादक से प्रार्थना की जाय कि वे उन्हें खरीद लें ।

(२३) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई ।

साधारण अधिवेशन ।

शनिवार तारीख २७ जनवरी १९१२–सन्ध्या के ५ बजे स्थान सभाभवन ।

(१) बाबू अमीर सिंह के प्रस्ताव तथा पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के अनुमोदन पर पण्डित गंगा राम सारस्वत सभापति चुने गए ।

(२) गत अधिवेशन (तारीख ३० दिसम्बर १९११) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ ।

(३) प्रबन्धकारिणी समिति का तारीख २३ दिसम्बर १९११ का कार्यविवरण सूचनार्थ पढ़ा गया ।

(४) निम्नलिखित सज्जन सभासद चुने गए : (१) पण्डित काली चरन दुबे, हेल्थ अफ़सर, बरेली १॥) (२) श्रीमती गोपाल देवी–उपसम्पादिका–गृहलक्ष्मी–प्रयाग १॥) (३) पण्डित शिवराम दुबे, ठेकेदार, मानपुर, वाया म्हऊ सी० आई० ३) (४) बाबू कन्हैयालाल मारवाड़ी–बहराइच १॥) (५) बाबू महावीर प्रसाद वकील, उन्नाव १॥) (६) बाबू लक्ष्मीनारायण वकील, उन्नाव १॥) (७) पण्डित महानन्द वकील, उन्नाव १॥) (८) बाबू प्रयाग नारायण वकील, उन्नाव ३) (९) बाबू नारायचन्द मेम्बर, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, फ़तहपुर सिकरी ३) (१०) पण्डित खेतल दास मिश्र एलाएन्स बैंक आफ़ शिमला–मसूरी ३) (११) बाबू ज्वाला सहाय, ठि० बाबू हरनारायण सुनार, मसूरी १॥) (१२) बाबू हरनारायण ठि० दिल्ली एण्ड लन्दन बैंक लिमिटेड–मसूरी १॥) (१३) बाबू केवल राम, मसूरी १॥) (१४) पण्डित विनायक गणेश साठे एम० ए०–प्रोफेसर–गुरुकुल–हरद्वार–पो० श्यामपुर, ज़िला बिजनौर ३) (१५) बाबू गोवर्द्धन बी० ए० अध्यापक–गुरुकुल–कांगड़ी पो० श्यामपुर, ज़ि० बिजनौर ३)

(५) सभासद होने के लिये ६१ सज्जनों के नवीन आवेदनपत्र सूचनार्थ उपस्थित किए गए ।

(६) लाला छोटे लाल का ११ अक्तूबर १९११ का पत्र उपस्थित किया गया जिस में उन्होंने उपसभापति के पद से इस्तीफ़ा दिया था ।

निश्चय हुआ कि लाला छोटे लाल साहब से प्रार्थना की जाय कि वे कृपापूर्वक यह इस्तीफ़ा लौटा लें ।

(७) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईं । चित्र शाला प्रेस, पूना–राजा रविवर्म्मा के प्रसिद्ध चित्र । बाबू हरिदास माणिक,काशी–प्रताप सिंह की वीरता, प्रोफेसर राम मूर्ति और उनका व्यायाम । संयुक्त प्रदेश की गवर्न्मेंट–District Gazetteers of the United Provinces Vols. XIII, XXXIII and XXXV for Bareilly, Azamgarh and Almora, Gazetteer of the Rampur State,General Report on Public Instruction in the United Provinces of Agra and Oudh for the year ending 31st March 1911. पण्डित लोचन प्रसाद, रिटायर्ड डिपटी मजिस्ट्रेट,मैनपुरी–विचार माला,भगवद्गीता और गायत्री की हस्त लिखित प्रति । पण्डित श्रीधर पाठक, लूकर गंज, इलाहाबाद श्रीजार्ज वन्दना । Indian Antiquary for January 1912. खरीदी गईं–वैद्यकशिक्षा, कविरत्नमाला प्रथमभाग, धर्म्मतत्व सौन्दर्य प्रभा वा अद्भुत अंगूठी, पार्वती परिणय नाटक, पत्नी धर्म्मसंग्रह, आत्मसुधार और मडेल भगिनी । पण्डित रामनारायण मिश्र,काशी–श्री चित्रकूटयात्रा माहात्म्य चित्रकूट माहात्म्य ।

(८) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफ़े उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए:–

(१) कुंअर बरजोर सिंह, फर्रुखाबाद (२) पण्डित रविशङ्कर नागर, काशी (३) बाबू शिवप्रसाद गुप्त, काशी ।

(९) उपमन्त्री ने मदरास के मिस्टर कृष्णस्वामी ऐयर की मृत्यु की सूचना दी जो इस सभा के आनरेरी सभासद थे और जिन्होंने मदरास में नागरी अक्षरों के प्रचार के लिये बड़ा उद्योग किया था ।

निश्चय हुआ कि ऐसे सहायक की मृत्यु से सभा को अत्यन्त शोक हुआ है । इनके उत्तराधिकारियों को सभा की ओर से सहानुभूति सूचक पत्र भेजा जाय ।

(१०) उपमन्त्री ने निम्नलिखित सभासदों की मृत्यु की सूचना दी:–

(१) बाबू सदानन्द गुप्त जो इस सभा के एक उत्साही सभासद थे और जिन्होंने बुलन्दशहर में नागरी प्रचार के लिए विशेष उद्योग किया था । (२) काशी के बाबू लक्ष्मी नारायण ।

सभा ने इन सज्जनों की मृत्यु पर शोक प्रगट किया ।

(११) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई ।

प्रबन्धकारिणी समिति

शनिवार तारीख ३ फरवरी १९१२ सन्ध्या के ५ बजे

स्थान–सभाभवन

(१) गत अधिवेशन (तारीख २३ दिसम्बर १९११) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ ।

(२) हिसाब रखने की रीति के सम्बन्ध में मिस्टर एस॰ आर॰ बट्टा की रिपोर्ट उपमन्त्री की सम्मति के सहित उपस्थित की गई ।

निश्चय हुआ कि यह रिपोर्ट बाबू गौरी शङ्कर प्रसाद जी की सम्मति के सहित आगामी अधिवेशन में उपस्थित की जाय ।

(३) बाबू जगन्नाथ पुष्करन, बाबू अमीचन्द और पण्डित राम चीज पांडे के पत्र उपस्थित किए गए जिनमें उन्होंने प्रार्थना की थी कि उनका चन्दा क्षमा किया जाय । साथ ही पं० माधव राव सप्रे का पत्र भी उपस्थित किया गया जिस में उन्होंने लिखा था कि उनकी आर्थिक अवस्था ऐसी नहीं है कि वे सभा का वार्षिक चन्दा दे सकें ।

निश्चय हुआ कि पण्डित जगन्नाथ पुष्करन और पण्डित माधव राव सप्रे का चन्दा क्षमा किया जाय ।

(४) डाक्टर छन्नूलाल मेमोरियल मेडल के लिये आए हुए ६ सज्जनों के लेख उपस्थित किए गए ।

निश्चय हुआ कि इनकी परीक्षा के लिए निम्न लिखित सज्जनों की सब कमेटी बना दी जाय अर्थात् पण्डित रमा शङ्कर मिश्र एम॰ ए॰ पण्डित केशवदेव शास्त्री और डाक्टर शोभाराम एम० डी० ।

(५) 'वर्तमान शिक्षाप्रणाली' पर आए हुए दो लेख और 'देवनागरी वर्ण की उत्पत्ति और उसका भारतीय प्रसिद्ध लिपियों से सम्बन्ध, पर एक लेख उपस्थित किया गया ।

निश्चय हुआ कि "वर्तमान शिक्षा प्रणाली" के लेखों की परीक्षा के लिये पण्डित रामनारायण मिश्र बी० ए० और बाबू भगवान दास एम० ए० की सब-कमेटी नियत की जाय और "देवनागरी वर्ण की उत्पत्ति और उसका भारतीय प्रसिद्ध लिपियों से सम्बन्ध" की परीक्षा के लिये पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा और बाबू श्याम सुन्दर दास जी की सब कमेटी ।

(६) बिना तार की टेलिग्राफ़ी पर एक लेख उपस्थित किया गया ।

निश्चय हुआ कि इसकी परीक्षा के लिये बाबू लक्ष्मीचन्द एम० ए० नियत किए जांय ।

(७) निश्चय हुआ कि सन् १९१२ के पदकों के लिये निम्न लिखित विषय नियत किए जांय अर्थात् डाक्टर छन्नूलाल मेमोरियल मेडल के लिये 'गृहस्वास्थ्यरक्षा' (Domestic Hygeine) रेडिचे मेडल के लिये "पदार्थ विज्ञान से लाभ" और राधा कृष्ण दास मेडल के लिये "हिन्दी भाषा और नागरी लिपि की विशेष उन्नति के मुख्य उपाय ।"

(८) निश्चय हुआ कि आगामी तीन वर्षों के लिये हिन्दी पुस्तकों की खोज के निरीक्षक पण्डित श्याम बिहारी मिश्र जी ही रहें ।

(९) संयुक्त प्रदेश के शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर का २० दिसम्बर १९११ का पत्र नं० जी ४५८१ । १०-११६ उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि गवर्न्मेंट संयुक्त प्रदेश में हिन्दी पुस्तकों की खोज का समय ३ वर्ष के स्थान पर ६ वर्ष नहीं कर सकती ।

निश्चय हुआ कि यह पत्र आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय ।

(१०) गोपाल दास का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभा की पत्रिका अधिक रोचक बनाई जाय और जनवरी १९१२ से उसकी संख्याएँ डबल क्राउन आठपेजी आकार के तीन फर्मों में निकाली जांय जिसका टाइटिल पेज जुदा रहे ।

निश्चय हुआ कि यह प्रस्ताव स्वीकार किया जाय ।

(११) वेतन वृद्धि के लिये पण्डित काशीनाथ नायक पालना का प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया ।

निश्चय हुआ कि यह बजेट के समय उपस्थित किया जाय ।

(१२) मिसर्स के० एल० गार्गीय एण्ड सन्स का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने पूछा था कि क्या सभा उनके लिए अंगरेज़ी-हिन्दी का एक कोश Gem Pocket Dictionay की भांति व्यय लेकर बनवा सकती है । साथही इस विषय में बाबू श्याम सुन्दर दास जी की सम्मति भी उपस्थित की गई ।

निश्चय हुआ कि यदि मिस्टर के० एम० गार्गीय प्रत्येक ग्रन्थ इसके लिये सभा को ५००) रु० नगद और १००) रु० आवश्यक सामिग्री के लिये दें तथा पुस्तक छपने पर उसकी १०० प्रतियां और उसके प्रत्येक संस्करण की १२ प्रतियां दें तो सभा इसे तयार कर सकती है।

(१३) पण्डित राम प्रसन्न तिवारीका यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि संयुक्त प्रदेश की भांति सभा बिहार में भी हिन्दी हस्तलिपि परीक्षा के लिये पारितोषिक अथवा प्रशंसा-पत्र दिया करे।

(१४) निश्चय हुआ कि यह प्रस्ताव बहुत ही उत्तम है पर धनाभाव से सभा इसे नहीं कर सकती।

पण्डित माधव प्रसाद पाठक का २९ जनवरी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने कोश कार्य्यालय के निरीक्षक के पद से इस्तीफ़ा दिया था।

निश्चय हुआ कि पण्डित सूर्य्यनारायण त्रिपाठी से प्रार्थना की जाय कि वे कृपापूर्वक इस पद को ग्रहण करें और उनकी स्वीकृति होने पर पण्डित माधव प्रसाद पाठक का इस्तीफ़ा स्वीकार किया जाय।

(१५) रेवरंड ई० ग्रीव्स का ३० जनवरी १९१२ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि अब उन का रहना काशी में नहीं होता अतःप्रबन्धकारिणी समिति से उनका इस्तीफ़ा स्वीकार किया जाय।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय और उनके स्थान पर पं० रमाशङ्कर मिश्र एम० ए० प्रबन्धकारिणी समिति के सभासद और उसके प्रधान नियत किए जांय।

(१६) बाबू बाल मुकुन्द वर्म्मा के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि सभासदों का चुनाव साधारण सभा में प्रथम अधिवेशन में ही हो जाया करे और इस परिवर्तन की सूचना सब सभासदों को पत्रिका द्वारा दे दी जाय।

(१७) मिर्ज़ापुर के सरस्वती भवन के मन्त्री का पत्र उपस्थित किया गया जिस में उन्होंने अपने पुस्तकालय के लिये सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकें अर्द्ध मूल्य पर मांगी थीं।

निश्चय हुआ कि सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की एक एक प्रतियां उन्हें अर्द्ध मूल्य पर दी जांय।

(१८) सम्वाद समिति के प्रधान का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि उन्होंने सभाभवन में अपने साप्ताहिक अधिवेशनों के लिये सभा से जो आज्ञा मांगी थी उसके विषय में सभा उनकी प्रार्थना पर पुनः विचार करे।

निश्चय हुआ कि उन्हें निम्नलिखित नियमों पर सभा-भवन में साप्ताहिक अधिवेशन करने की आज्ञा दी जा सकती है: (क) उनके अधिवेशनों में किसी धार्मिक राजनैतिक अथवा सामाजिक विषय की चर्चा न की जाय (ख) उनसे १) रु० मासिक लिया जाय। (ग) जिस दिन सभाभवन में कोई मीटिङ्ग आदि होगी उस दिन वे अपना अधिवेशन न कर सकेंगे (घ) उनके अधि-वेशनों के कारण सभा के भवन अथवा वस्तुओं को जो हानि पहुंचेगी उसकी पूर्ति उन्हें करनी होगी।

(१९) मन्त्री ने सूचना दी कि उन्होंने अभी हिन्दू कालेज में हिन्दू युनिवर्सिटी के अधिवेशन के लिये सभा की बेंचें मंगनी दे दी थीं।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(२०) निश्चय हुआ कि सभा की बेंचों पर फिर से वार्निश करा दी जाय और इसके लिये २५) रु० तक का व्यय स्वीकार किया जाय।

(२१) निश्चय हुआ कि सब-कमेटी की सम्मति के अनुसार पण्डित केदारनाथ पाठक ता० १ फरवरी १९१२ से पुस्तकाध्यक्ष के पद पर नियत किए जांय और पण्डित कन्हैयालाल को चार्ज देने में जो समय लगेगा उसके लिये उन्हें ५) रु० दिया जाय।

(२२) नवम्बर मास की ७ दिन की बीमारी के वेतन के विषय में पण्डित काशी प्रसाद तिवारी का प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि उन्हें ७ दिन का आधा वेतन दिया जाय।

(२३) कोश कार्यालय के निरीक्षक का दिसम्बर १९११ का कार्य्य विवरण सूचनार्थ उपस्थित किया गया।

(२४) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

बाल मुकुन्द वर्म्मा
उपमन्त्री।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

भाग १६ | मार्च १९१२ | संख्या ९

ईथर की भँवर और संसार की उत्पत्ति ।

ईथर क्या है? पहिले यही सवाल उठता है। क्या यह किसी क़िसिम की हवा है अथवा किसी तरह का पानी है क्योंकि हवा और पानी में भी भँवर पड़ती है। इन सवालों का जवाब ईथर के गुणों को मालूम करने के पीछे दिया जा सकता है। ईथर में क्या क्या गुण हैं, क्या यह हवा, पानी, मिट्टी आदि की तरह जिन्हें हम देख सकते हैं वज़नी होता है, क्या इसे धर्ती चांद सितारे अपनी तरफ़ खींच सकते हैं, क्या ईथर में रगड़ पैदा हो सकती है। हवा में तो सितारों के टूटने और गिरने से इतनी रगड़ पैदा होती है कि आस पास की हवा रगड़ की गर्म्मी से चमकने लगती है। क्या ईथर को रबर के गेंद की तरह धक्का लगने पर पुरानी हालत पर लौट आने की शक्ति है। इन सब और बहुत सी दूसरी बातों का जवाब मिलने पर हम यह देख सकेंगे कि ईथर में भंवर पड़ने से क्यों कर यह संसार उत्पन्न हुआ, तरह तरह के पदार्थ और जीव बने, हवा पानी बना, क्यों कर बिजली और गर्म्मी पैदा हुई और किस तरह संसार इस तरह पर इतने दिनों से क़ायम है।

ईथर और दूसरे पदार्थों के गुणों की जांच।

अगर कोयले के एक छोटे टुकड़े को आप एक खल्ल में पीस डालें तो उस टुकड़े के करोड़ों छोटे छोटे ज़र्रे हो जाते हैं। इन ज़र्रों में वेही गुण मौजूद रहते हैं जो कि कोयले के टुकड़े में थे। इन ज़र्रों से कहीं ज्यादा महीन ज़र्रे इस कोयले से बन सकते हैं। अगर कोयले को बहुत हलके हाथ से काग़ज़ पर खींच दें तो एक काली सी लक़ीर बन जायगी। यह लक़ीर कोयले के ज़र्रों से बनी है और अगर इस को किसी कागज से रगड़ दें तो कागज पर भी खूब बारीक काला धब्बा पड़ जायगा। अब आप यह समझ सकते हैं कि लक़ीर के ज़र्रों की कितनी कम तौल होगी। इनसे भी कम तौल वाले वे ज़र्रे होंगे जिन की रगड़ से कागज पर एक हलका स्याह दाग

पड़ गया हो। इसी तरह हर एक पदार्थ के जिन को हम देखते हैं बहुत ही छोटे ज़र्रे बन सकते हैं। पर एक हद्द पहुंच जाती है जिस के उपरान्त ज़र्रों को हम ज्यादा बारीक नहीं कर सकते और यदि उन को किसी रीति से तोड़ दें तो उन टूटे हुए ज़र्रों में पहिले ज़र्रों के गुण नहीं रह जाते। इन दूसरे ज़र्रों के गुण में और पहिले पदार्थ के गुण में जिन से ये निकले हैं बहुत फ़र्क होता है। जैसे पानी के ज़र्रे (molecules) टूट कर Hydrogen हाईड्रोजन और Oxygen आक्सीजन के ज़र्रे बन जायंगे। पर ये दोनों हवा की तरह ग्यास हैं, पानी की तरह इन को सूरत नहीं होती। एक दूसरा उदाहरण इस बात का कि तरह तरह के पदार्थों के बहुत ही बारीक परमाणु या ज़र्रे हो सकते हैं, हमें कस्तूरी से मिलता है। कस्तूरी को अगर ज़रा देर हवा में छोड़ दें तो उसकी महक दूर तक फैल जाती है, तब भी कस्तूरी की तौल में कुछ भी फ़र्क नहीं पड़ता। कोयले के दाग को तो देख भी सकते हैं पर कपूर वगैरह के अंशों या ज़र्रों को तो देख भी नहीं सकते। देखते देखते कपूर के अति बारीक अणु उड़ कर हवा में मिल जाते हैं। इस से यह बात सिद्ध हुई कि जगत में जितने पदार्थ हैं वे बहुत ही बारीक बारीक ज़र्रों या परमाणुओं से बने हैं। थोड़े समय के लिये मान लें कि इन ज़र्रों की शक्ल गोल है तो दो गोलों के बीच में कुछ न कुछ जगह ज़रूर बच जायगी। जैसे यदि एक बोतल में महीन राई के दाने भर दें तो दानों के बीच में कुछ जगह ज़रूर खाली होगी। इसका सबूत यह है कि अगर उस बोतल में पानी या तेल डाल दें तो वह खाली जगह भर जाती है और तेल वहां समा जाता है। अगर वहां खाली जगह न होती तो तेल कैसे वहां समा सकता है? इसी तरह इन छोटे परमाणुओं के बीच की जगह इसी ईथर से भरी होती है। अब हम यह देखेंगे कि ईथर और दूसरे पदार्थों में क्या मेल और क्या भेद है।

दुनियां के और दूसरे तत्त्वों के परमाणु मिले नहीं होते।

जितने तत्व हैं वे सब बहुत ही छोटे अणु या ज़र्रों से बने हैं। इन की मोटाई करीब १ इञ्च के १/५०००००००० हिस्से के बराबर होती है यानी अगर ५ करोड़ ऐसे अणु सटाकर एक दूसरे के बगल में रख दिए जायं तो उनकी कुल लंबाई मिलकर १ इञ्च होगी। कभी कभी किसी किसी पदार्थ जैसे सोना, चांदी, लोहा वगैरह ठस धातुओं में, ये अणु आपस में करीब करीब सटे रहते हैं यानी दो अणुओं के बीच का फासला कम होता है। पानी वगैरह में जो दो या तीन भिन्न भिन्न अणुओं से बने रहते हैं ये दो तीन प्रकार के अणु आपस में ऐसे सट जाते हैं कि मानों वे एक ही अणु या गोले की तरह काम करते हैं पर हवा के अणु एक दूसरे से ज्यादा दूरी पर होते हैं। इनके बीच की दूरी इनकी गोलाई की करीब २५० गुणी होती है। जैसे मान लें कि एक अणु की गोलाई 'क' है तो दो अणु के बीच की दूरी २५० 'क' होगी। पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच की दूरी पृथ्वी की गोलाई की तीस गुनी है। अगर यह दूरी २५० गुनी होती तो पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच ८००० × २५० या २० लाख मील का फासला होता। पर वास्तव में पृथ्वी

चन्द्रमा से २ लाख ४० हजार मील की दूरी पर है। सूर्य्य पृथ्वी से ९ करोड़ ३० लाख मील की दूरी पर है और सूर्य्य के चारों ओर घूमने वाले नक्षत्र और भी दूर दूर हैं। Neptune नेपचून सूर्य से ३०० करोड़ मील पर है। अगर Fixed stars अचल सितारों की दूरी पर ध्यान दें तो सूरज को, जो साल में ५० करोड़ मील का धावा मारता है, सब से नज़दीक के सितारे तक पहुंचने में ४००० वर्ष लगेंगे और अगर किसी दूर वाले सितारे से सूर्य्य को भेट करना हो तो उसे करोड़ों वर्ष की जरूरत पड़ेगी। इस से यह ज़ाहिर है कि दो अणुओं के बीच में अणु की बड़ाई के अनुसार अन्तर होता है। धर्ती और सूरज में धर्ती की बड़ाई के हिसाब से अन्तर है और इसी तरह सूरज की बड़ाई के अनुसार सूरज और दूसरे सितारों में अन्तर है। यह सब अन्तर अर्थात् बीच की जगह ईथर से भरी हुई है।

ईथर बराबर चला गया है।

पानी भी लगातार। मालूम पड़ता है। इसके तत्त्वों या परमाणुओं के बीच बीच में अन्तर नहीं देख पड़ता। पर पानी में अगर चीनी डाल दें तो चीनी समा जाती है। अगर इस में अन्तर न होता तो यह चीनी कहां चली जाती? हवा में भाफ़ वगैरह समा जाती हैं। आज कल के सूक्ष्मदर्शक यंत्रों से तो हम इन अन्तरों को नहीं देख सकते पर इनसे ज्यादा छोटी चीजों को बड़े दिखलाने वाले यन्त्रों से शायद आगे चल कर हम इन पानी के परमाणुओं को देख सकें। पर ईथर में यह अन्तर कभी न देख पड़ेगा अर्थात् इसमें दूसरी चीजों की तरह अन्य वस्तुओं के गलाने या अपने में समा लेने की शक्ति नहीं है।

तत्त्व का पारावार है पर ईथर अपार है।

यह बात जांची गई है कि एक इञ्च लंबी, १ इञ्च चौड़ी और १ इञ्च ऊंची कोठरी में हवा के १०००००००×१००००००×१०००००००(या करोड़ को दो बार फिर करोड़ से गुणा करने से जो अदद निकलती है उतने अणु हैं। इसका पता इस बात से लगता है कि एक अणु की गोलाई १ इञ्च का $\frac{1}{10000000}$ हिस्सा है इस से एक तिकोनी कोठड़ी में जिसकी लम्बाई, चौड़ाई और उंचाई तीनों एक इञ्च है १२५०००,००००००,००००००,०००००० अणु होंगे। सूरज, चांद, पृथ्वी आदि के कितने अणु हैं, इसका पता लग सकता है। क्योंकि इन की गोलाई वगैरह अच्छी तरह जांची गई है। सब इसी तरह और दूसरे सितारे वगैरह के परमाणुओं का अन्दाजा कर के कुछ लोगों ने इसकी जांच की है और उन का यह विचार है कि इन की संख्या ० के पीछे ९१ सुन्ना (सिफ़र) लिखने से मिलती है। अगर इन सब परमाणुओं को एक साथ लेकर पानी के अणुओं की तरह सटा कर रख दें तो पता लग सकता है कि जगत में कितना तत्त्व है। सो कुछ हो यह बात विदित है कि तत्त्व का पारावार है, यह अपार नहीं। इसकी कुछ हद्द है पर ईथर अपार है। इस का सबूत हम को रोशनी से मिलता है। ईथर की लहरों की तेज़ी १८६००० मील एक सेकेण्ड में है। रोशनी को सूर्य्य तक पहुचने में ८ मिनिट लगते हैं, नेपचून से यहां तक आने में ४ घण्टे और सब से निकट केवल

सितारे वा नक्षत्र से आने में ३½ वर्ष। ज्योतिषी लोग कहते हैं कि ऐसे सितारे हम को देख पड़ते हैं जहां से रोशनी की किरणें अगर अभी चल पड़ें तो पृथ्वी तक इन्हें पहुंचने में १०,००० वर्ष लगेंगे चाहे इन की तेज़ी १८६००० मील फी सेकेण्ड क्यों न हो। इससे यह स्पष्ट हुआ कि यह सब बीच का अन्तर ईथर से भरा हुआ है। अगर ऐसा न होता तो रोशनी उस जगह से आगे क्योंकर बढ़ती और क्योंकर तारा दिख पड़ता। पर दूर दूर के सितारे हम को बराबर दिखाई देते हैं और जितनी ज्यादा दूर हम दूरबीन से देखते हैं उतनी ही ज्यादा दूरी के सितारे बराबर नजर आते हैं। कोई कोई लहरें या किरणें जो हम तक पहुंचती हैं उनके सिरे से सिरे तक की दूरी १ इञ्च के लाखवें हिस्से से भी कम होती है। अगर इतनी भी जगह कहीं ईथर से खाली होती तो रोशनी वहीं रुक जाती। दूसरी बात यह है कि अगर रोशनी की किरणें कहीं से पलटती हैं तो उनका प्रकाश कहीं दूसरी जगह जा कर पड़ता है। जैसे, लोग कहते हैं कि अगर शीशे पर रोशनी पड़े या सूर्य्य की धूप पड़े तो उस तरफ शीशे में देखने से आंख पर बड़ी चमक पड़ती है। अगर शीशे को घुमा फिरा दें और उस की चमक को किसी अंधेरी जगह में ले जायं तो उजाला हो जाता है। अगर कहीं ईथर न हो तो वहां से आगे रास्ता न पाकर इन किरणों को पीछे लौटना पड़ेगा और लौटने पर आकाश का कुछ भाग प्रकाशमय हो जाता, पर ऐसा कभी देखने में नहीं आया है। सूर्य्य कितने दिनों से चमक रहा है इस का पूरा पता नहीं, पर कम से कम १० करोड़ वर्ष से यह यों ही चमक रहा है। इस से निकली हुई किरणें कम से कम ५० करोड़ वर्ष तक बराबर १८६००० मील फी सेकेण्ड के हिसाब से दौड़ रही हैं और यदि उन को कहीं से लौटना पड़ता तो लौटने में ५० करोड़ वर्ष लगते। पर ऐसा होने से कुछ भाग आकाश का प्रकाशमान हो कर इन के बहुरने की सूचना देता। इस से यह विदित है कि १०० करोड़ वर्ष से ये किरणें चली जा रही हैं यह कितनी दूरी हुई। इसी से पता लगता है कि ईथर अपार है; इस को अभी तक किसी ने पार नहीं किया, यह अनन्त है।

तत्त्व बहुत तरह के होते हैं पर ईथर एक सा होता है। सृष्टि में करीब ७० तत्त्व हैं जिनके मिलाप से दूसरे तत्त्व बने हुए हैं। ये ७० जुदे जुदे तत्त्व एक दूसरे से भिन्न भिन्न हैं। सूर्य्य, तथा और ग्रहों में भी इन्हीं तत्त्वों में से कुछ मिलते हैं। इन सत्तर के सिवाय दूसरे नहीं। पर ईथर में तथा और तत्त्वों में यह भेद है कि ईथर केवल एक तरह का है लोहे चांदी के अणुओं की भांति कई तरह का नहीं।

तत्त्वों के अणु होते हैं।

यदि किसी तत्त्व को बराबर ज्यादा बारीक करते जायँ तो अन्त में ऐसे अणु मिलेंगे जिनका हम भाग नहीं कर सकते। अगर उन अणुओं को किसी तरह तोड़ दें तो उसमें उस तत्त्व के गुण ही नहीं रह जाते। पर ईथर के अणु नहीं होते और न कहीं इसमें ऐसा अन्तर होता है जैसा दूसरे तत्त्वों के अणुओं के बीच में होता है।

तत्त्वों का कोई आकार होता है पर ईथर निराकार है।

जितने तत्त्व हैं सब के भिन्न भिन्न अणु एक दूसरे से बहुत मिलते हैं। उन सब की कुछ तोल होती है, उनमें दूसरे तत्त्वों से मिलने की शक्ति होती है और इसी तरह बहुत सी बातों में वे एक से होते हैं। इससे यह निश्चय है कि इन सब का आकार एक ही सा है। पहिले लोगों का यह विचार था कि ये गोल और ठस होते हैं पर अब यह धारणा है कि तत्त्वों के अणु ईथर की भंवरों से बने हैं जो ईथर में ठीक उसी तरह चक्कर मार रहे हैं जैसे रेल के अंजन से निकला हुआ धुंआ जब हवा नहीं रहती तब कुंडल बांध बांध कर तरह तरह के तमाशे दिखलाता है। इन धुंए की भंवरों के गुणों को देख कर अचंभा सा हो जाता है। ऐसे कुंडल मकान पर भी बन सकते हैं।

किसी सन्दूक के एक पटरे में एक छोटा गोल छेद हो। उसकी दोनों तरफ की दीवारें लकड़ी की हों और पीछे की दीवार केवल एक मोटे कपड़े को तान कर बनाली जाय। संदूक में एक शीशी में नमक का तेजाब और दूसरी में तेज अमोनिया खोल कर रख दिया जाय तो उसके भीतर बादल की तरह सफेद धुआँ भर जायगा। फिर पीछे से कपड़े पर एक थपकी देने से धूएँ के ऐसे चक्कर या भंवर बाहर निकलने लगते हैं और अब इन भँवरों के कुछ गुण बतलाते हैं।

१. ये भँवर अपनी कुंडलाकृति बनाए रखते हैं और जिस चीज से ये बने होते हैं वह इन से निकल नहीं जाती।

२. ये हवा में ८-१० गज़ एक सेकंड में बिना बदले हुए जा सकते हैं।

३. ये सदा सीधे सामने की ओर चलते हैं।

४. अपने से ये कभी नहीं रुकते और अगर किसी तरह इन्हें रोक दें तो फिर रुकावट हटने पर बिना किसी मदद के ये फिर आप से ही चलने लगते हैं।

५. इनमें काम करने की शक्ति और ज़ोर होता है अर्थात् इनकी टक्कर लगने से धक्का लगता है।

६. अगर इनको धक्का दें तो ये फिर अपनी पुरानी सूरत पर आ जायँगे और जिस तरह बीन का तार खींचने से इधर उधर हिलता है उसी तरह ये भी एक अन्दाज़ से सिकुड़ और बढ़ सकते हैं। जितनी ज्यादा तेज़ी से ये भंवर घूमते हैं उतने ही ज्यादा वे ठस और लचीले होते हैं।

७. ये लट्टू की तरह चक्कर मारते हैं और आगे भी बढ़ते हैं अर्थात् अपने चारों तरफ घूमते हैं और आगे भी बढ़ते हैं

८. ये आगे की आई हुई हलकी चीजों को दूर हटाते हैं और पीछे से आई हुई चीज़ों को अपने भीतर खींचते हैं।

९. अगर इन्हें किसी लंबी मेज के बराबर चलावें तो ये पत्थर की तरह नीचे गिरते हैं।

१०. अगर एक ही मान के दो भँवर एक ही रास्ते से जाते हों और पीछेवाला आगे वाले के पास पहुंच जाय तो आगेवाले का मुंह बड़ा हो जाता है और पीछेवाले का मुंह छोटा और तब पीछेवाला आगेवाले के भीतर घुस कर दूसरी तरफ निकल जाता है और तब दोनों फिर अपने पुराने कद के हो जाते

हैं पर इसी तरह बराबर सिकुड़ते और बढ़ते रहते हैं।

११ यदि दो भँवर एक ही मार्ग पर आमने सामने से आते हों तो उनकी चाल की तेज़ी कम हो जाती है। अगर एक दूसरे में से घुम कर निकल जाता है तो ऐसा भी होता है कि उस दूसरे की कुल तेज़ी जाती रहती है और वह हवा में खड़ा हो जाता है। जब पहिला कुछ दूर चला जाता है फिर दूसरा अपना रास्ता पकड़ता है।

१२ यदि दो भँवर एक दूसरे की बगल में होते हैं तो तुरन्त इन दोनों में टक्कर लग जाती है जिससे यह मालूम होता है कि इन में एक दूसरे की तरफ खिंचाव है।

१३ यदि इस टक्कर लगने से ये टूट न जायँ तो दो भँवरों की जगह दूनी मोटाई का एकही भँवर बन जाता है। कभी कभी दोनों भँवर कूद कर ऊपर नीचे भी चले जाते हैं।

१४ तीन भँवर भी एक साथ टकरा कर एक बन जाते हैं।

इस तरह के भँवर अकसर अंजन से निकल कर हवा में घूमते दिखाई पड़ते हैं पर कुछ दूर चल कर हवा की रगड़ से टूट जाते हैं। अगर हवा में रगड़ न होती तो ये सदा बने रहते।

ईथर में रगड़ नहीं होती इस लिए ईथर के भँवर नहीं टूटते। तत्वों के अणु वास्तव में इसी ईथर के भँवर हैं। तत्वों की तरह ये भँवर जगह छेंकते हैं, इनमें आकार होता है, ये बड़े छोटे होते हैं, इन में काम करने और चलने की सञ्चित शक्ति होती है। ये सिकुड़ बढ़ सकते हैं, दूसरे भँवर को अपनी तरफ खींचते तथा उन्हें अपने से दूर हटाते हैं। इस से लोगों का यह अनुमान है कि तत्वों के अणु वास्तव में ईथर की भँवर हैं। ईथर और तत्वों में भेद यही है कि जब ईथर में भँवर पड़ जाती है तब वह तत्व हो जाता है।

ईथर में आकार नहीं होता, न इसमें कहीं अन्तर होता है। यह अनन्त और अपार है इसलिए इस में रूप या आकार नहीं हो सकता। आकार तभी होगा जब कहीं ऊंचा कहीं नीचा कहीं कम चौड़ा कहीं ज्यादा चौड़ा हो पर ईथर तो सम और सर्वव्यापक है। तत्वों की पहिचान आकारवान होने से ही की जा सकती है। ईथर निराकार है।

तत्वों में आकर्षण शक्ति होती है।

एक तत्व में दूसरे तत्व को खींचने की शक्ति होती है। संसार का हर एक अणु दूसरे अणु को खींचता है। इस का प्रमाण सौर जगत से मिलता है। यह उपग्रह आदि सब इसी खिंचाव के कारण इस तरह बराबर चक्कर मार रहे हैं। यह आकर्षण शक्ति सब तत्वों में होती है। कितनी आकर्षण शक्ति किस चीज़ में है यह केवल इस बात पर निर्भर है कि उस चीज़ में कितना तत्व है।

ईथर में आकर्षण शक्ति नहीं होती।

अगर ईथर में आकर्षण शक्ति होती तो संसार में यह कहीं कम कहीं ज्यादा होता। ऐसा होने से कहीं रोशनी की किरणें कम तेज़ी से चलतीं कहीं ज्यादा तेज़ी से, कहीं सीधी हो कर चलती, कहीं मुड़ कर, एक सीध में किरणें कभी न होतीं पर ऐसा नहीं है इस लिए ईथर में आकर्षण शक्ति नहीं

है। तत्त्व ईथर की भंवर से बने हैं। भंवर पड़ जाने पर एक भंवर दूसरी भंवर को अपनी तरफ खींचते खिंचाते पर ईथर में स्वयम् कुछ भी आकर्षण शक्ति नहीं है।

तत्त्वों में रगड़ होती है।

हवा में जब गोली छोड़ते हैं तब धीरे धीरे गोली की तेज़ी कम होती जाती है। पटरी पर खड़े किसी रेल गाड़ी के डिब्बे को अगर ढकेल कर छोड़ दें तो कुछ दूर चल कर पटरी की रगड़ से वह रुक जायगा। जब जहाज़ पानी में चलता है तब बड़े बड़े अंजनों की मदद से पानी की रगड़ को मारकर आगे बढ़ाता है। जब किसी चीज़ को दूसरी चीज़ के ऊपर चलाते हैं तब रगड़ पैदा हो जाती है। अगर एक लट्टू हवा में घुमावें तो कुछ देर में ज़मीन और हवा की रगड़ से लट्टू रुक जाता है। अगर हवा खींच लें और तब उस जगह लट्टू चलावें तो हवा की रगड़ न होने से लट्टू देर तक चलता है।

ईथर में रगड़ नहीं पैदा होती। पृथ्वी ईथर में घूम रही है। जहां पृथ्वी की परिधि २५००० मील है। उसके ऊपर की चीज़ ईथर में एक हज़ार मील से ज्यादा एक घंटे में चलती है। अगर ईथर के बदले बन्द हवा में धरती घूमती तो हवा तूफान से दस गुनी तेज बहती होती और उसकी रगड़ से धरती चूर हो गई होती धरती। की तेज़ी भी बहुत जल्द कम हो गई होती। पर पृथ्वी तो ईथर में घूमती है और हवा उस के साथ साथ घूमती जाती है। यह भी देखा गया है कि धरती की चाल में कुछ भी कमी अब तक नहीं हुई। ज्योतिष से मालूम होता है कि २००० वर्षों से धरती उसी चाल से चक्कर मार रही है। २४ घंटे में पहिले भी एक चक्कर पूरा होता था और अब भी। अर्थात् धरती की चाल बराबर वही बनी है। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर करीब १९ मील प्रति सेकेंड के हिसाब से घूमती है। वर्ष भर में एक चक्कर पूरा होता है। ज्योतिषी लोग कहते हैं कि हज़ार वर्षों में एक सेकेंड के सौवें हिस्से का भी फर्क धरती की चाल में नहीं पड़ा है। १९ मील फी सेकेंड तो कोई बड़ी बात नहीं ऐसे भी दुमदार सितारे हैं जो एक सेकेंड में ४०० मील आगे बढ़ते हैं। इनकी चाल में भी हजारों वर्षों में फेर नहीं पड़ा है। इससे यह सिद्ध हुआ कि ईथर में रगड़ का नाम नहीं है। प्रकाश की किरन १८६००० मील फी सेकेंड के हिसाब से चलती है। इन की तेज़ी में कमी नहीं हुई। पानी में अगर एक पत्थर का टुकड़ा फेंके तो लहर पैदा होती है। पर कुछ दूर जाकर लहर छोटी होजाती है। पानी की रगड़ से यह बात होती है। अगर ईथर में रगड़ होती तो रोशनी की लहरें भी छोटी हो जातीं। और लहर छोटी बड़ी होने से रंग बिरंग की रोशनी अलग अलग तारों की मालूम होती। क्यों कि जितनी दूर से रोशनी आती उतनी ही छोटी लहर हो जाती। तरह तरह की रोशनी में यही फेर है कि उनकी लहरें बड़ी छोटी होती हैं। पर हम देखते हैं कि एक ही तरह की रोशनी सब जगह नक्षत्रों से आती है। सूर्य और सूर्य के चारों ओर घूमने वाले नक्षत्र साल में ५० करोड़ मील का धावा मारते हैं। इस लिए अगर ईथर में रगड़ होती तो कुछ सितारों की रोशनी ज्यादा दूर होने के कारण

बुझ जाती और नए नए सितारे ज़्यादा नज़दीक होने से दिखाई देते। पर कुल सितारे सदा ज्यों के त्यों एक ही तरह की रोशनी के दिखाई देते हैं इस लिए यह सिद्ध हुआ कि ईथर में रगड़ नहीं होती।

तत्वों के अणु के सब हिस्से सम नहीं होते।

बहुत सी बातों से जैसे चीज़ों की विशेष विशेष रूप धारण करने की शक्ति बिजली पैदा होने की रीति आदि से यह प्रमाण मिलता है कि अणुओं के गुण अपने सामने की ओर सम नहीं हैं। इन अणुओं के मिल जाने से molecules या दोहरे तिहरे, चौहरे अणु बनते हैं। इनका रूप कुछ ऐसा होता है कि इनके मेल से तरह तरह के पदार्थ सितारे या झाड़ के शीशे के कलम की सूरत के बनते हैं। जैसे निमक की डली की एक खास सूरत होती है। चीनी की डली की दूसरी सूरत इस से यह सिद्ध हुआ कि इन अणुओं की सूरत चारों ओर एक सी नहीं है। इस बात के और भी प्रमाण हैं। क्वार्ट्ज़ एक तरह का शीशे की तरह का पार दर्शक पत्थर होता है। अगर इसमें से रोशनी की किरन जाय तो वह घूम जाती है। कुछ चीज़ों में एक तरफ से बिजली या गर्मी दूसरी तरफ की अपेक्षा ज्यादा आसानी से आ जा सकती है। अगर धुएं के भँवर की तरफ हम ध्यान दें तो देख पड़ेगा कि उसकी शकल चारों ओर एक सी नहीं है। इसका यह असर होता है कि एक ओर से तो भंवर चीज़ों को अन्दर घसीटती है और दूसरी ओर की चीज़ों को दूर फेंकती है।

ईथर हर ओर सम है।

ईथर में रोशनी हर तरफ एक ही तरह से जा सकती है। उसमें कहीं भी रुकावट नहीं। अर्थात् ईथर सब ओर सम है।

एक तत्त्व को दूसरे तत्त्वों से मिलने की चाह होती है। यदि कई तत्त्व मौजूद हों तो उन में से किसी एक को चुन कर वह उस के साथ मिलेगा।

जब एक तत्त्व दूसरे तत्त्व से मिलता है तब एक के १,२ अणु दूसरे के १,२,४ अणु से मिलजाते हैं। तत्त्व के कितने अणु दूसरे के कितने अणु से मिलेंगे इस का हिसाब होता है। सदा उसी हिसाब से ये अणु मिलते हैं। पर इन तत्त्वों में कुछ को किसी तत्त्वों से मिलने की कुछ ज्यादा चाह होती है। जैसे कारबन या कोयले को हाईड्रोजन से मिलने की चाह है पर अगर उसे आक्सीजन मिल सके तो हाईड्रोजन को छोड़ वह आक्सीजन से मिल जाता है। जसते को तेज़ाब में गलाने से जो गैस निकलता है उसे हाईड्रोजन कहते हैं। आक्सीजन और हाईड्रोजन के अणु मिल कर पानी बनाते हैं। किसी पदार्थ की स्थिति इस बात पर निर्भर है कि उस पदार्थ के पास और कौन दूसरे पदार्थ हैं। लकड़ी कई तत्त्वों के मिलने से बनी है। अगर लकड़ी को खूब गरम करें और पास में आक्सीजन मौजूद हो तो उस लकड़ी के सब अणु एक दूसरे का साथ छोड़ आक्सीजन से मिल जायगे। लोहे को अगर सूखी हवा में रक्खें तो उस पर मोरचा नहीं लगता पर जहां हवा नम होती है वहाँ आक्सीजन के साथ मिल कर लोहे का आक्साइड बन जाता है। अगर इस नई

चीज को गरम गन्धक के निकट रख दें तो लोहा आक्सिजन को छोड़ गन्धक से मिल लोहे का सलफ़ाइड बनावेगा (यह सलफ़ाइड काले निमक में मौजूद है)। इस से प्रतीत हुआ कि तत्वों को चुनाव की शक्ति है। पर ईथर की तो आकृति ही नहीं होती और न इसे किसी तत्व से मिलने बिछुड़ने की चाह होती है।

एक तत्व का दूसरे तत्व से संबंध है।

यदि तत्वों को सिलसिले वार एक दूसरे के बाद उनके अणुओं की तौल के अनुसार लिखें तो ऐसा देखा जाता है कि कई तत्वों के बाद फिर ऐसे तत्व आते हैं जो पहिले लिखे हुए कुछ तत्वों से गुण में बहुत मिलते जुलते हैं। अकसर ऐसा होता है कि आठ तत्वों का नाम लिखने पर जो नवाँ तत्व लिखा जाता है वह पहिले से मिलता है, दसवां दूसरे से। इसी तरह सत्रहवां तत्व पहिले या नवें से मिलता है इस का पूरा हाल रसायन शास्त्र की पुस्तकों में मिलेगा।

ईथर एक ही तरह का होता है इस से उस में ऐसा मिलाप भेद हो ही नहीं सकता।

तत्वों में काम करने की शक्ति होती है।

पहिले लोगों का यह खयाल था कि रोशनी बिजली इत्यादि से और तत्व भिन्न हैं पर अब ऐसा विचार नहीं रहा। प्रकाश आदि ईथर में लहर पड़ने से पैदा होते हैं और ईथर में भंवर पैदा होने से तत्व बनता है। अगर ईथर की लहरों की गति बन्द कर दें तो रोशनी मिट जाय, अगर भंवर को तोड़ दें तो तत्व नष्ट हो जायें। धुएँ की भंवर तो हवा की रगड़ से बनती है पर ईथर में तो रगड़ नहीं होती। अतः क्यों कर ये भंवर पैदा हुए इसका पता नहीं चलता।

ईथर में भी शक्ति होती है।

ईथर की शक्ति बिजली इत्यादि की शक्ति नहीं क्यों कर यह भंवर, या लहरें ईथर में आईं इस का पता नहीं लगता।

तत्वों के कारण एक प्रकार की शक्ति दूसरा रूप धारण कर लेती है।

हर तरह की शक्ति ईथर में गति (हर्कत) होने से पैदा होती है। एक तरह की शक्ति को दूसरे रूप में बदलने के लिए इन तत्वों की ज़रूरत पड़ती है। गोली जब निशाने पर जाकर लगती है तब गरमी पैदा होती है। कोयला जलने से अंजन का पहिया घूमता है अर्थात् गर्मी के बदले गति उत्पन्न हुई। फिर अंजन से बिजली की मशीन डाएनामो चला कर बिजली बनाते हैं अगर कोयला या तेल जलावें तो रोशनी पैदा होती है एक तरह की शक्ति दूसरी तरह की शक्ति में बदल जा सकती है पर पहिली शक्ति के तत्व में मौजूद होने ही से ऐसा होता है अगर पहिया पटरी पर न घूमता तो रगड़ या गरमी न होती अगर 'कोयला' न होता तो रोशनी कैसे होती? इस लिए तत्व ही मध्यस्थ हैं।

ईथर एक तरह की शक्ति को दूसरे रूप में नहीं ला सकता।

तत्वों को तो एक शक्ति का दूसरे रूप में ले जाने की शक्ति है पर ईथर एक तरह की शक्ति को दूसरे रूप में नहीं बदल सकता। कोयला आक्सिजन के साथ मिल कर गरमी पैदा कर सकता है। अर्थात् कोयले और आक्सिजन में जो रासायनिक

मिश्रण की शक्ति थी वह बदल कर गर्म्मी हो सकती है। इसी तरह अंजन के चलने से हिलने डोलने की शक्ति बदल कर बिजली बन सकती है। पर ईथर में यह गुण नहीं। अगर रोशनी की एक क्रिया कहीं जा रही है तो सदा वह उसी तरह चली जायगी। वह बदल कर बिजली वगैरह नहीं बन सकती। अगर कोई चीज ईथर में चक्कर लगाया करे तो वह सदा चक्कर ही मारा करेगी।

तत्व लचीला है अर्थात् टक्कर खाने पर फिर अपनी पुरानी सूरत पर आ जाता है।

कसी पदार्थ के लचकदार होने की जांच यह देखने से हो सकती है कि उस के भीतर से लहर किस तेज़ी से आगे बढ़ सकती है। जैसे अगर यह मालूम करना हो कि हवा में कितनी लचक है तो उस में शब्द की लहरों की तेज़ी को देखते हैं कि हवा में आवाज़ कितनी तेज़ी से आगे बढ़ती है। अगर हवा गरम कर दें तो शब्द की गति बढ़ जाती है और उसकी लचक भी बढ़ जाती है। अगर किसी चीज़ को जिस की एक या दोनों छोर कसी हुई हो पकड़ कर खींचे तो वह हिलने लगती है। जैसे यदि बीन के तार को खींचें तो तार बराबर इधर उधर आने जाने लगता है। अगर लोहे की चिमटी के एक छड़ को खींचें तो वह आगे पीछे हिलता या लहर मारता है। जितनी छोटी चिमटी होती है उतने ही अधिक बार वह एक तरफ से दूसरी तरफ आती जाती है और उस में से एक तरह की भन भन की आवाज़ निकलती है। अगर चिमटी इतनी छोटी है कि उसे जेब में रख सकते हैं तो १ सेकेंड में वह ५०० बार एक तरफ से दूसरी तरफ़ आवे और जायगी। अगर चिमटी तत्वों के अणु की नाप की अर्थात् १ इञ्च का ५ "करोड़वां हिस्सा हो तो एक सेकेंड में वह ३००० करोड़ बेर इधर से उधर लहर मारेगी पर तत्व तो ईथर के बने हैं इस लिए तत्वों के अणु तो झटका या टक्कर खा कर इस से कहीं ज्यादा तेज़ लहर मारेंगे अर्थात् एक सेकेंड में वे ४००,००००००,०००००० बार ऊपर से नीचे या पीछे से आगे आवेंगे और जायँगे। अगर अणु की गोलाई एक इञ्च का पांच करोड़ वां हिस्सा है और अगर इतनी बड़ी चिमटी अणु की गोलाई की आधी दूरी तक लहर मारे (जिस तरह झूला कुछ दूर जाकर लौटता है) तो इसकी चाल एक सेकेंड में ८० मील होगी यानी मामूली गोली की चाल से १५० गुना अधिक तेज़। यह निश्चय है कि तत्वों के अणु में इतनी गति होती हैं। अतः इस तरह हिलोरें मारने से जो लहरें ईथर में बनती हैं उनकी लंबाई नापी जा सकती है। अगर कोई चिमटी एक सेकेंड में ५०० बार लहरें मारती है और हवा में उसकी आवाज़ ११०० फीट प्रति सेकेंड जाती हैं तो उन लहरों की लंबाई ११०० को पांच सौ से भाग देने से निकलती है या इन लहरों की लंबाई २०२ फीट है। इसी तरह अगर लहरों की लंबाई और लहरों की गति मालूम हो तो के बार वह चीज़ लहराई इस का पता लग सकता है। रोशनी की लहरें १८६००० मील एक सेकेंड में ते करती हैं और रोशनी की लहरों की लंबाई करीब १ इञ्च के ४००० वें भाग के बराबर होती है इस से पता लगा कि लहर

$$\frac{186000 \times 5280 \times 12}{\frac{1}{40,000}}$$ अर्थात्

४००,०००,०००,०००,००० बार पैदा हुई। इस से यह सिद्ध हुआ कि तत्वों के अणु अपना आकार इतनी बार एक सेकेंड में बदलते हैं और इतनी बार फिर अपनी पुरानी सूरत धारण करते हैं। इस रूप के बदलने और फिर पुराना रूप धारण करने में जो वेग पैदा होता है उसी का नाम गरमी है।

ईथर लचीला है।

टक्कर वगैरह लगने पर ईथर का रूप बदल जाता है पर फिर कुछ काल के पीछे ये तत्व पुराना रूप धारण कर लेते हैं। ईथर का तो कोई रूप ही नहीं तो फिर इसकी शकल कैसे बन बिगड़ सकती है? इसे लचदार क्यों कर कह सकते हैं यह समझ में नहीं आता। पर यह देखा गया है कि रोशनी की लहरें इस में सदा १८६००० मील प्रति सेकेंड के हिसाब से आगे बढ़ती हैं। सूर्य्य के पास के पुच्छल तारे एक सेकेण्ड में ४०० मील चलते हैं। इनसे ज्यादा तेज चलने वाला तत्व अभी तक नहीं देख पड़ा है। हवा में आवाज की तेज़ी से अगर रोशनी की तेज़ी मिलावें तो रोशनी ९ लाख गुणा तेज ईथर से चलती है। आवाज की तेज़ी तो हवा की लचक पर निर्भर है। इसी तरह रोशनी की तेज़ी यदि ईथर की लचक पर निर्भर है तो Ether ईथर की लचक सामान्य नहीं। अतः इसे लचक ही कहना चाहिए या और कुछ यह नहीं समझ पड़ता।

यह ऊपर लिख आए हैं कि एक तत्व दूसरे तत्व को खींचता है। धरती मनुष्यों को अपनी ओर खींचती है। सूर्य्य धरती को अपनी ओर खींचता है। इसी खींच खिंचाव की वजह से धरती और सूर्य्य सदा अपने पुराने मार्ग पर बराबर चले जाते हैं। अगर इस खींच खिंचाव में कुछ भी अन्तर पड़ जाता तो पुराना रास्ता कभी न बना रहता। ईथर के द्वारा ही यह खींच खिंचाव हो सकता है। जैसे एक गाड़ी को दूर से कोई आदमी खड़ा होकर रस्सी के सहारे से खींचे उसी तरह ईथर की मदद से एक नक्षत्र दूसरे नक्षत्र को खींचता है। यह भी निश्चित है कि खिंचाव को एक छोर से दूसरे छोर तक पहुंचाने में कुछ देर लगती है। यदि यह आकर्षण शक्ति सेकेण्ड में १८६०० करोड़ मील से कम तेज़ी से आगे बढ़ती तो इन नक्षत्रों और ग्रहों के मार्ग में अन्तर पड़ जाता। पर यह शक्ति ईथर ही के बीच से हो कर जाती है इस लिए ईथर की लचक बहुत ही ज्यादा होगी पर। इसे लचक कहना ही भूल है क्योंकि लचक होने से तो रूप का परिवर्तन होता है।

तत्व सब एक प्रकार के नहीं होते। कोई ज्यादा ठस कोई कम ठस होता है॥

औक्सिजन ग्यास के अणु हाईड्रोजन के अणु से १६ गुने ज्यादा भारी होते हैं। सोना लोहे से भारी होता है। इसी तरह सब तत्वों के अणु कम बेश भारी होते हैं। इससे यह जान पड़ता है कि उन की बनावट भिन्न भिन्न है। जैसे धूएँ के भंवर बड़ी छोटी होती हैं कोई ज्यादा तेज़ी से कोई कम तेज़ी से चक्कर मारती हैं। किसी में कम धुआं किसी में ज्यादा धुआं होता है। इसी तरह तत्व भी शायद एक सम नहीं हैं। दूसरी बात यह है कि अगर थोड़ी सी हवा को दबा कर पहिले से

आधी जगह में बन्द कर दें तो उस का घनत्व दूना हो जायगा। लोहे को गर्म्म करके पीटने से उस के अणु एक दूसरे से ज्यादा निकट हो जाते हैं और लोहा ज्यादा ठस हो जाता है। इससे यह विदित है कि पहिले से इन अणुओं के बीच कुछ अन्तर वर्तमान है।

ईथर में भी घनत्व होती है।

घनत्व तो तत्त्वों में होता है, जिनके अणुओं के बीच अन्तर रहता है। ईथर तो सर्वव्यापक है। अतः ईथर के लिए घनत्वशब्द का प्रयोग निरर्थक है। पर किया क्या जाय यही नाम पड़ गया है। अगर किसी तत्त्व का घनत्व मालूम करना है तो उस की लचक और उस में किसी प्रकार की लहर की तेज़ी का हिसाब लगाते हैं और तब उसके घनत्व का पता लग जाता है ईथर का घनत्व रोशनी की तेज़ी जान कर निकाला गया है। इस का घनत्व उतना है जितना २१० मील ऊपर की हवा का है, जहां हवा के अणु इतने कम हैं कि एक अणु और दूसरे अणु के बीच ६ करोड़ मील का फासला पड़ता है। मामूली हवा जो हमें मिलती है उसके अणु एक दूसरे से एक इञ्च के २१ लाखवें हिस्से की दूरी पर हैं। इसी से यह अनुमान कर लेना चाहिए कि ईथर का घनत्व कितना कम है। एक प्रकार से तो इसे घनत्व कहना ही भूल है।

तत्त्वों को गर्म्म कर सकते हैं।

पहिले लोगों का विश्वास था कि गरमी एक तरह का तत्त्व है जिस की तौल नहीं हो सकती। पर जब Joule जूल और Mayer मेयर साहबों ने यह दिखलाया कि इतना काम करने से इतनी गरमी पैदा होती है तब यह बात मानी जाने लगी कि गर्म्मी भी एक लहर की गति है। ऊपर यह लिख आए हैं कि तत्त्वों के अणु आपस में टक्कर खाकर अपनी शकल बदल देते हैं। इस अदल बदल के वेग का नाम गरमी है। जब गोली बन्दूक से छूट कर निशाने पर लगती है तब रुक जाती है और उसकी आगे बढ़ने की शक्ति अब बदल कर दूसरी शक्ति हो जाती है अर्थात् उस गोली के अन्दर के अणु झकाझक ज्यादा टकराने लगते हैं और ऐसा होने से गरमी प्रगट होती है। शीशे का टुकड़ा हवा में फेंके जाने से नहीं टूटता पर यदि उसे ठेस लगे तो सीध पर जाने की शक्ति के बदले उसके अणुओं में लड़ने की शक्ति बढ़ जाती है और इस झनझनाहट से शीशा टूट जाता है।

ईथर को गर्म्म नहीं कर सकते।

सीध पर जाने की शक्ति को ईथर नहीं रोकता। यदि कोई चीज़ ईथर में आगे की तरफ ही सदा बढ़ती जाय तो ईथर उसे कभी नहीं रोकेगा। इसी से पृथ्वी आदि की चाल में भेद नहीं पड़ता पर यदि कोई चीज़ आगे बढ़ कर फिर पीछे लौटती है फिर आगे बढ़ती है और फिर लौटती है अर्थात् खेत की लम्बी घास की तरह हिलोरें या लहरें मारती है तो ईथर इस आवागमन की शक्ति का कुछ भाग ले लेता है जिससे उस चीज़ का लहराना धीरे धीरे कम हो जाता है और उसके बदले ईथर में लहर पैदा हो जाती है। ईथर की ये लहरें सेकेंड में १८६००० मील आगे बढ़ती हैं। ये लहरें गरमी की लहरें नहीं पर गरमी से उत्पन्न लहरें हैं। गरमी की लहर तो उस तत्त्व में पैदा होती है जो लहर मारता है अतः यह

सिद्ध हुआ कि ईथर गरम नहीं हो सकता क्योंकि गरमी की लहरों को बदल कर यह प्रकाश की लहरें बनाता है।

तत्वों का नाश नहीं हो सकता।

हमें यही मालूम है कि आज तक तत्वों का विनाश मनुष्यों को ज्ञात नहीं हुआ है। पानी जम कर बर्फ हो जाय, गरम होकर भाप हो जाय पर उस में तत्व उतना ही रहता है। रसायन शास्त्र के जानने वालों का विचार था कि एक धातु से दूसरी धातु बना सकते हैं और दूर दूर के हिरण्यगर्भो वा ज्योतिपिंडों (Nebula) में ऐसा बराबर हो रहा है। यह भी हाल में देखा गया है कि एक लिथियम धातु Lithium से तांबा बन जाता है और रेडियम बराबर बदलता रहता है। यदि एक तत्व से दूसरा तत्व बन सकता है तो सम्भव है कि इसी तरह नए नए तत्व ईथर से बन रहे हो। तत्वों के अणु इतने छोटे हैं कि उनका तोलना असंभव है। हाँ ऐसे यंत्र बनाए गए हैं जिससे रोशनी की किरण घूम कर घड़ी की कमानी की तरह भीतर की ओर कुंडल मारती हुई बढ़ती जाती है। इस लहर के दोनों छोर किसी रीति से मिला दिए जांय जैसे सांप का मुंह और दुम तो वह भँवर के रूप में हो जायगी और भीतर की ओर चक्कर मारेगी। यदि तत्व सचमुच इसी तरह के भंवर से बने हैं तो स्पष्ट है कि यदि भंवर किसी तरह टूट जांय तो तत्व भी नष्ट हो जायगा पर उस अन्दर में की ओर हर्कत करने की जो शक्ति है वह कहीं न कहीं ईथर में दूसरे रूप में प्रगट होगी। पर हम इतना कह सकते हैं कि अभी तक हम को कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिला जहां किसी तत्व का नाश हुआ हो। ईथर का भी इसी तरह नाश नहीं होता। और यह लहर ईथर की लहर है। अगर १ सेकेंड में चिमटी ५०० बार झनाती है तो लहर ३७२ मील लंबी होगी क्योंकि ५०० लहरें १ सेकेंड में १८६००० मील छेकती हैं। अगर वही चिमटी छोटी हो जाय तो यह और तेज़ झनायगी और इससे लहर और भी छोटी होगी। जब यह चिमटी अणु के बराबर छोटी हो जाय तो एक सेकेंड में करोड़ों बार झनायगी जिस से ईथर की लहर बहुत ही छोटी हो जायगी। जब यह लहर १ इञ्च का ३३००० वां हिस्सा लंबी होती है या यदि ३३००० लहरें १ इञ्च में समा जांय तो ऐसी लहर से लाल रोशनी बनती है। अगर इस से भी छोटी लहर हो तो नीली रोशनी पैदा होती है। तत्वों के अणु के दोनों कोने एक सम नहीं या सब तत्व Magnetic या चमकम की तरह के होते हैं। आपस में टक्कर खाकर इन की शकल जब बदलती है तो इन के दोनों कोने ज्यादा पास पास हो जाते हैं और फिर पहिली सूरत पर आ जाते हैं। यह अदल बदल करोड़ों बार एक सेकेंड में होता रहता है जिस से Magnetic क्षेत्र बराबर बदलता रहता है और ईथर में जो लहरें पैदा है वे बहुत ही छोटी होती हैं और इस तरह अणु के सूरत की अदल बदल से यह रोशनी की लहर पैदा होती है।

तत्वों की कई हालत होती है। एक तत्व ठस, पनीली और हवा की सूरत में हो सकता है। जैसे पानी से बरफ और भाफ तैयार होती है उसी तरह हर एक तत्व इ। तीनों हालतों में

जा सकता है। पर ईथर में यह गुण नहीं होता। ईथर सर्वमय वर्तमान है और इस में कुछ भेद नहीं होता। केवल बिजली या Magnetism या गर्म्मी की वजह से इस में लहर, तनाव या भंवर पड़ सकती है।

ठस तत्व को यदि मरोड़ें तो वह मुड़ जायगा। गैस और पानी मरोड़े नहीं जा सकते। अगर किसी ठस चीज़ को मरोड़ दें तो वह उस सूरत में कुछ देर रह सकती है पर पानी या गैस इस तरह नहीं मरोड़े जा सकते वह हाथ ही में नहीं ठहर सकते जो उन को पकड़ कर घुमा सकें। ईथर को भी इसी तरह मरोड़ सकते हैं।

चक्रमक पत्थर से ईथर में ऐसा मुर्रा पड़ जाता है इसी से दूसरा चक्रमक घूम जाता है।

तत्वों के और गुण जैसे रंग, रूप, कड़ाई वगैरह ईथर में नहीं होते।

जगत का ज्ञान हमें तत्वों से होता है

हमें गर्म्मी सर्दी रोशनी आवाज़ रंग रूप वगैरह का ज्ञान क्यों कर होता है? हमारी इन्द्रियां, हमारे नाक कान यह सब ऐसे यन्त्र हैं जहां दिमाग़ या Sensorium से तार लगे होते हैं। ये तार ऐसे होते हैं कि इस के Molecule में २०००० अणु तक होते हैं। यदि ये तार टूट जायं तो फिर आंख, कान इत्यादि यन्त्र बेकार हैं। पर जगत की जितनी शक्ति है वह किसी तत्व ही में देखी गई है। ईथर में भी यह मौजूद है पर ईथर को हम नहीं देख सकते। इस से यह सिद्ध हुआ कि हम को जगत का ज्ञान कदापि न होता यदि तत्व न होते।

ईथर का असर इन Nerves या ज्ञानतन्तुओं पर नहीं पड़ता। इसी से इतने दिनों तक ईथर पर लोगों का कम ध्यान था पर दो चीज़ों के बीच खिचाव वगैरह बीच में बगैर कुछ रहे असम्भव है इसी से ईथर को लोगों ने माना है। ईथर में और तत्वों के गुण में बड़ा भेद है जैसा कि हम ऊपर दिखला चुके हैं ईथर में एक बड़ा गुण यह है कि वह बहुत तनाव को संभाल सकता है। धरती और चन्द्रमा एक दूसरे को इतने ज़ोर से खींचते हैं कि यदि इन दोनों को लोहे के १० नंबर के तार से बराबर ½ मुरब्बा इञ्च की दूरी पर एक तार रख कर कसें तो ऐसे करोड़ों मोटे तार को भी इतनी सहन नहीं कि इस झटके को सहन कर सकें। सब तार तनाव से टूट जायंगे जिस तरह रस्सी के नीचे लगे बोझ को बराबर बढ़ाने से रस्सी अन्त में टूट जाती है। पर ईथर में इतनी सहन है कि धरती और चन्द्रमा का खिंचाव क्या, सारे जगत के तनाव को यह बिना टूटे हुए संभाल लेता है। इसी तरह इस में जो मुर्रा बिजली या चक्रमक से पड़ती है उसे भी यह बिना टूटे सह लेता है। इस से यह सिद्ध हुआ कि ईथर में बड़ी शक्ति भरी हुई है और यह शक्ति का खज़ाना है। इस की जांच करने से ऐसा मालूम पड़ता है कि यदि हम इस शक्ति को किसी तरह अपने काम में ला सकें तो १ इञ्च लम्बे १ इञ्च चौड़े १ इञ्च गहरे स्थान से ५०० घोड़ों का अञ्जन चल सकता है। मनुष्य इस शक्ति को किसी न किसी दिन अपने काम में ला सकेगा. यह बात असंभव नहीं

बिजली क्या है।

संसार, तत्व ईथर और शक्ति से बना है। संसार की कुल क्रिया इन्हीं के उलट पलट से होती है तत्व और ईथर का हाल तो ऊपर लिख चुके हैं। शक्ति बहुत तरह की होती है। यह केवल तरह तरह की हरकतें हैं। किसी तत्व का आगे की ओर बढ़ना एक तरह की शक्ति है जैसे रेल गाड़ी का दौड़ना शक्ति का एक रूप है, गर्म्मी दूसरी तरह की शक्ति है। तत्वों के अणु के रूप के बदल बदल से या तत्वों के आपस में टकराने से जो हर्कत पैदा होती हैं उसी का नाम गर्म्मी है। तत्वों के अणु के दोनों कोने एक सम नहीं होते और ये कोने अणुओं के रूप के बदल बदल से कम ज्यादा दूरी पर एक दूसरे से आते जाते हैं इस से ईथर में लहर पैदा होती है और इसे रोशनी कहते हैं। पर बिजली क्या है इस का हाल ऊपर नहीं दिया है। बिजली भी एक तरह की हर्कत है, यह एक तरह की शक्ति है दूसरी तरह की हर्कत या शक्ति को बदल कर इस रूप में ला सकते हैं और फिर उस रूप को बदल कर पुराने रूप में ले जाते हैं। मनुष्यों ने एक तरह की शक्ति से दूसरे रूप की शक्ति बनाने के यन्त्र या मशीनें बनाई है जिन से बड़ा काम हुआ है। विज्ञान शास्त्र ही की महिमा से ये सब बातें मनुष्य को प्राप्त हुई हैं। अब हम यह देखेंगे कि किस तरह बिजली दूसरी शक्तियों से बन सकती है अगर एक तत्व को उसी तत्व के ऊपर रगड़ें तो एक की हरकत का कुछ भाग दूसरे में समा कर गर्म्मी के रूप में प्रगट होगा। पर यदि ये दोनों तत्व एक सम न हों तो कुछ गर्म्मी और कुछ बिजली पैदा होगी यदि शीशे के एक बेलन को शीशे की कलई के मसाले पर जो एक कपड़े पर लगा हो रगड़ें तो शीशे के बेलन में रगड़ से गर्म्मी और बिजली दोनों पैदा हो जायगी। यदि शीशे के आगे दांते दार नोकदार कंघी लगा दें और फिर कंघी के पीछे की डांड़ी में एक गोला लगा दें तो यह नोकदार कंघी तुरत इस बिजली को बटोर लेगी जिस तरह कि नोकदार लोहे की छड़ हवा से तूफान में बिजली बटोर कर धर्ती में ले जाती है और मकान पर बिजली नहीं गिरती। यह बिजली इन नोकों के जरिये से इकट्ठी होकर कोने पर गोले में आती है और यदि इस के पास कोई चीज ले जांय तो उन दोनों के बीच बिजली की चिनगारी पैदा हो जायगी। इस से यह विदित हुआ कि बिजली दो तत्वों की रगड़ से पैदा होती है।

गर्म्मी से भी बिजली पैदा होती है। दो धातुओं को जैसे रांगा और तांबे को अगर जोड़ कर वे एक साथ लगाये जांय और एक का कोना गरम किया जाय और दूसरे का कोना ठण्ढा रहे तो भी उस में से बिजली पैदा होगी। इस यन्त्र को Thermopyle थर्मोपाइल कहते हैं।

बिजली चकमक के बीच में किसी धातु के घुमाने से पैदा होती है। आज कल की बिजली बनाने की कल सब इसी तरह बनी होती है चकमक के चारों ओर तांबे के चक्कर को घुमाते हैं इस से तार में बिजली पैदा हो जाती है। जब कई पदार्थ मिल कर नया पदार्थ बनाते हैं तब भी बिजली पैदा होती है जैसे जब जसता तेजाब में गल कर Zinc Sulphate बनता है तो बिजली पैदा होती है।

ऐसी कई मछलियां हैं जो बिजली पैदा करती हैं। दूसरी बात यह है कि बिजली से दूसरी शक्ति बन सकती है। इस के उदाहरण लीजिए। बिजली से मोटर गाड़ी चलती है मोटर मशीन चलती है। बिजली से गर्मी पैदा होती है, बिजली गिरने से पेड़ झौंस जाता है, बिजली से रोशनी बनती है। बिजली की रोशनी इसी तरह बनी है। बिजली से दो पदार्थ आपुस में मिल कर अकसर नया पदार्थ बनाते हैं। बिजली की चिंगारी आक्सिजन और हाईड्रोजन में ले जाने से पानी बनता है। बिजली बदन में लगने से हाथ पैर नाचने लगता है इस से यह सिद्ध हुआ कि एक शक्ति को दूसरे रूप में लेजा सकते हैं। अगर ईथर न होता तो संसार न होता तत्व इसी के भंवर से बने हैं। शक्ति किसी न किसी तरह की लहर है जो ईथर या तत्व में पैदा होती है। ईथर क्या है यह प्रश्न इस लेख के आदि में पूछा गया है। इस का उत्तर एक मत के अनुसार यह है कि ईथर ही संसार को उत्पन्न करनेवाला है। आज कल लोगों की राय कुछ बदली है नए विचार आज कल फैल रहे हैं उस का हाल दूसरे लेख में देना उचित होगा।

महाराज हर्षवर्द्धन।

[पूर्व प्रकाशितान्तर]

ईसा की बारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में कान्यकुब्जेश्वर की राजसभा में श्रीहर्ष तथा भट्टोजीदीक्षित * दोनों विद्यमान थे। भट्टोजीदीक्षित ने संस्कृत भाषा के प्रसिद्ध व्याकरण सिद्धान्तकौमुदी और श्रीहर्ष ने देववाणी के प्रसिद्ध काव्य नैषधचरित को एकही समय में बनाया था। अतएव भट्टोजीदीक्षित के शिष्य वनमालीमिश्र ने अवश्य ईसा की तेरहवीं शताब्दी के प्रथम भाग में आने कुरुक्षेत्र-प्रदीप का संग्रह किया होगा। वनमालीमिश्र ने ग्रन्थ के आरम्भ में कृष्णदत्त के नाम से अपना परिचय दिया है—

"वामनादि पुराणेभ्य इतिहासादितस्तथा"
कुरुक्षेत्रस्य माहात्म्यसंग्रहः शिष्यसम्मतः ॥ १ ॥
कृष्णदत्तेन मिश्रेण यथाबुद्ध्यानुसारतः।
क्रियतेत्यल्पविस्तारो भूषणीयो द्विजातिभिः ॥२॥
कुरुक्षेत्र प्रदीप—

उपर्युक्त सरोवर के पूर्वोत्तर भाग में आज भी एक 'सुनेतवर' नामक छोटा सा जलाशय दिखाई पड़ता है।

सम्भव है कि ऋग्वेद में वर्णित सर्य्यनावत शब्द काल क्रम से "सुनेत" हो गया हो। सरोवर के बीचो बीच मिट्टी पड़ जाने के कारण अब यह दो पृथक् पृथक् जलाशयों में विभक्त हो गया है। काल की विचित्र महिमा है उसके प्रभाव से हिन्दुओं का यह महातीर्थ उजाड़ हो गया। कुरुक्षेत्र के ठीक बीचोबीच सरस्वती नदी के बाएं तट पर स्थानेश्वर नाम का प्रसिद्ध नगर था जो अब एक छोटा सा कसबा रह गया है। अम्बाला छावनी से २५ मील दूर और

---

* भट्टोजीदिक्षित तो जगन्नाथ पंडितराज के पीछे हुए हैं उन्हें बारहवीं शताब्दी में बतलाना बड़ी भारी भूल है। जगन्नाथ पंडितराज का शाहजहां के समय में होना प्रसिद्ध ही है-सम्पादक।

दिल्लीपति शेरशाह सूर के बनवाए प्रसिद्ध राजपथ के पश्चिम भाग में फैले हुये स्थानेश्वर के खँडहर आज भी पथिकों के हृदय में अपने अतीत गौरव और अनेक घटनाओं का स्मरण दिलाते हैं।

यूनान (ग्रीस) के विख्यात भूगोलवेत्ता टालमी ने १५० और १६० ईस्वी में अपने प्रसिद्ध भूगोल और ज्योतिष ग्रन्थ की रचना की थी। इसमें उन्हों ने स्थानेश्वर का नाम "थटनकैसर" लिखा है। भारत के प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् वाराहमिहिर ने जो कि सन् ५०४ से ५०७ ईस्वी तक उज्जयिनी में वर्त्तमान थे, अपने रचित ग्रन्थ वृहत्संहिता में स्थानेश्वर की पवित्रता का उल्लेख किया है। गजनी के प्रसिद्ध हिन्दूद्वेषी सुलतान महमूद के दरबारी अबूरिहान अलबेरूनी ने एकादश शताब्दी में वाराहमिहिर की पूर्वोक्त उक्ति को अपने भारतीय विवरण में स्थान दिया है। चीन का प्रसिद्ध यात्री ह्यूएनसाङ्ग सन् ६३६ ईस्वी में मथुरा हो कर स्थानेश्वर आया था। उस समय स्थानेश्वर कन्नौज के महाराज हर्षवर्धन के राज्य में था। ह्यूएनसाङ्ग ने इनकी राजधानी की लम्बाई चार मील और राज्य की चौड़ाई ११६० मील (८००० ली) लिखी है। इस चीनी पर्य्यटक ने धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र की चौड़ाई २० मील निर्धारित की है। प्रबल प्रतापान्वित मुगलसम्राट् अकबर बादशाह के राजत्वकाल में, कुरुक्षेत्र की चौड़ाई पहिले से दूनी समझी गई अर्थात् आईने अकबरी आदि के कर्त्ता परम नीतिज्ञ अब्बुलफ़ज़ल के मत से कुरुक्षेत्र उस समय ४० मील के घेरे में था। महाराज पुष्पभूति द्वारा स्थानेश्वर में वर्द्धन नामक बाईस क्षत्रिय राजाओं का घराना प्रतिष्ठित हुआ था। स्थाण्वीश्वर वा स्थानेश्वर का प्राचीन नाम श्रीकण्ठ था। यहां पर श्रीकण्ठ नामक एक वृहत्काय सर्प के रहने से इसका नाम स्थाण्वीश्वर के बदले श्रीकंठ होगया। महाराज पुष्पभूति बड़े भारी शैव थे। इनके गुरु का नाम भैरवाचार्य था। इन गुरु महाराज ने दक्षिण देश से आकर महाराज पुष्पभूति को तंत्रधर्म की शिक्षा दी थी। एक दिन कृष्णपक्ष की चौदस को रात्रि के समय गुरु भैरवाचार्य विद्याधरत्व प्राप्त करने की इच्छा से महाश्मशान में मन्त्र साधन करने लगे और महाराज पुष्पभूति उनकी रक्षा में नियुक्त हुए। इतनेही में अचानक वहां की ज़मीन फटी और एक बड़े भयङ्कर शरीरवाला पुरुष उसमें से निकल कर अपने को श्रीकण्ठनाग कहने लगा। यह नाग पूजा अर्चा में किसी प्रकार की त्रुटि से क्रुद्ध हो कर भैरवाचार्य और पुष्पभूति दोनो को मारने के लिए उद्यत हुआ। यह देख महाराज पुष्पभूति बड़े साहस के साथ श्रीकण्ठ से बाहुयुद्ध करने के लिए सन्नद्ध हुए और अन्त में उस नाग को बाहुयुद्ध में पराजित किया। नागराज के पराजय से प्रसन्न हो कर लक्ष्मीदेवी ने राजा के गुरु भैरवाचार्य्य को विद्याधरत्व प्रदान किया और महाराज पुष्पभूति के वंश में हर्ष नामक चक्रवर्ती सम्राट के होने का वर दिया।

महाराज हर्षवर्धन के सभासद संस्कृत भाषा के प्रधान गद्य लेखक कादम्बरीकार बाणभट्ट ने अपने "हर्षचरित्" में उपर्य्युक्त आख्यायिका का वर्णन किया है। पुष्पभूति के महान् वंश में महाराज नरवर्धन ने जन्म ग्रहण किया।' नरवर्धन और उनके वंशधर लोग सूर्यदेव के उपासक थे। वज्रिणीदेवी के गर्भ से नरवर्धन का जन्म हुआ।

महाराज राज्यवर्धन की राजमहिषी का नाम अप्सरादेवी था। राज्यवर्धन को आदित्यवर्धन नामक पुत्र हुआ। आदित्यवर्धन ने मगधराज दामोदरगुप्त की कन्या महासेनगुप्ता से पाणिग्रहण किया। दामोदरगुप्त की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र महासेनगुप्त मगध के राजसिंहासन पर बैठा। महासेनगुप्ता के उदर से आदित्यवर्धन के पुत्र प्रभाकरवर्धन का जन्म हुआ। प्रभाकरवर्धन की रानी का नाम यशोमतीदेवी था। इस यशोमती के गर्भ से महाराज प्रभाकरवर्धन को दो पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। इन दोनो पुत्रों में राज्यवर्धन बड़े और हर्षवर्धन छोटे थे। इनकी बहिन राज्यश्री का विवाह कन्नौज के राजकुमार ग्रहवर्म्मन के साथ हुआ। प्रभाकरवर्धन उनकी पत्नी और सन्तति के नाम बाणभट्ट रचित हर्षचरित में मिलते हैं प्रभाकरवर्धन को हर्षचरित में सूर्यदेव का उपासक लिखा है किन्तु प्रभाकरवर्धन के पहिले के तीन राजाओं के नाम हर्षचरित में नहीं मिलते। महाराज प्रभाकरवर्धन के समय में स्थानेश्वर साम्राज्य का अधिकार चारो ओर फैल गया था। हर्षचरित के अनुसार प्रभाकरवर्धन ने हूण गान्धार, सिन्धु, लाट गुर्जर और मालव देश के नरपतियों को रण में पराजित कर के अपना प्रभुत्व बढ़ाया था। लाट और गुर्जर नरेश के पराजय से प्रभाकरवर्धन का आधिपत्य सिन्ध भरौच और राजपुताने तक कुछ काल के लिये फैल गया। चीनी यात्री हुयांसाग का भ्रमण वृत्तान्त देख कर कनिङ्घाम साहब ने अनुमान किया है कि पञ्जाब के दक्षिणी भाग से लेकर राजपूताने का पूर्व भाग तक स्थानेश्वर राज्य के अन्तर्गत था। हुयांसांङ ने सन् ६३५ ई० में स्थानेश्वर की चौड़ाई ११६७ मील लिखी है।

बाणभट्टके हर्ष चरित के देखने से यह स्पष्ट मालूम होता है कि पूर्वकथित देशों के नरपतिगण पूर्ण रूप से प्रभाकरवर्धन के अधीन और करद नहीं हुए थे। मरने के थोड़े दिन पहिले प्रभाकरवर्धन ने अपने सब से बड़े बेटे राज्यवर्धन को हूण जाति का विद्रोह दमन करने के लिए उत्तर की ओर भेजा।

यह ख़बर सुनकर राजा हर्षवधन भी सेना सहित अपने बड़े भाई के साथ साथ हिमालय पर्वत के नीचे तक आए। यहां अपने बड़े भाई को विदा कर हर्षवर्धन कुछ समय तक आखेट के हेतु इस पहाड़ी प्रदेश में ठहर गए। इसी समय वर्धन कुरङ्गक नामक एक राजदूत स्थानेश्वर से हर्षवर्धन के पास आ पहुंचा। उसके मुख से अपने पिता के प्रबल ज्वरदाह का वृत्तान्त सुनकर हर्षवर्धन ने यह अशुभ सम्वाद अपने बड़े भाई के पास भेजा और बड़ी शीघ्रता पूर्वक राजधानी स्थानेश्वर की ओर प्रस्थान किया। इनके लौट आने पर महाराज प्रभाकरवर्धन ने अपना शरीर परित्याग किया। हर्षवर्धन की माता ने पति—वियोग होने के पहिले ही अग्नि प्रवेश करके अपना प्राण त्याग दिया था। एक साथ ही माता और पिता दोनों का वियोग होने से हर्षवर्धन अत्यन्त शोकाकुल हो उठे और अपने बड़े भाई के लौटने की प्रतीक्षा करते हुए अत्यन्त विकल चित्त किसी प्रकार दिन बिताने लगे।

प्रभाकरवर्धन के मरने की खबर फैलते ही मालवराज देवगुप्त स्वाधीन हो विद्रोही बन बैठा

और झट कान्यकुब्ज पर आक्रमण करके उसने मौखरी वर्म्मन वंशीय राजा ग्रहवर्म्मन को मार-डाला। मालवपति ने कान्यकुब्जेश्वर की महिषी राज्यश्री को कैद करके बलपूर्वक कान्यकुब्ज का राज सिंहासन अधिकृत करलिया और विजयोल्लास से उन्मत्त होकर वह स्थानेश्वर पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगा* ।

राजमहिषी राज्यश्री ने यह सब समाचार स्थानेश्वर भेजा। दूतों के द्वारा यह वृत्तान्त सुन कर शोकविह्वल राज्यवर्धन ने झट बड़ी भारी सेना लेकर मालवराज के विरुद्ध कान्यकुब्ज की ओर प्रस्थान किया। मालवराज देवगुप्त इस रण में राज्यवर्धन द्वारा पराजित होकर मारे गए। मालव राज के मित्र गौड़ेश्वर नरेन्द्रगुप्त ने इसका बदला लेने के लिए एक अत्यन्त घृणित उपाय का अवलम्बन किया अर्थात् मित्र बन कर किसी प्रकार राज्य वर्धन के शिविर में प्रवेश करके बड़ी कायरता के साथ धोखे से उन्हें मार डाला। इस प्रकार गीदड़पन और विश्वासघात से राज्यवर्धन को मार कर मालवराज की मृत्यु का बदला चुकाते हुए गौड़ेश्वर ने चुपके से अपने घर का रास्ता लिया। इधर महाराज हर्षवर्धन अपने बड़े भाई राज्यवर्धन के मरने का दुखद समाचार सुनकर शोक से अत्यन्त सन्तप्त हुए और बिना विलम्ब किए उन्हों ने गौड़ की ओर प्रस्थान कर दिया। रास्ते में राज्यवर्धन का अत्यन्त विश्वासपात्र सहचर भाण्डी सेना सहित हर्षवर्धन से मिला और मालव देश की लूट का सब माल उनके सामने भेंट किया। राजमाता यशोमती का भतीजा भाण्डी लड़कपन (आठ वर्ष की अवस्था) से राज्यवर्धन और हर्षवर्धन के साथ पला था इस से दोनों में अत्यन्त गाढ़ मैत्री थी। भाण्डी के अतिरिक्त वैद्यपुत्र रसायन माधवगुप्त और कुमारगुप्त ये सब लोग दोनों राजकुमारों के प्रधान सखाओं में से थे जो कि हर्षचरित के देखने से मालूम होता है।

हर्षवर्द्धन ने भाण्डी से गौड़ाधिप के भागने का विवरण सुन कर उसको गौड़ेश्वर का पीछा करने की आज्ञा दी और आप अपनी बहिन की खोज में विन्ध्यारण्य की ओर पयान किया क्योंकि इन्हें भाण्डी से अपनी बहिन राज्यश्री के विन्ध्यारण्य में भागने का समाचार मिल चुका था। यहां पहुंच कर हर्षवर्द्धन ने बौद्ध यती दिवाकर मित्र के यहां डेरा किया। यहां रहते हुए हर्षवर्द्धन को एक रूपवती स्त्री के सती होने का समाचार मिला जिससे वह अत्यन्त उद्विग्न होकर वहां गया। वहां अपनी बहिन राज्यश्री को चितारोहण करते देख कर उसने बड़े प्रयत्न से उसको मृत्यु के मुख से निकाला और दिवाकर मित्र के आश्रम में लाकर रक्खा। इस बौद्ध यती ने अपने को राज्यश्री के पति ग्रह-वर्म्मा का अन्तरङ्ग मित्र बतलाया। राज्यश्री ने हर्षवर्द्धन के साथ पुनः लौट कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना स्वीकार न किया। इस से वह उसी बौद्ध यती के आश्रम में योगिनी का वेश धारण कर एकाग्र चित्त हो रहने लगी और हर्षवर्द्धन यहां से लौट कर गङ्गा के निकट अपनी सेना में आ सम्मि-लित हुआ।

* बाणभट्ट ने हर्षचरित में मालवराज का नाम नहीं। लिखा है। किन्तु भट्टारक हर्षवर्धन प्रदत्त मधुबन की शासन लिपि में देवगुप्त का नाम मिलता है आगे चल कर इस ताम्र पत्र का विवरण दिया जायगा।

विन्ध्यारण्य में बहिन राज्यश्री के साथ भेंट करने के बाद "हर्षचरित" समाप्त होता है। इस के सप्तम उच्छ्वास में प्राग्ज्योतिषपुर (वर्त्तमान गौहाटी) के राजकुमार भास्करवर्म्मा के पराजय का वृत्तान्त दिया हुआ है। बाणभट्ट के "हर्षचरित" में समसामयिक विवरण लिपिबद्ध होने के कारण इसका ऐतिहासिक महत्त्व बहुत कुछ बढ़ गया है। हर्षवर्द्धन द्वारा प्रदत्त ताम्रपत्र एवं प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्विएयानसाङ्ग के भ्रमण वृत्तान्तों से "हर्ष चरित" में दिए हुए विवरण के सत्यासत्य का निःसंदिग्ध निर्णय हो जाता है। "हर्षचरित" एक अपूर्ण ग्रन्थ है। इससे इस में हर्षवर्द्धन की विस्तृत जीवनी नहीं मिलती। केवल हर्षवर्द्धन के राजत्व काल के आरम्भ तक वर्णन पाया जाता है।

यही हर्षवर्द्धन वर्द्धनवंश का सर्वप्रधान नरपति था जिसकी कि असम्पूर्ण जीवनी बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित में लिखी है। अपने राज्य के प्रारम्भ काल से महाराज हर्षवर्द्धन ने जो "अब्द" (वर्ष) प्रचलित किया था वह उत्तर भारत के भिन्न भिन्न प्रदेशों में "हर्षाब्द" नाम से प्रसिद्ध हुआ। ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में अबूरिहान अलबरूनी ने इस "हर्षाब्द" का उत्तर भारत में व्यवहार होना देखा था। सन् ६०६ ई० में हर्षवर्द्धन ने स्थानेश्वर का राज्यसिंहासन अधिकृत किया, किन्तु ग्रहवर्म्मा की मृत्यु के पश्चात् राजधानी स्थानेश्वर से कान्यकुब्ज लाई गई।

स्थानेश्वर का शासनभार प्रादेशिक शासनकर्त्ता के हाथ सौंपा गया। समस्त आर्यावर्त्त में महाराज हर्षवर्द्धन के आधिपत्य का डङ्का बजने लगा। ठकुरी वंश के स्थापक महाराज अंशुवर्म्मा हर्षवर्द्धन के करद रूप में नेपाल के शासक नियुक्त हुए। इसीसे ठकुरीवंश के प्रतिष्ठाता के साथही साथ नेपाल में गुप्ताब्द के बदले हर्षाब्द प्रचलित हो गया।

सन् ६०६ ई० में हर्षवर्द्धन सम्राट् पद पर अभिषिक्त हुए। इनके बड़े भाई राज्यवर्धन ने कुछ ही महीने तक नाम मात्र के लिए राजत्व किया था, इससे अनुमान होता है कि सन् ६०५ ई० में महाराज प्रभाकरवर्द्धन का राजत्व काल समाप्त हुआ होगा। प्रभाकरवर्द्धन के समय तक कान्यकुब्ज स्थानेश्वर के अधीन नहीं हुआ था वरन् अवन्तीवर्म्मन् और ग्रहवर्म्मन स्वाधीनता पूर्वक कान्यकुब्ज का राजत्व करते थे जो कि बाणभट्ट के हर्षचरित देखने से मालूम होता है। हर्षचरित में यह स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है कि जिस समय स्थानेश्वर में वर्द्धनवंश राजत्व कर रहा था उसी समय कान्यकुब्ज में मौखरी वंश स्वाधीन रूपेण शासन करता था।

महाराज हर्षवर्द्धन ही ने स्थानेश्वर और कान्यकुब्ज के शासनदण्ड को सम्मिलित कर के अपने भावी साम्राज्य का सूत्रपात किया था। लासेन (Lassan) के मत से ५८० ईस्वी से कान्यकुब्ज में वर्द्धनवंश का राजत्व आरम्भ होता है।

हर्षवर्द्धन से और इन के वृद्ध प्रपितामह नरवर्धन में तीन पीढ़ी का अन्तर है। नरवर्द्धन से हर्षवर्द्धन तक की वंशावली मधुवन के ताम्रपत्र में पाई जाती है। पांच पुरुषों के लिए एक सौ वर्ष का समय रख लेने से अनुमान द्वारा वर्द्धनराजवंश का समय निश्चित हो सकता है

(स्थानेश्वर)		(कान्यकुब्ज)
नरवर्द्धन	(५२५–४५ ई०)	ईशानवर्मन
(१) राज्यवर्द्धन	(५४५–६५ ई०)	सर्ववर्मन
आदित्यवर्द्धन	(५५५–८५ ई०)	सुस्थितवर्म्मन
प्रभाकरवर्द्धन	(५८५–६०५ ई०)	अवन्तिवर्म्मन

(२) राज्यवर्द्धन हर्षवर्द्धन राज्यश्री + ग्रहवर्मन
(६०६–५० ई०) (६०५ ई०)

सन् १८८८ ई० के जनवरी महीने में एक किसान को खेत जोतते हुए मधुबन नामक गांव में एक तांबे का दानपत्र मिला था। यह मधुबन गांव आजमगढ़ जिले के नत्थूपुर पर्गने में है। आजमगढ़ ज़िले में होने पर भी यह गांव आजमगढ़ नगर से पूर्वोत्तर ३२ मील पर है। आजमगढ़ के कलक्टर द्वारा इस ताम्रपत्र को पाकर प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डाक्टर फुहरर ने इसे लखनऊ के म्यूज़ियम में भेजा था। इस ताम्रपत्र का परिमाण २०¼×१३¾ इञ्च है। हर्षवर्द्धन के राजत्व के २५ वें वर्ष (६३१ ई०) में गुर्ज्जर द्वारा यह ताम्रपत्र निर्मित हुआ था और कपित्थिका के शिविर से पूस महीने कृष्णपक्ष को छट को सामन्त महाराज ईश्वरगुप्त की आज्ञा से खोदा गया था। यह ईश्वरगुप्त महाराज हर्षवर्द्धन के राजकीय शासन पत्रादिकों की रक्षकता के कार्य पर नियुक्त थे। इस ताम्रपत्र में 'महाक्षपटलाधिकरणाधिकृतत' के नाम से इनका उल्लेख हुआ है। इस में "महाप्रमातृ" और "महासामन्त स्कन्धगुप्त को इस दानपत्र के अनुसार दोनो दान ग्रहण करने वालों को अधिकार दिलाने की आज्ञा हुई है, रामरथ्य नामक कोई ब्राह्मण कूट (जाली) दानपत्र बना कर उसके द्वारा श्रावस्ति भुक्ति (प्रदेश) के कुण्डधानी विषयान्तर्गत (पर्गनान्तर्गत) सोमकुण्डिका नामक गांव को धोखा देकर उपभोग कर रहा था जिस को कि महाराज हर्षवर्द्धन ने उस वञ्चक ब्राह्मण से ग्रहण कर के अपने परलोकगत माता पिता तथा जेष्ट भ्राताओंके स्वर्गप्राप्तत्यर्थ सावर्णो गोत्रज सामवेदीय भट्टवातस्वामी एवं विष्णुवृद्धगोत्रीय ऋगवेदी भट्ट शिवदेव स्वामी को उपभोग करने के लिये निष्कर प्रदान किया।

पूर्वोक्त स्कन्धगुप्त को "हर्षचरित" में राज्यवर्द्धन के हस्तिशाला का अध्यक्ष होना लिखा है। राज्यवर्द्धन के मरने पर इन्होंने हर्षवर्द्धन को उपदेश दिया था उस से इन की प्रवीणता और जन साधारण के चरित्र ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है।*

इस दानपत्र में हर्षवर्द्धन ने अपने को "परममाहेश्वर" होना लिखा है जिस से मालूम होता है कि सन् ६३१ ई० तक हर्षवर्द्धन शैव ही थे, राज्यवर्द्धन परोपकारी "परमसौगत" (बौद्ध) थे। राज्यवर्द्धन बौद्ध और हर्षवर्द्धन शैव थे किन्तु इन लोगों के पिता प्रभाकरवर्द्धन सौर उपासक थे।

यह सब वृत्तान्त दानपत्र में स्पष्ट रूप से दिया हुआ है। सोनपत वाली मोहर के सिरे पर दी हुई नन्दी की मूर्ति देखने से हर्षवर्द्धन की शिवभक्ति का और भी प्रमाण मिलता है।

---

* प्रसिद्ध चीनीयात्री हुयनसाङ्ग ने हर्षवर्धन को राज्यरोहण के समय से ही बौद्ध धर्मावलम्बी होना लिखा है। कहते हैं कि गद्दी पर बैठने के समय किसी बोधिसत्व ने हर्षवर्धन के सम्मुख प्रगट होकर उन्हें कुमार उपाधि से विभूषित किया था। Epigraphia Indica.

महाराज हर्षवर्द्ध एक अत्यन्त उद्भट कवि थे इन के बनाए हुए ३ श्लोक इस ताम्रपत्र में मिलते हैं। इन की रचित कविताओं में भ्रातृभक्ति की पराकाष्टा का अच्छा आभास पाया जाता है, जो महापुरुष कि ऐसा प्रतिभाशाली कवि था उस के लिये बिना किसी की सहायता संस्कृत भाषा के रस स्वरूप पाटिक मय "रत्नावली" "नागानन्द" तथा "प्रियदर्शिका" आदि नाटक नाटिकाओं का रचना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

नैपाल में भी शिलालिपियों पर महाराज जयदेव और प्रतापमल्ल की कविताएं खुदी हुई देखी गई हैं। इस लिए हर्षवर्द्धन रचित "रत्नावली नाटिका" को इनके सभासद धावक किम्बा राजपण्डित बाणभट्ट की बनाई हुई मानने के लिए हम किसी तरह पर तैय्यार नहीं हैं। अपने ज्येष्ठ भ्राता राज्यवर्धन के परलोकवास होने के ६४ वर्ष बाद महाराज हर्षवर्द्धन ने अत्यन्त कातर हृदय से बड़े भाई राज्यवर्द्धन के मरण वृतान्त को शार्दूलविक्रीड़ित छन्दों में इस प्रकार वर्णन किया है—

"राजानो युधिदुष्टवाजिनइव श्रीदेवगुप्तादयः।
कृत्वा येन कशाप्रहारविमुखाः सर्वेसमंसंयताः॥
उत्खायद्विषतो विजित्य वसुधां कृत्वाप्रजानां प्रियम्।
प्राणाऽनुज्झितवानरातिभवने सत्यानुरोधे वयः॥

अर्थात् जिसने कि समर में श्रीदेवगुप्तादि सब राजाओं को जैसे कि बिगड़ैल घोड़े को चाबुक मार कर शान्त करते हैं विमुख करदिया और जिसने कि उठकर शत्रुओं से पृथ्वी जीत कर प्रजा का प्रिय किया उसने सत्य अनुरोध से अपने शत्रु के घर में प्राण त्याग किया।

इस से स्पष्ट मालूम होता है कि राज्यवर्धन ने मालव राज देवगुप्त को समर में मार कर अपने बहनोई ग्रहवर्म्मन की मृत्यु का बदला लिया था। डाक्टर बुलर का अनुमान है कि यह मालव देश पञ्जाब के अन्तर्गत कहीं स्थानेश्वर के समीप है, किन्तु हमारा अनुमान है कि देव गुप्त मध्य भारत के अन्तर्गत मालवा प्रान्त का राजा था। यदि यह देव गुप्त प्रबलप्रतापान्वित राजा न होता तो यह कब सम्भव था कि इतने दूर गौड़देश के अन्तर्गत किरण सुवर्ण के अधिपति शशाङ्कगुप्त देव के साथ उसकी मित्रता होती। गौड़ेश्वर ने बड़े मित्रभाव से राज्यवर्धन को अपने राज्य में आने के लिए निमंत्रित किया, निमन्त्रण पाकर राज्यवर्धन भी निशङ्क चित्त से गौड़ देश की ओर प्रस्थानित हुए यहां शशाङ्कगुप्त ने मित्रता पूर्वक राज्यवर्धन को अपने शिविर में बुलाकर बड़ी कायरता से उनका वध किया। हर्षचरित के मत से गौड़ेश्वर नरेन्द्रगुप्त का राज्यवर्धन को मारना मिलता है किन्तु ह्यूएनसाङ्ग ने किरण सुवर्ण के राजा शशाङ्कगुप्त ही को राज्यवर्धन का घातक ठहराया है। यह किरण सुवर्ण नगर ताम्रलिप्ति से ७०० ली अर्थात् १५० मील उत्तर पश्चिम की ओर था। कनिंगहाम साहब का मत है कि किरण सुवर्ण कहीं सिंहभूम में है। किन्तु डाक्टर ओयेहेलर का अनुमान है यह वर्धमान के पास वाला काञ्चन नगर है और डाक्टर बेवरिज़ साहब कहते हैं कि यह मुर्शिदाबाद जिले के अन्तर्गत राङ्गामाटी से अलग है। इसी के समीप गोकर्ण भी है, जो कि लुयाड साहब के मत से मुर्शिदाबाद से १२ मील दक्षिण पश्चिम की ओर

था। इस विषय में डाक्टर फ़र्गुसन का मत है कि बीरभूम के अन्तर्गत "नगर" नामक स्थान ही प्राचीन किरण सुवर्ण है। डाक्टर कानिंहाम को सम्प्रत और किरण सुवर्ण के स्थान निश्चित करने में बड़े भ्रम में पड़ना पड़ा है। क्योंकि मुंगेर के अन्तर्गत खरकपुर (खड्गपुर) का क्षत्रिय राजा शशाङ्क सन् ९१० फ़सली अर्थात् सन् १५०२ ई० में मारा गया था। (अपूर्ण)

सूचना।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा के २९वें नियम के अनुसार सब सभासदों से प्रार्थना है कि आगामी वर्ष के चुनाव के लिये यदि उनको कुछ प्रस्ताव करना हो तो कृपापूर्वक उसकी सूचना तारीख २५ जून १९१२ तक वे सभा को भेज दें जिस में सभा उन प्रस्तावों पर विचार कर भिन्न भिन्न पदों के लिये सभासदों को अंकित कर सके। वर्ष की समाप्ति के कारण इस वर्ष निम्न लिखित सज्जनों के पद खाली होंगे।

पदाधिकारी।

एक सभापति, दो उप सभापति, एक मंत्री और दो उपमंत्री।

प्रबन्धकारिणी समिति के सभासद।

काशी से—गोस्वामी रामपुरी, बाबू जुगलकिशोर, बाबू काली प्रसन्न चेटर्जी और बाबू भोलानाथ महरोत्रा।

मध्य प्रदेश और बरार से—प्रोफेसर मुन्ना लाल चौबे एम० ए०

संयुक्त प्रदेश से—पण्डित श्रीधर पाठक

बम्बई से—सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास

इनके अतिरिक्त ३० जून १९१२ तक काशी निवासी जो सभासद समिति के चार अधिवेशनों में उपस्थित न होंगे और जो बाहरी सभासद चार अधिवेशनों के कार्यविवरण के विषय में अपनी सम्मति न भेजेंगे अथवा दो अधिवेशनों में स्वयं उपस्थित न होंगे उन के पद भी खाली हो जांयगे।

निष्कामेश्वर मिश्र

स्थानापन्न मंत्री।

प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आय व्यय का हिसाब ३१ मार्च १९१२ तक।

आय

	रु०	आ०	पा०
चन्दा	१२८६	२	०
राय कृष्णचन्द्र से फिटमन लाइट के लिये विशेष सहायता ...	१३	८	०
सम्मेलन के कार्यविवरण के प्रथम और द्वितीय भागों की बिक्री	८५	१३	०
फुटकर	०	४	०
	१३८५	११	०

व्यय

	रु०	आ०	पा०
डाकव्यय और तार ...	९२	२	६
छपाई			
कार्यविवरण का प्रथम भाग १५०ﾉ॥			
कार्यविवरण का द्वितीय भाग ४१६॥ﾉ			
अन्य छपाई ८९॥ﾉ॥	६५६	११	०
गाड़ी और एक्का भाड़ा ...	२१	१५	६

यात्राव्यय	४१	१२	३
रिपोर्टर	४४	०	६
चपरासियों की वर्दी ...	१०	१५	०
सभाभवन तथा सम्मेलन मंडप की मरम्मत, सफाई और सजाई तथा जमीन का किराया	३१८	०	९
स्टेशनरी ...	१६	९	०
असबाब का किराया ...	५२	९	३
क्लार्क और चपरासी ...	१०	२	९
असबाब की ढोलाई ...	५०	२	६
जलपान में व्यय ...	१३२	०	६
फुटकर व्यय ...	६३	१	४½
सम्मेलन के कार्यविवरण की बिक्री में व्यय ...	११	१	९
	१५०२	११	८½

नोट-ऊपर के हिसाब में आय से ११७) ७॥ पाई अधिक व्यय हुआ है। इस हिसाब में २०।)॥ की रकम नहीं सम्मिलित की गई है जो पहिले व्यय हुई थी फिर पीछे फिरता मिली।

हिन्दीकोश के आय व्यय का ब्योरा प्रारम्भ से ३० अप्रैल १९१२ तक।

आय

चन्दा	१९२१०	७	३
ब्याज	४८६	१५	१०
व्यय मद्धे फिरता पाया	१४	७	०
काठ के बक्सों की बिक्री	५	०	०
	१९७१६	१४	१

व्यय

शब्दों के संग्रह में व्यय	५५६८	११	९
छपाई	८७४	१५	६
पुस्तकें	७६५	६	३
कागज	३००	०	०
स्टेशनरी	१०१	२	१
पार्सलों आदि का रेल भाड़ा	२४७	७	९
यात्राव्यय	५५०	१	२
हिन्दी कोश के सम्पादन में व्यय	४९०९	१३	११
फुटकर व्यय	८०	४	१½
कोश कार्यालय के लिये स्थान ठीक करने में व्यय	१३८	१०	९
डाक व्यय	७५	७	३
तार व्यय	७	३	६
फरनीचर	७४	४	३
जम्मू में मकान का किराया	९०	०	०
चेकों पर बट्टा	९	११	०
पेशगी दिया गया इण्डियन प्रेस को २०००) लाला भगवानदीन ३९।)	२०३९	४	०
	१५७९२	७	३½
बचत	३९२४	६	९½
	१९७१६	१४	१

बालमुकुन्द वर्म्मा
उपमंत्री नागरी प्रचारिणी सभा
काशी।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

भाग १६ | अप्रैल १९१२ | संख्या १०

श्रावस्ती।

'श्रावस्ती' का नाम बौद्ध ग्रन्थों में बहुत मिलता है। स्वयं त्रिपिटक में बीसों जगह 'एवं मे सुतं एकं समयं भगवा विहरति सावत्थियं जेतवने अनाथपिण्डकस्सारामे' इत्यादि वाक्य भरे पड़े हैं। इन सब से यह विदित होता है कि भगवान बुद्धदेव ने अपने जीवनकाल में कई बार श्रावस्ती में जाकर वहां के लोगों को धर्मोपदेश किया था। भगवान बुद्धदेव के समय वहां का राजा प्रसेनजित् था। यह उनका परम भक्त था और आजन्म उनके उपदेश पर चल कर उनका अनुयायी रहा। प्रसेनजित् भगवान बुद्धदेव के जीवन काल ही में परलोकगामी हुआ। उसके पीछे उसका लड़का विरुधक बौद्ध धर्म का परम विरोधी हुआ। कहते हैं कि इसने स्वयं महात्मा बुद्धदेव की अवज्ञा की थी और यही नहीं वह शाक्य वंश का विरोधी था और उसने कपिलवस्तु पर बड़े समारोह से आक्रमण किया। इस लड़ाई में शाक्यों की सेना हताहत हुई और विरुधक विजय प्राप्त कर शाक्य वंश की कितनी कुमारियों को बलात् पकड़ कर श्रावस्ती ले आया। इन कुमारियों से वह जबरदस्ती विवाह करना चाहता था पर जब उन लोगों ने इनकार किया तब उसने सब के सब को एक साथ मार डाला। संभव है कि कपिलवस्तु का विध्वंस इसी के आक्रमण से हुआ हो।

पुराणों में केवल चार पुराणों में श्रावस्ती का नाम आता है और लिखा है कि यौवनाश्व के पुत्र श्रावस्त ने इसे बसाया था पर वायुपुराण में इसे महाराज रामचन्द्र के पुत्र लव का बसाया हुआ लिखा गया है। कुछ हो यह नगर एक बहुत प्राचीन नगर था और यहां सूर्य्यवंशी राजाओं की राजधानी थी। संभव है कि जब अयोध्या की राजधानी नष्ट हुई तब श्रावस्ती कोशल की राजधानी बनी हो। कहते हैं कि श्रावस्ती के पास ही 'कश्यप' बुद्ध का जन्म हुआ था।

महात्मा बुद्धदेव के यहां बहुत दिनों तक निवास और उपदेश करने के कारण यह स्थान बौद्ध काल में प्रधान स्थान माना गया था। यहां

पर पीछे बौद्ध महाराजों और श्रीमानों ने कितने बिहार और स्तूप बनवाये थे। इन बिहारों में से कई आराम तो महात्मा बुद्धदेव के जीवन काल ही में बने थे जिनमें दो प्रधान 'अनाथ पिण्डकाराम' और दूसरा पूर्वाराम। अनाथपिंडक महाराज प्रसेनजित् का महामात्य था इसका वास्तविक नाम सुदत्त था। यह महात्मा बुद्धदेव का परम भक्त था। इसने श्रावस्ती से लगे हुए जेतवन नामक स्थान में एक आराम बनवाया था और महात्मा बुद्धदेव जब श्रावस्ती जाते थे तो प्रायः इसी के आराम में ठहरते थे। जेतवन कुमारजित के नाम से प्रख्यात था यह बन चतुष्कोण वर्गाकार था, जिस की प्रत्येक भुजा १००० बिलस्त की थी। पूर्वाराम को श्रावस्ती की एक महिला ने जिसका नाम विशाखा था बनवाया था। इस विशाखा का नाम बौद्ध ग्रन्थों में प्रायः मिलता है।

यह श्रावस्ती इतनी प्रख्यात होने पर भी बहुत थोड़े दिनों में श्रीच्युत होने लगी। यद्यपि दूर दूर देशों से यात्री इस प्रसिद्ध नगर के दर्शन के लिये आते रहे पर सब के सब की दृष्टि में यह अवनति पर ही दिखाई पड़ी। चीनी यात्री फाहायन जब श्रावस्ती में आया था तो यहां केवल दो सौ के लगभग घर अवशेष थे और ह्वायनशांग के आने के समय में यह बिलकुल उजड़ चुका था। लंका के यात्री जो तीसरी शताब्दी के अन्त में आये थे उनके समय में यहां तीराधार और उसके भतीजों का अधिकार था।

जेतवन ह्वायनशांग के समय में उजाड़ हो गया था और इस के बीच में एक मन्दिर के खंडहर में बुद्धदेव की एक मूर्ति रह गई थी और श्रावस्ती में दो स्तूप सुदत्त और अंगुलिमाल्य बच रहे थे। श्रावस्ती कहां थी इसके विषय में ह्वायनशांग ने इस अयोध्या से उत्तर ओर लिखा और फ़ाहायन ने इसे कौशल के अन्तर्गत लिखा है। ह्वायनशांग ने यह भी लिखा है कि श्रावस्ती विक्रमादित्य के अधिकार में थी जो बौद्ध धर्म का घोर शत्रु था।

सब से पहिले जनरल कनिंघाम महोदय ने गोंडा ज़िले में सहेत महेत नामक खंडर को जो राप्ती के दक्षिण तट पर गोंडा और बहरायच के ज़िलों की सीमा पर है सन १८६२ में खोदाना प्रारंभ किया। यह खंडर बहुत दूर तक चला गया है और अर्द्ध चन्द्राकार दो मील तक फैला हुआ है। १८६३ में उक्त जनरल महोदय को एक छोटे ईंट के खंडर में एक मूर्ति मिली। यह मूर्ति ७ फुट ४ इंच लम्बी थी और इसके आसन पर कुशाण लिपि में यह लिखा था कि यह मूर्ति श्रावस्ती में स्थापित की गई। इसके अतिरिक्त और बहुत सी बुद्धदेव की मूर्तियां भी मिलीं जो कनिष्क और हुविष्क के शासनकाल की थीं। इसकी खोदाई १८७५ में फिर उक्त महोदय ने कराई पर यद्यपि उस समय कुछ सिक्के, और मूर्तियां आदि मिलीं पर ऐसी एक भी वस्तु न मिली जिससे सहेत महेत के श्रावस्ती होने की पुष्टि हो। १८८३ में डाक्टर हू साहेब ने, जो उस समय बहरायच के ज्वाइंट मजिस्ट्रेट थे, फिर तीसरे बार सहेत महेत को खोदाना प्रारंभ किया, दो वर्ष खोदाई के बाद १८८५ में डाक्टर हू साहेब को एक शिलालेख मिला। यह शिलालेख एक खंडर के नीचे मिला था जो किसी पुराने बिहार के खंडर पर बना था।

यह शिलालेख सम्वत् १२०३ विक्रम का था। इस में श्रीवास्तव्य कायस्थ* विद्याधर के विहार की प्रशस्ति है। विद्याधर के बाप का नाम जनक और दादा का नाम † बिल्वशिव था। जनक ‡ गाधिपुर के राजा गोपाल का सचिव था। ॰ विद्याधर स्वयं मदन का मन्त्री था। यह अजातृप का रहने वाला था। अजातृप के बसने की एक ऐसी अलौकिक घटना वर्णन की गई है जो सर्वथा कवि की कल्पना प्रतीत होती है। कवियों की शैली है कि वह किसी अप्रसिद्ध स्थान वा अज्ञात कुल को प्रधानता देने के लिये कोई न कोई अलौकिक घटना गढ़ लेते हैं। ऐसे उदाहरण पुराणों और काव्यों में सहस्रों विद्यमान हैं। †अजातृप के विषय में कवि ने यह कल्पना की है कि मान्धाता एक बेर सैर करता हुआ एक सर के पास पहुंचा जिसमें कमल खिले थे और पक्षी कलरव कर रहे थे। इसे देख उसके जी में आया कि वहां कुछ अपनी कीर्ति का चिन्ह छोड़ जावे। मान्धाता ने उस सरोवर को पटाकर वहां 'अजातृप' नामक नगर बसाया और इसकी रक्षा कर्कोट के अधीन की। प्रोफेसर केल्हार्न का मत है कि 'सम्भव है अजातृप या जातृप या

* तस्मिन्नभूवन्धनिनोतिधन्यः
श्रीपूर्ववास्तव्यकुलप्रदीपः।
अद्यापिवद्वंश भवैर्यशोभिः
ज्योत्स्निशुभ्रं धवलीक्रियन्ते।

यद्यपि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी जि १७ पृष्ठ० में श्रीपूर्व वास्तव्य अंगज लिखा है पर यह भ्रममात्र है। श्लोक में छन्द के लिये 'श्रीपूर्ववास्तव्य' पद श्रीवास्तव्य के लिये आया है। श्रीवास्तव्य कायस्थों का उत्पत्तिस्थान लोग श्री नगर मानते हैं पर यह भ्रममात्र है। श्रीनगर पश्चिम में है पर वहां या पश्चिम में एक भी श्रीवास्तव्य कायस्थ नहीं हैं। वास्तव में श्रीवास्तव्य 'श्रावस्ती' में रहने से कहलाते हैं तभी तो श्रीवास्तव्य कायस्थ अवध और संयुक्तप्रान्त के पूर्वीय भाग तथा विहार प्रदेश में बाहुल्यता से बसे हैं। ये लोग पहिले बौद्ध धर्मी थे। स्वयं श्रावस्ती का राजा त्रिलोकचन्द्र श्रीवास्तव्य कायस्थ जाति का बौद्ध राजा हो गया है। दे० तवारीखे अवध।

† तेषामभूदभिजने जलधाविवेन्दु-
रिन्दुद्युतिः प्रथित बिल्वशिवाभिधानः।
यस्यस्मरारि चरणाम्बुजयात्सलस्य
लक्ष्मी द्विजातिसुजनार्थिजनोपभोग्या।
सोजन्यमम्बुनिधेरुदारचरितवत्यस्य मानिनस्सः।
साधूनामुदयैकधाम जननीस्थानं श्रियः सत्वभूः।

‡ तस्मा सोऽजनको जनोनहृदयः पुत्रः सतामग्रणी
सोन्योगाधिपुराधिपस्य सचिवो गोपाल नाम्नः सुधीः।
तत्पंश्वमः पञ्चशरानुकारी

॰ तयोस्तनूजो तनुकीर्तिकन्धः।
विद्यावबोधादनुकीर्त्यते यः
विद्याधरोनाम यथार्थ नामा।

‡ प्रोफेसर केल्हार्न महोदय 'गाधिपुर' को कन्नौज बताते हैं पर यह भ्रम है। गाधिपुर वास्तव में 'गाज़ीपुर' है। मुसल्मानों ने अपने शासन काल में कितने नगरों के नाम का संस्कार कर के फ़ारसी बना डाला है और कितने का नाम बदल दिया है।

* यस्मै गजागमरहस्य विदे गजाना-
मानन्दनीं कनयतःपुरमुद्धराय।
भूपालमौलि तिलको मदनः प्रदान-
मानादिभिः क्षितिपतिः स्पृहयां बभूव।

† मान्धाताख्यः शत्रुशिक्षकतुल्यो
धंशेभव्योभानुतेजोतिशाली।
नित्यानन्दोसाधुभोक्ता त्रिलोकी
राज्ञामाद्यश्चक्रवर्ती बभूव।
स्वं क्रोभाम्यन्कदाचित्सरसिकहराजी-राजि विराजितम्भः
सम्प्राप्य सोन्नतमंद्रकलशकुनिर्विलसाया भिरम्यम्।
कर्तुं कीर्तिवितानं सुचरितमहितोमहिपापूर्ण्यपवात्
कर्कोटाधीन रक्षां स्वपुरमिदमथोनिर्ममेऽजातृपाख्यम्॥

तो जवनपुर हो अथवा इसके पास का कोई और दूसरा स्थान हो। जनरल कनिंघाम महोदय का मत है कि जवनपुर का कोई पुराना नाम था जिसका अब पता नहीं है। जवनपुर के पास ही नदी के किनारे एक कोट है जिसे 'कराकत' कहते हैं। इसी कराकत से दक्षिण चार मील पर जहां अब जफ़राबाद है कन्नौज के राजा का महल था जहां वे प्रायः रहा करते थे।' यह विचार उक्त प्रोफेसर महोदय को स्थानों का ठीक ज्ञान न होने से भ्रममूलक है। 'अजावृष' वास्तव में 'जायस' का पुराना नाम है जहां कायस्थों की बड़ी पुरानी बस्ती है और कर्कोट जवनपुर का 'कराकत' नहीं है *परन्तु 'कड़ा' का ही प्राचीन नाम है।

आर्कियालोजिकल सर्वे आफ़ इण्डिया जिल्द २ पृ० ८१३४ में कड़ा का प्राचीन नाम * कर्कोट नगर लिखा है यद्यपि यह प्रसिद्ध है कि कड़ा को जयचन्द्र ने बसाया था पर फिर भी यह बहुत पुराना नगर है।

* प्रोफेसर कोल्हार्न का अनुमान है कि यह प्रशस्ति अजावृष के विहार की है जिसे वह जवनपुर समझते हैं परन्तु यह सोचकर उनको अत्यन्त विस्मय प्रतीत होता है कि यह शिलालेख १३० मील की दूरी पर कैसे पहुंचा।

हम जब शिलालेख में देखते हैं तो वहां अजावृष का नाम तक नहीं है। उसमें केवल यही लिखा है :—

† आत्मज्ञान के उदय से जिसके रागादि दोषों के बंधन (आश्रय) ढीले पड़ गये जिसने मन में बारम्बार विचार कर बौद्धधर्म को ग्रहण किया, उसी सत्पथ की आराधना करने वाले यमी (विद्याधर) ने अपनी कीर्ति का आश्रयरूप इस आनन्द-मूलालय (विहार) को बनवा कर विहार विधि से इसका उत्सर्ग किया है।

जिससे प्रोफेसर महोदय का यह अनुमान कि यह शिलालेख 'अजावृष' के विहार का है सर्वथा निर्मूल प्रतीत होता है। विहार के बनवाने की प्राचीन प्रथा यह थी कि विहार ऐसे स्थान पर बनवाया जाता था जहां या तो महात्मा बुद्धदेव रहे थे या जहां श्रमणों का संघ था। अजावृष का नाम किसी भी ग्रन्थ में नहीं आया है जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि न तो यहां कभी श्रमण

* The town is also said to have been called Karkotanagar, because the hand (kar) of Sati fell down here when she burnt herself at her father's sacrifice (yaga)......Its foundation is attributed to Jaichandra, the last Hindu Raja of Kanauj. Of course it belonged to Jaichandra, but the place is certainly very much older, as several earlier Hindu coins have been found, and as an inscription, which was formerly on the gateway and is now in the Indian Museum at Calcutta, is dated in Samvat 1095 or A. D. 1035, during the reign of Raja Yashapal.

• But my difficulty is that Jaunpur is about 130 miles from the place (Sahet Mahet) where the inscription was actually found.

† आत्मज्ञानकृतोदयेन विगलद्रागादिदोषाश्रय-
प्रोद्बन्धेन मनसा विचार्य बहुशो मध्यस्थतां सौगते।
तेनाराधितसत्पथेन यमिना आनन्दमूलालयो-
निर्माप्योत्सवजो विहारविधिना कीर्तेर्विकाशयः।

रहते थे और न यहां विहार ही था। अतः यह निश्चित है कि विद्याधर ने 'श्रावस्ती' में ही कोई विहार बनवाया था जिसका यह शिलालेख था। संभव है कि विहार के नष्ट हो जाने से यह शिलालेख कहीं डाल दिया गया हो जो पीछे खोदने पर मिला। स्थान का नाम न होने से भी इसका श्रावस्ती के विहार का शिलालेख होना निश्चित होता है।

इस स्थान की खोदाई फिर सन १९०८ में हुई और मार्च अप्रैल में वहां एक और ताम्रपत्र मिला जिससे सहेत महेत का 'श्रावस्ती' होना निश्चय हो गया। यद्यपि मिस्टर स्मिथ महोदय ने डाक्टर वोगल के 'श्रावस्ती और उसके खंडहर' नामक लेख का जो ११ मई १९०८ के पायनियर में छपा था, जुलाई १९०८ के एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में प्रतिवाद किया और अपना यह मत प्रकट किया कि ताम्रपत्र 'सेहत महेत' में असली श्रावस्ती से लाया गया होगा। मिस्टर स्मिथ का अनुमान है कि श्रावस्ती बालापुर के पास कहीं होनी चाहिये। यह बालापुर नैपाल की तराई में है और उस स्थान से बहुत समीप है जहां रापती पहाड़ से नीचे आती है। पर मिस्टर मार्शल महोदय ने सन १९०९ के एसियाटिक सोसाइटी के जर्नल पृ० १०६६ में यह अच्छी प्रकार से निर्धारित कर दिया कि वास्तव में सेहत महेत ही श्रावस्ती है। ताम्रपत्र जो सन १९०८ में मिला था ११८६ का दानपत्र है। इसके आदि में ९ * श्लोक हैं जिनमें महाराज गोविन्दचन्द्र के पूर्वजों की वंशावली है अन्त में भी ८ श्लोक हैं। बीच में गद्य है। महाराज गोविन्दचन्द्र सूर्यवंश में थे यह दूसरे श्लोक के 'अशीतद्युतिवंशजातः' पद से विदित होता है। इनके पूर्व पुरुष का नाम यशोविग्रह था। यशोविग्रह के महीचन्द्र और महीचन्द्र के श्रीचन्द्रदेव हुए। यह चन्द्रदेव बड़ा प्रतापी था इसने गाधिपुर को जीत

* अकुण्ठोत्कण्ठवैकुण्ठकण्ठपीठलुठत्करः
संरम्भः सुरतारम्भे स श्रियः श्रेयसेऽस्तु वः। १
आसीदशीतद्युतिवंशजातक्ष्मापालमालासु दिवंगतासु।
साक्षाद्विवस्वानिव भूरिधाम्ना नाम्ना यशोविग्रह इत्युदारः। २
तत्सुतोऽभून्महीचन्द्रश्चन्द्रधामनिभं निजम्।
येनापारमकूपारपारे व्यापारितं यशः।
तस्याभूत्तनयो नयैकरसिकः क्रान्तद्विषन्मण्डलो
विध्वस्तोद्धतवीरयोधतिमिरः श्रीचन्द्रदेवो नृपः।
येनोदारतरप्रतापशमिताशेषप्रजोपद्रवं
श्रीमद्गाधिपुराधिराज्यमसमं दोर्विक्रमेणार्जितम्। ४
तीर्थानि काशिकुशिकोत्तरकोशलेन्द्र-
स्थानीयकानि परिपालयताभिगम्य।
हेमात्मतुल्यमनिशं ददता द्विजेभ्यो
येनाङ्किता वसुमती शतशस्तुलाभिः। ५
तस्यात्मजो मदनपाल इति क्षितीन्द्र-
चूडामणिर्विजयते निजगोत्रचन्द्रः।
यस्याभिषेककलशोल्लसितैः पयोभिः
प्रक्षालितं कलिरजःपटलं धरित्र्याः। ६
यस्यासीद्विजयप्रयाणसमये तुङ्गाचलोच्चैश्चल
न्माद्यत्कुम्भिपदक्रमासमभरभ्रश्यन्महीमण्डले।
चूडारत्नविभिन्नतालुगलितस्त्यानासृगुद्भासितः
शेषः पेषवशादिव क्षणमसौ क्रोडे निलीनाननः। ७
तस्मादजायत निजायतबाहुवल्ली
बद्धावरुद्धनवराज्यगजो नरेन्द्रः।
सान्द्रामृतद्रवमुचां प्रभवो गवां यो
गोविन्दचन्द्र इति चन्द्र इवाम्बुराशेः। ८
न कथमप्यलभन्त रणक्षम-
स्तिसृषु दिक्षु गजानथ वज्रिणः।
ककुभि बभ्रमुरभ्रमुवल्लभ
प्रतिभटा इव यस्य घटागजाः। ९

कन्नौज पर अधिकार कर लिया और और एक बृहत्साम्राज्य का अधीश्वर बन गया। चन्द्रदेव का पुत्र मदनपाल और मदनपाल का पुत्र गोविन्दचन्द्र था। यह आज्ञापत्र इसी गोविन्दचन्द्र का है जिसे * सुरादित्य कायस्थ ने उसकी आज्ञा से ताम्रपत्र पर लिखाया। इस आज्ञापत्र † में बाड़ा चतुराशीतिपत्तलीय विहार, पत्तणा उपलउड्डा बबहली मेयी संबद्ध घोसाड़ी, और पोठीवार संबद्ध पयासि ग्राम निवासियों और सर्वसाधारण के नाम हैं। इसमें महाराज गोविन्दचन्द्रदेव ने जेतवन के विहार के लिये ऊर्ध्व लिखित छ गांवों के दान की घोषणा की है। इन छ गांवों में विहार, घोसाड़ी, और पयासी बाड़ा, मेयी और पोठीवार सम्बन्धी बस्तियां या डीह जान पड़ते हैं और शेष पत्तणा, उपलउड्डा, और बबहली स्वतन्त्र गांव थे। बाड़ा अब बाज जोत कहलाता है और 'महेत' से दो मील पश्चिम है। संभव है कि उस समय में भी इस का नाम बाज रहा हो। जिस समय का यह लेख है उस समय की जकार की आकृति और अब की जकार की आकृति में बड़ा अन्तर है। तब का जकार केवल 'टक' के जरा नीचे खसक जाने से 'ड' पढ़ा जा सकता था। घोसाड़ी उजड़ गया और उस का पता नहीं पर मेयी अब तक सूभागपुर के पास इटियाठोक की सड़क पर है जो गोंडा से गई है। पयासी उस समय पोठीवार का डीह था। पोठीवार का ध्वंस हो गया और पयासी जिसे अब बयासी कहते हैं महेत से दो कोश उत्तर पूर्व के कोण पर राप्ती के किनारे थी पर कई वर्ष हुए राप्ती की काट से उस की धार में आ गई। शेष तीन में पत्तणा को अब पटना

---

* श्रीमद्गोविन्दचन्द्रस्य भूपतेराज्ञयालिखत
ताम्रमेतत्सुरादित्यः कायस्थः सर्वशास्त्रवित्।

† सोऽयं समस्तराजचक्रसंसेवितचरणः परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वर निजभुजोपार्जित कान्यकुब्जाधिपत्य श्रीमच्चन्द्रदेवपादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वर श्रीमन्मदनपालदेव पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परम माहेश्वरो-ऽश्वपति-गजपति-नरपति-राजत्रयाधिपतिर्विविधविद्याविचारवाचस्पतिः श्रीमद्गोविन्दचन्द्रदेव विजयी। वाडा (जा) चतुरशीतिपत्तलीयां विहारपत्तणा उपलउडा बबहली मेयी संबद्धघोसाडी पोठिवार-संबद्ध-पयासि-ग्रामनिवासिनोनिखिलजनपदानुपगतानपि राजराज्ञीयुवराजमन्त्रिपुरोहितप्रतिहारसेनापतिभाण्डागारिकाक्षपटलिक भिषग्नैमित्तिकान्तःपुरिकदूतकारितुरगपत्तनाकरस्थानगोकुलाधिकारिपुरुषानाज्ञापयति बोधयत्यादिशति च यथा। विदितमस्तु भवतां यथोपरिलिखित ग्रामाः सजलस्थलाः सलोहलवणाकराः समत्स्याकराः सपल्लीकराः सगर्त्तोषराः समधूकाम्रवनवाटिकाविटपतृणयूतिगोचरपर्य्यन्ताः सोर्द्ध्वाधश्चतुराघाटविशुद्धस्वसीमापर्य्यन्ताः सम्वत्सरे षडशीत्यधिकैकादशशते आषाढे मासि सोमवारे पूर्वाषाढनक्षत्रे पूर्णिमायां तिथौ अङ्कतोऽपि सम्वत् ११८६ आषाढ सुदि १५ सोमे। अद्येह वाराणस्यां गंगायां स्नात्वा मन्त्रदेवमुनिमनुजभूतपितृगणांस्तर्पयित्वा तिमिर पटलपाटलपाटनपटुमहसमुष्णरोचिषमुपस्थायौषधिपति शकलशेखरं समभ्यर्च्य त्रिभुवनत्रातुर्वासुदेवस्य पूजां विधाय प्रचुरपायसेन हविषा हविर्भुजं हुत्वा मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्धये गोकरणकुशलतापूतकरतलोदकपूर्वकं उत्कलदेशीयसौगतपरिव्राजकमहापण्डितशाक्यरक्षितशिष्यचोडदेशीयसौगतपरिव्राजक महापण्डित वागीश्वर-रक्षिताभ्यां परितोषितैरस्माभिः श्रीमज्जेतवनमहाविहारवास्तव्यबुद्धभट्टारक प्रमुख परमार्य्य शाक्यभिक्षु संघाय विहारान्तरमर्य्यादायां परिभोगार्थमक्षताचिन्तप्रसादेनाचन्द्रार्कम्पुनरपिशासनीकृत्यग्रामा इमे षडपि दत्ता मत्वा यथा दीयमानभागभोगकरप्रवणिकर तुरुष्कदण्ड प्रभृति सर्व दाया नाज्ञाविधेयीभूय दास्यथेति।

करते हैं। यह महेत से तीन मील पश्चिम कोण पर कटरा से खड़गूपुर की सड़क से दो मील पश्चिम है। बबहली के विषय में पण्डित दयाराम जी साहनी का अनुमान है, कि शायद यह बेलहा हो जो पटना के पास है। उपलेंड़ी का पता ठीक नहीं चला है। संभव है कि चंचला रापती ने जो कभी दश वर्ष एक ठिकाने नहीं रहती इन गावों का ध्वंस कर दिया हो। इन गावों में वाज, मेंथी, पयासी (बयासी) और पटणा (पटना) का पता चल जाने से तथा स्वयं ताम्र पत्र में 'श्रीमज्जेतवन महाविहारवास्तव्य बुद्धभट्टारकप्रमुखपरमार्यसंघाय' इत्यादिवाक्य से अब यह स्पष्ट हो गया कि महेत और महेत ही जेतवन और श्रावस्ती है। इस दानपत्र के देखने से यह विदित होता है कि उस समय हिन्दू और बौद्धों में बड़ी परस्पर सहानुभूति थी। स्वयं महाराज गोविन्दचन्द्र ने शैव होने पर भी जेतवन के विहार के लिये भिक्षुसंघ को छ गांव दान दिये। अनुमान होता है कि गोविन्दचन्द्र का पौत्र गोपाल था जिस के यहां विद्याधर का पिता जनक आमात्य था। यह ताम्रपत्र काशी में लिखा गया इसी लिये इसमें जेतवन का नाम आया है। इस आज्ञापत्र से बहुत कुछ उस समय की रीति नीति का पता चलता है। उस समय राजाओं के यहां प्रतिहार, सेनापति, भाण्डागारिक, अक्षपटलिक नैमित्तिक, अन्तःपुरिक, हस्त्यधिकारी, पत्तनाधिकारी, कराधिकारी, स्थानाधिकारी, इत्यादि कितने ऐसे राजपुरुष थे जिन के पद का अब नाम तक कोई नहीं जानता। उस समय भागकर प्रवणकर, तुरुष्कदण्डादि कितने कर थे जिन को या तो लोग भूल गये या उनके स्थान में सायर आदि फारसी के शब्द रख लिये गये।

श्रावस्ती! तूने भी क्या क्या चक्र के परिवर्तन देख लिए। एक समय था कि भगवान बुद्धदेव तेरी गलियों में उपदेश करते फिरते थे। फिर वहीं विरुधक ने शाक्य महिलाओं का प्राणघात किया फिर तेरे बीच कितने विहार आरामादि बने! कनिष्क हुविष्कादि शक राजाओं ने तुझ पर अधिकार प्राप्त किया। फिर तुझ पर तोरामाणादि राजाओं ने राज्य किया क्रमशः तू गुप्तों के अधिकार में गई जिन्हों ने तेरे ऊपर कितने ही शिवादि के मन्दिर बनवाये। तू बौद्ध धर्म का प्रधान केन्द्र बनी फिर तेरी अवस्था बदलने लगी कभी उजड़ी कभी बसी। कभी तुझ पर जैनियों का भी अधिकार था। तू न केवल बौद्धों का तीर्थ है अपि तु जैन लोग भी तुझे अपना पूज्य बतलाते हैं और कहते हैं कि आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभनाथ ने तेरे ही पवित्र भूमि पर जन्म ग्रहण किया था। जैनियों का अन्तिम राजा सुहृद्ध्वज (सुहेलदेव) जिसने 'सालार' मसूद को ११ शताब्दी में मारा तेरे ही ग्राम धाम का राजा था, पर तू १४ वीं शताब्दी के अन्त में लुप्त होने लगी और अन्त को ऐसी विलीन हो गई कि यदि जनरल कनिंघाम महोदय तेरे खंडहरों को न खोदाते और उसकी पुष्टि गोविन्द चन्द्रदेव के ताम्रपत्र में लिखे गावों के मिलने से न होती हो तो अब भी तुझे लोग पहिचानते हिचकते।

जगन्मोहन वर्म्मा।

महाराज हर्षवर्द्धन ।

(गताङ्क से आगे)

राजा शशाङ्कगुप्तदेव ने ईसा की छठीं शताब्दी के प्रथम भाग तक पश्चिम बङ्गाल का राज्य किया था। इन की राजधानी किरण सुवर्ण में थी। यह राजा कट्टर सनातनधर्मी था इस से यह प्रबल पराक्रान्त नृपति बौद्धधर्म का बड़ा घोर द्वेषी भी था। प्रसिद्ध दुर्ग रोहतासगढ़ में राजा शशाङ्क की नामाङ्कित एक शिलालिपि और बाहारा में शशाङ्क के नाम का एक सरोवर आज तक वर्तमान है। इन्होंने बोध गया के महाबोधी वृक्ष को नष्ट किया था। इन के थोड़े ही दिन बाद मगध देश के बौद्ध राजा पूर्णवर्म्मन ने बोधगया के विख्यात मन्दिर के चारों ओर २४ फुट ऊंची पत्थर की चहार दीवारी बनवा कर भविष्यत् में बोधिद्रुम को नष्ट होने से रक्षा की। बोधिद्रुम नष्ट कर के महाराज शशाङ्कगुप्त ने अपने एक मन्त्री से बुद्धदेव की प्रतिमा को वहां से हटादेने का आदेश किया। इस आज्ञा को पाकर बौद्धधर्म्मावलम्बी मन्त्री बड़े सङ्कट में पड़ा उसने बुद्धदेव की मूर्ति के सामने वाले भाग को दीवार से बन्द करा कर नए कमरे में देवाधिदेव महादेव की मूर्ति स्थापित कर के किसी प्रकार राजाज्ञा का पालन किया। कनिंघाम साहब के मत से सन् ६१० ई० में शशाङ्कगुप्त के द्वारा बोधिद्रुम नष्ट हुआ था, यहां पर शशाङ्कगुप्त के मन्त्री ने नवीन शिव मन्दिर के अन्धकार दूर करने के निमित्त दीपक रखने के हेतु एक दीवट बनवाई थी *।

राज्यवर्धन बौद्ध था इस लिए परम हिन्दू शशाङ्कगुप्त का निर्भय चित्त से स्वयं अपने हाथ उसकी हत्या करना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। सन् ६०५ ई० में शशाङ्कगुप्त ने राज्यवर्धन का वध किया था, किन्तु लासेन साहब के मत से सन् ६१४ ई० में राज्यवर्धन मारा गया और शिलादित्य हर्षवर्धन कान्यकुब्ज के राजसिंहासन पर आसीन हुआ। सन् ६१० ई० में शशाङ्कगुप्त की आज्ञा से बोधिद्रुम नष्ट किया गया इसके पश्चात् महाराज शशाङ्कगुप्त ने पाटलिपुत्र में महाराज अशोक के स्थापित बुद्धदेव के पदचिन्हों को नष्ट करने का प्रयत्न किया। इससे मालूम होता है कि हर्षवर्धन शशाङ्कगुप्त को दमन सर्व न कर सका किन्तु हर्षवर्धन ने अपने राज्य के छठें वर्ष में सम्पूर्ण आर्य्यावर्त को अधीन कर लिया था। शशाङ्कगुप्त ने सम्भवतः सन् ६१८ ई० में अपनी जीवनलीला सामाप्त की थी। बेवरिज साहब के मत से यह आदिसूर के वंशधर शशधर से भिन्न था।

पूर्वोक्त दानपत्र के अन्तिम भाग में खुदे हुए दो श्लोक और किसी दूसरे दानपत्र में नहीं मिलते इसी से ये महाराज हर्षवर्धन के बनाए हुए मालूम होते हैं। हर्षवर्धन की कविता शैली पर विचार करने से ये उनके रचे हुए स्पष्ट मालूम होते हैं:—

"अस्मत्कुलक्रममुदारमुदाहरद्भिः ।
अन्यैश्चदानमिदमभ्यनुमोदनीयं ॥
लक्ष्म्यास्तडित्सलिलबुद्बुदचञ्चलाया ।
दानं फलं परयशः परिपालनञ्च ॥
कर्म्मणामनसावाचाकर्तव्यं प्राणिनोहितम् ।

* Cunningham's Archaeological Survey Report, III 80-100 Dr. Mittra's "Bodh Gaya" (18. 71).

हर्षेणैतत् समाख्यातं धर्म्मार्जनमनुत्तमम् ॥

सन् १८९४ ई० में ज़िला शाहजहाँपुर में एक और हर्षवर्धन नामाङ्कित दानपत्र मिला था। यह दानपत्र ३२ हर्षाब्द (६३८ ई०) के कार्त्तिक कृष्ण प्रतिपदा को वर्धमान कोटी नगर से निकला था। इस दानपत्र को बांसखेरा गांव के एक किसान ने हल जोतते हुए ज़मीन में पाया था। बांसखेरा गांव शाहजहाँपुर से २५ मील दूर है। इस दानपत्र के द्वारा भारद्वाज गोत्रीय ऋग्वेदी भट्टबालचन्द्र और सामवेदी भट्ट भूस्वल ने अहिच्छत्र (रामनगर) भुक्ति के अन्तर्गत "गङ्गादीर्घ" विषयस्थ "मर्कटसागर" नामक ग्राम दान में पाया था। यह ताम्रपत्र इस समय लखनऊ के अजायब घर में रक्खा हुआ है।

हर्षवर्धन के दानपत्र और मोहर से उनके शासनकाल का विवरण और वंशावली संक्षिप्त रूप से एकत्रित की गई है जिससे बाणभट्ट रचित हर्षचरित की ऐतिहासिकता और प्रमाणिकता स्पष्ट रूप से सिद्ध होती है। इस समय समस्त आर्य्यावर्त हर्षवर्धन के अधीन था। इनके द्वारा प्रचलित हर्षाब्द नामक शाका का नैपाल तक प्रवेश हो चुका था।

अबूरिहान अलबरूनी ने अपने इतिहास में हर्षाब्द का ग्यारहवीं शताब्दी में भारतवर्ष में व्यवहार होना लिखा है। इनके समय में दक्षिण देश के अन्तर्गत कल्याण नगर में चालुक्य वंशज सम्राट् द्वितीय पुलकेशी राज्य करता था। दक्षिण में साम्राज्य विस्तार करने के प्रयत्न में महाराज पुलकेशी का सारा बल ख़र्च हो गया था। हर्षवर्धन की विजयिनी गति का अवरोध करके महाराज पुलकेशी अत्यन्त गौरवान्वित और प्रसन्न हुए थे। इसी समय से पुलकेशी और उसके वंशज लोग अपने शासन पत्रों में हर्षवर्धन के पराजय वृत्तान्त उल्लेख करके चालुक्य वंश के श्रेष्ठत्व और गौरव का प्रतिपादन किया करते थे।

हरिदत्त नामक हर्षवर्धन का एक अमात्य गवीधूमत् (वर्तमान कुद्दारकोट) के शासन कार्य पर नियुक्त हुआ था।

"आसीत् श्रीहरिदत्ताख्यः ख्यातो हरिरिवापरः।
श्रीहर्षणसमुत्कर्षं नीतोऽपि ह्यक्रतानयः॥"

इस हरिदत्त के पुत्र का नाम हरिवर्म्मा था। हरिवर्म्मा के पुत्र ने अपने पिता के जीवित रहते ही ततहन्त नामक युद्ध में प्राण दिया था।

महर्षि पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में इस गवीधूमत् का उल्लेख किया है इसके अनुसार गवीधूमत् साङ्काश्य से चार योजन दूरी पर था। ऐसा प्रवाद है कि गवीधूमत् से लेकर कन्नौज नगर तक पृथ्वी में एक सुरंग का रास्ता था। इस समय फ़र्रुख़ाबाद के अन्तर्गत संकिशा से कुद्दारकोट के बीच में ३९ मील का अन्तर है। कुद्दारकोट ज़िला इटावा में है जो कि इटावा नगर से २४ मील उत्तर पूर्व की ओर है।†

व्रजचन्द्र।

---

* Epigraphia Indica (1·1·79) Sir W. W. Hunter's "Imperial Gazetteer" (VII. 329).

† यह प्रबन्ध प्रसिद्ध बंगला मासिक पत्र "साहित्य" में प्रकाशित पुरातत्त्वविद बंगभाषा के सुप्रसिद्ध लेखक श्री युक्त बाबू त्रैलोक्यनाथ-भट्टाचार्य एम० ए० के "महाराज हर्षवर्धन" नामक लेख का अनुवाद है। अनुवादक

चन्द बरदाई।

जिस प्रकार संस्कृत के इतिहास में महर्षि वाल्मीकि आदि कवि माने गए हैं उसी प्रकार संस्कृत की ज्येष्ठा कन्या हिन्दी के इतिहास में चन्द बरदाई का नाम और यश सर्वश्रेष्ठ गिना जाता है तथा उसका पृथ्वीराजरासो नामक महा काव्य हिन्दी का आदि ग्रन्थ माना जाता है। हिन्दी का ऐसा कौन प्रेमी होगा जिसने चन्द बरदाई का नाम न सुना हो, पर कितने लोग ऐसे हैं जिन्होंने उसके ग्रन्थ को पढ़ने अथवा उस के मर्म्म को जानने का सौभाग्य प्राप्त किया हो? बहुत दिनों तक तो हिन्दी के प्रेमियों का इस कवि सम्बन्धी ज्ञान शिवसिंहसरोज में दिए हुए वृतांत की सीमा से वेष्टित था, परन्तु ऐसा ज्ञात पड़ता है कि शिवसिंह को भी इस कवि के ग्रन्थ देखने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ। उसने अपने सरोज में जो कुछ लिखा है वह सुना सुनाया ही ज्ञात पड़ता है। कर्नल टाड ने अपने राजस्थान के इतिहास में इस कवि के ग्रन्थ से बहुत कुछ सहायता ली है और अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों में इस कवि की प्रसिद्धि टाड साहब की कृपा का ही फल है। इसके अनन्तर बीम्स साहब ने बंगाल की एशियाटिक सुसाइटी की अवधानता में इस ग्रन्थ के सम्पादन करने का उद्योग किया पर वे एक समय भी समाप्त न कर सके। डाक्टर हार्नली ने भी बीच में से इसका सम्पादन और अंग्रेजी अनुवाद प्रारम्भ किया। इसी समय में उदयपुर के कविराजा श्यामल दास जी ने एक लेख एशियाटिक सुसाइटी की पत्रिका में छपवाया जिसमें इस बात के सिद्ध करने का उद्योग किया गया कि चन्द का ग्रन्थ ऐतिहासिक नहीं है और न पृथ्वीराज के समय का बना है क्योंकि उसमें बहुत सी इतिहास सम्बन्धी भूलें हैं और बहुत कुछ बेसिर पैर की गप्प मारी गई है। बस फिर क्या था। किसी ने तब तक उस ग्रन्थ को सम्पूर्ण पढ़ा तो था ही नहीं और न उसके विषय में अनुसंधान ही किया था। कविराजाजी का कहना ठीक माना गया और ग्रन्थ का प्रकाशन बन्द कर दिया गया। एशियाटिक सुसाइटी ने कभी भी हिन्दी के प्राचीन ग्रन्थों की ओर अपनी विशेष श्रद्धा प्रगट नहीं की। आजतक उसने केवल तीन ही ग्रन्थों के प्रकाशित करने का उद्योग किया अर्थात् पृथ्वीराजरासो, तुलसी सतसई और पद्-मावती। पहिला तो असमाप्त हो छोड़ दिया गया यद्यपि यह जान कर संतोष होता है कि उस सभा के सभापति ने गत वर्ष के वार्षिक अधिवेशन में यह आशा प्रगट की है कि प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों की खोज से सम्भव है कि रासो कहीं से आदि रूप में मिल जाय। तुलसी सतसई पूरी छपी और पद्मावती अभी कई वर्षों से छप रही है। इस अवस्था में यह आशा करना व्यर्थ था कि यह सुसाइटी इस अमूल्य ग्रन्थ रत्न के प्रकाशित करने का विशेष उद्योग करती। रहे हमारे देशवासी। इन में तब तक यह जागृति ही नहीं हुई थी कि वे अपनी मातृभाषा की

यह लेख द्वितीय हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के लिये लिखा गया था। पर उसके विवरण के प्रकाशित होने में विशेष विलंब जान कर सम्मेलन समिति के मंत्री की अनुमति से यह इस पत्रिका द्वारा प्रकाशित किया जाता है-लेखक।

सेवा करते और उसके प्राचीन इतिहास जानने का उद्योग करते। केवल पंडित मोहन लाल विष्णु लाल पंड्या ने कविराजा श्यामलदास जी के आक्षेपों का उत्तर एक पुस्तिका द्वारा दिया और रासो के प्रकाशित करने में हाथ लगाया, पर उत्साह न मिलने के कारण वे भी उत्साहहीन हो बैठे। निस्संदेह हमारे लिये यह बड़े आनन्द और सौभाग्य की बात है कि अब पढ़े लिखे लोगों का बहुत कुछ ध्यान अपनी मातृभाषा की ओर आकर्षित हुआ है और वे उस की सेवा में तत्पर हैं। सच बात तो यह है कि वह देश कदापि उन्नति की आशा नहीं कर सकता जिसके वासियों में अपने प्राचीन इतिहास और गौरव की ओर सम्मान दृष्टि न हो और जहां अपने महत्व को स्थिर रखते हुए आगे बढ़ने का उद्योग न हो। किसी किसी इतिहासवेत्ता विद्वान का तो यह भी मत है कि जो देशसेवक हैं, जिन्होंने किसी प्रकार अपने देश की सेवा कर उसका मुखोज्वल किया है उनका उनकी जीवनावस्था में ही सम्मान होना आवश्यक है। मरे पीछे तो सब के लिये रोया जाता है पर जीते जी किसी की प्रतिष्ठा करने से जो प्रभाव उसका दूसरों के चित्त पर पड़ता है वह मरे पीछे बहुत कुछ करने पर भी नहीं हो सकता। परन्तु हमारे देश की ऐसी अवस्था नहीं है कि लोग ईर्षा और द्वेष को छोड़ कर वास्तविक गुणग्राहकता कर सकें। निस्संदेह वह दिन परम सौभाग्य का होगा जब "गुनगाहक हिरानो" की उक्ति हम पर न लग सकेगी। जब तक यह अवस्था न प्राप्त हो तब तक प्राचीन महानुभावों के गुणगान से ही इस अभाव की पूर्ति करना और आगे के लिये वांछित अवस्था का मार्ग प्रशस्त करना प्रत्येक देशहितैषी का कर्तव्य होना चाहिए। हिन्दी जगत् में इस कार्य की ओर काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने सराहनीय उद्योग किया है। प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों की खोज से जो हिन्दी ग्रन्थ रत्नों का पता लगा है और उनके ग्रन्थकारों के नाम विदित हुए हैं उससे हिन्दी भाषा के इतिहास का बहुत कुछ गौरव बढ़ा है। पर दुःख इस बात का है कि इस खोज की जो रिपोर्टें प्रकाशित हुई हैं उनसे हिन्दी प्रेमियों ने कोई विशेष लाभ नहीं उठाया। मुझे आशा है कि पंडित श्याम विहारी मिश्र को हिन्दी के इतिहास लिखने में इन से बहुत कुछ सहायता मिली होगी, परन्तु साधारणतः इन रिपोर्टों का कोई उपयुक्त उपयोग नहीं किया गया। दो एक महाशयों ने जिनसे विशेष न्याय की आशा थी इन रिपोर्टों को गद्दी के भाव तोला है। अस्तु इस उपेक्षा का यह भी कारण हो सकता है कि इन रिपोर्टों का मूल्य गवर्नमेंट ने अधिक रक्खा है और उनका मुख्यांश अंग्रेजी में लिखा गया है। पर इस त्रुटि की पूर्ति बड़ी सुगमता से हो सकती है। आशा है हमारे मित्र पंडित श्याम विहारी मिश्र इस ओर ध्यान देंगे। अस्तु इस स्थान पर यह कहना कदाचित् अनुचित नहीं होगा कि चन्द बरदाई और उसके रासो के विषय में हमें जो कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ है वह विशेष कर इसी खोज की रिपोर्टों की कृपा से हुआ है।

यह बात सर्वसम्मत है कि इस्वी सन् के २५० वर्ष पहिले भारतवर्ष के उत्तर में एक भाषा बोली जाती थी जिसकी उत्पत्ति प्राचीन काल की

वैदिक संस्कृत से हुई और जो समय पाकर नित्य प्रति के व्यवहार की साधारण भाषा हो गई। इस भाषा का नाम प्राकृत था। इस के साथ ही साथ एक दूसरी परिष्कृत और संस्कार युक्त भाषा का पढ़े लिखे लोगों में प्रचार था। यह संस्कृत नाम से प्रसिद्ध हुई और अब तक उसी नाम से प्रसिद्ध है।

इस प्राकृत भाषा में ही प्रियदर्शी सम्राट् अशोक के आज्ञापत्र जो अचलों चट्टानों पर खुदे हुए पाए जाते हैं लिखे हुए हैं। उनके देखने और अध्ययन करने से यह स्पष्ट विदित होता है कि उस समय प्राकृत भाषा दो मुख्य भागों में विभक्त थी-एक पश्चिमी और दूसरी पूर्वी। पश्चिमी प्राकृत का दूसरा नाम सौरसेनी था। इससे गुर्जरी, अवन्ती, सौरसेनी और महाराष्ट्री इन भाषाओं की उत्पत्ति हुई। इसी सौरसेनी से हमारी हिन्दी भाषा ने जन्म ग्रहण किया, पर यह जन्म किस वर्ष में हुआ इसका निश्चय करना बड़ा कठिन है। शिवसिंह सरोज के अनुसार तो हिन्दी का आदि कवि पुष्य है पर न तो उसके किसी ग्रन्थ का और न उसकी भाषा का ही कहीं कुछ पता लगता है। दूसरा ग्रन्थ खुमान रासो * है जो सन् ८३० में लिखा गया था, पर इस ग्रन्थ की जो प्रतियां अब विद्यमान हैं उनमें महाराणा प्रतापसिंह का भी वृत्तान्त सम्मिलित है, जिससे यह मानना पड़ेगा कि इसकी भाषा जैसी कि अब यह वर्तमान है नौवीं शताब्दी की नहीं कही जा सकती। तीसरा प्रसिद्ध कवि जिसके विषय में हमें कुछ वास्तविक वृत्तान्त विदित है वह चन्द बरदाई है। इसने एक ऐसी भाषा में ग्रन्थ लिखा है जो प्राकृत के अन्तिम रूप और हिन्दी के आदि रूप से बहुत कुछ मिलती जुलती है। इससे यह सिद्धान्त होता है कि उस समय भाषा का रूपान्तर हो रहा था। इसके अतिरिक्त प्राकृत का अन्तिम वैयाकरण हेमचन्द भी ११५० के लगभग वर्तमान था। इसलिये जहां तक अभी पता चला है चन्द को ही हिन्दी का आदि कवि मानना पड़ता है और हिन्दी भाषा की उत्पत्ति का काल ११वीं शताब्दी नियत करना पड़ता है। यदि अनुसंधान करने पर और ग्रन्थों का पता लग गया तो इस मत को छोड़ना पड़ेगा परन्तु जब तक यह न हो, इसी सिद्धान्त को स्थिर मानना चाहिए।

अस्तु चन्द बरदाई का नाम हिन्दी और ऐतिहासिक समाज में प्रसिद्ध है। वह हिन्दुओं के अंतिम सम्राट् पृथ्वीराज चौहान का लँगोटिया मित्र और उनके दर्बार का कविराज था। वह भट्ट जाति के, जो आज कल राव कहलाती है, जगात नामक गोत्र का था और उसके पुर्खा पंजाब के रहने वाले थे और उनकी यजमानी अजमेर के चौहानों के यहां थी। चन्द का जन्म लाहौर में हुआ था *। ऐसा कहा जाता है कि

* मुझे बड़े दुःख के साथ यह लिखना पड़ता है कि अनेक वर्षों के उद्योग के अनन्तर मैंने इस ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त की थी और काशी नागरीप्रचारिणी सभा के पास ग्रंथमाला में प्रकाशित करने के लिये भेजी थी पर कोई दस महीने रख छोड़ने के अनन्तर बिना उसकी प्रति लिए उसके मालिक के मांगने पर वह लौटा दी गई। सो, ऐसा अच्छा अवसर इस ग्रन्थ की जांच का हाथ से जाता रहा।

* "जन्म उर्वाज लाहौरह

चन्द का जन्म उसी दिन हुआ था जिस दिन पृथ्वीराज ने जन्म ग्रहण किया और दोनों ने इस असार संसार को भी एक ही संग छोड़ा ।* जैसा कि आगे लिखा जायगा पृथ्वीराज का जन्म संवत् १२०५ में और मृत्यु १२४८ में हुई । इस हिसाब से चन्द का समय ईस्वी की बारहवीं शताब्दी के अंतिम अर्ध भाग में मानना चाहिए। उसके पिता का नाम वेण और विद्यागुरु का गुरुप्रसाद था । वह षट् भाषा, व्याकरण, काव्य, साहित्य, छंदःशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, मंत्रशास्त्र, पुराण, नाटक और गान आदि विद्याओं में अच्छा व्युत्पन्न था । उसे भगवती जालन्धरी देवी का इष्ट था और अपने आराध्यदेव की कृपा से वह अदृष्ट काव्य भी कर सकता था । चन्द के जीवन चरित्र की विशेष घटनाएं पृथ्वीराज के चरित्र के साथ इस भांति मिली हुई हैं कि वे अलग नहीं हो सकतीं ।

पृथ्वीराज का नाम भारतवर्ष के इतिहास में सदा स्मरणीय बना रहेगा । हिन्दू साम्राज्य का अन्त इसी के साथ समझना चाहिए । आपस की कलह और परस्पर के वैर विरोध ने भारत वर्ष का नाश किया । यही कारण पृथ्वीराज के भी अधःपतन का हुआ । पृथ्वीराज सोमेश्वर का पुत्र तथा अर्णोराज का पौत्र था । सोमेश्वर का विवाह दिल्ली के तोंवर राजा अनंगपाल की कन्या से हुआ था । अनंग पाल की दो कन्याएं थीं ।

अनगपाल पुत्री उभय, इक दीनी विजपाल ।
इक दीनी सोमेस कों, बीज बअन कलिकाल ॥
एक नाम सुर सुंदरी, अनिवर कमला नाम ।
दरसन सुर नर दुल्लहो, मनो सु कलिका काम ॥

अतएव अनंगपाल की सुन्दरी नाम कन्या का विवाह कन्नौज के राजा विजयपाल के संग हुआ और इस संयोग से जयचन्द राठौर की उत्पत्ति हुई । दूसरी कन्या कमला का विवाह अजमेर के चौहान सोमेश्वर से हुआ और इनकी संतति पृथ्वीराज हुआ । अनंगपाल को कोई पुत्र न होने के कारण उसने अपने नाती पृथ्वीराज को गोद लिया : इससे अजमेर और दिल्ली का राज्य एक हो गया । यह बात कन्नौज के राजा जयचन्द को न भाई क्योंकि वह कहता था कि दिल्ली के सिंहासन पर मुझे बैठना चाहिए न कि पृथ्वीराज को । परन्तु विवाह के पूर्व विजयपाल ने अनंगपाल पर चढ़ाई की थी और उस समय सोमेश्वर ने तोंवरराज की सहायता की थी । इसी कारण अनंगपाल का कमला पर अधिक स्नेह था । अस्तु इसी डाह के कारण जयचन्द्र ने समय पाकर राजसूय यज्ञ किया और भिन्न भिन्न स्थानों के राजाओं को यज्ञ का सब कार्य करने के लिये न्योता भेजा । पृथ्वीराज भी निमंत्रित हुए पर उन्होंने जयचन्द के घर जाकर दासकृत्य करना स्वीकार नहीं किया । जयचन्द ने अपनी कन्या संयोगिता का स्वयंवर भी इसी समय रचा । संयोगिता की माता कटक के सोमवंशी राजा मुकुंददेव की कन्या थी । पृथ्वीराज से और संयोगिता से बिना एक दूसरे को देखे एक दूसरे का वृतान्त जानने ही से आन्तरिक प्रेम हो गया था पर तिस पर भी वह यज्ञ में नहीं गया । जयचन्द ने जब यह देखा कि सब राजे तो आगए पर पृथ्वीराज नहीं आया तो उसे बड़ा क्रोध आया और उसने पृथ्वीराज की एक स्वर्ण

* "इक दीह ऊपन्न इक्क दीहै समाय क्रम ।"

मूर्ति बनवा कर द्वार पर रखवा दी। ऐसा करने से उसका आशय यह प्रगट करने का था कि यद्यपि पृथ्वीराज नहीं आया पर उसकी प्रतिष्ठा ऐसी है कि वह आकर इस यज्ञ के समय द्वारपाल का कार्य करता। निदान जब स्वयंवर का समय आया तो जयचन्द की कन्या जयमाल लेकर निकली। सब राजाओं को देखते देखते उसने अन्त में आकर पृथ्वीराज की मूर्ति के गले में माला डाल दी और इस प्रकार अपने गाढ़ तथा गूढ़ प्रेम का पूर्ण परिचय दिया। यह बात जयचन्द को बहुत बुरी लगी। उसने अपनी कन्या का मन फेरने के लिये अनेक उद्योग किए पर जब किसी प्रकार सफलता नहीं हुई तो गंगा के किनारे एक महल में उसे एकान्तवास का दंड दे दिया। इधर पृथ्वीराज के सामन्तों ने आकर जयचन्द उसका यज्ञ विध्वंस कर दिया। जब पृथ्वीराज को सब वृत्तान्त विदित हुआ तो उसने छिप कर कन्नौज आने की तय्यारी की। प्रगट रूप में तो चंद बरदाई आया पर वास्तव में पृथ्वीराज अपनी सामंत मंडली सहित पहुंच गया। निदान किसी प्रकार जयचन्द को यह वृत्तान्त प्रगट हो गया और उसने चंद का डेरा घेर लिया। बस फिर क्या था युद्ध प्रारम्भ हो गया। इधर लड़ाई हो रही थी उधर पृथ्वीराज छिपा हुआ कन्नौज की सैर कर रहा था। घूमते घूमते वह उसी महल के नीचे जा पहुंचा जहां संयोगिता कैद थी। दोनों की आंखें चार होते ही परस्पर मिलने की इच्छा प्रबल हो उठी। सखियों की सहायता से दोनों का मिलाप हुआ और वहीं गन्धर्व विवाह करके दोनों ने सदा के लिये अपना सम्बन्ध स्थापित किया। इसके अनन्तर पृथ्वीराज अपनी सेना में आमिला। सामंतों ने मुख छवि देख कर मामला समझ लिया और उसे बहुत कुछ धिक्कारा कि वह अकेला ही क्यों चला आया और अपनी नवविवाहिता दुलहिन को क्यों नहीं साथ लाया। इस पर लज्जित हो पृथ्वीराज पुनः संयोगिता के पास गया और उसे अपने घोड़े पर चढ़ा अपनी सेना में ले आया। बस फिर क्या था, संयोगिता को इस प्रकार हरी जानकर पंगसेना चारों ओर से उमड़ आई और बड़ा भयानक युद्ध प्रारम्भ हुआ। निदान युद्ध होता जाता था और पृथ्वीराज धीरे धीरे दिल्ली की ओर बढ़ता जाता था। बहुत से सामन्त मारे गए, सेना की बड़ी हानि हुई पर अन्त में पृथ्वीराज अपनी राज्य सीमा में जा पहुंचा और जयचन्द ने हार मानी। इसके अनन्तर उसने बहुत कुछ दहेज भेज कर दिल्ली में ही पृथ्वीराज और संयोगिता का विधिवत विवाह करा दिया। अब तो पृथ्वीराज को राजकाज सब भूल गया केवल संयोगिता संयोगिता के ही ध्यान और रस विलास में सारा समय बीतने लगा। इस युद्ध में ही बल का ह्रास हो चुका था। जो कुछ बचा बचाया था उसे इस राग रंग ने नष्ट कर दिया। यह अवसर उपयुक्त जान शहाबुद्दीन चढ़ आया। बड़ी गहरी लड़ाई हुई पर अन्त में पृथ्वीराज हारा और बंदी हो गया। कुछ काल के पीछे चंद भी पृथ्वीराज के पास गजनी पहुंच गया और वहां दोनों एक दूसरे के हाथ से स्वर्ग धाम को पधारे। शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज का बैर पुराना था। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ था। शहाबुद्दीन एक नवयौवना सुंदरी पर

आसक्त था जो उसे नहीं चाहती थी। वह हुसेन शाह पर आसक्त थी। शहाबुद्दीन के उस युवती और हुसेन शाह को बहुत दिक्क करने पर वे दोनों भागकर पृथ्वीराज की शरण चले आए। उस समय तक हिन्दुओं में इतनी वीरता और इतना आतिथ्य धर्म वर्तमान था कि वे शरणागत के साथ कभी विश्वासघात न कर के सदा उसकी रक्षा करते थे। जब शहाबुद्दीन को यह प्रगट हुआ तो उसने पृथ्वीराज को कहला भेजा कि तुम उस स्त्री और उसके प्रेमी को अपने देश से निकाल दो। पृथ्वीराज ने उत्तर भेजा कि शरणागत की रक्षा करना क्षत्रियों का धर्म है, उन्हें निकालना तो दूर रहा मैं सदा उनकी रक्षा करूंगा। बस अब क्या था शहाबुद्दीन दिल्ली पर चढ़ दौड़ा। कई युद्ध हुए जिनका वर्णन पढ़कर इस समय भी हिन्दू हृदय रोमांचित और वीर रस पूर्ण हो जाता है।

इन्हीं घटनाओं को चन्दबरदाई ने अपने ग्रंथ में अत्यन्त विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। हिंदी भाषा में यह ग्रंथ अपनी समता नहीं रखता। यह ग्रंथ ६९ अध्यायों में विभक्त है जिनका मैं संक्षेप में नीचे वर्णन करता हूं।

(१) आदि पर्व इसमें चौहानों की उत्पत्ति, बीसलदेव अर्णोराज और सोमेश्वर आदि का वृत्तान्त तथा पृथ्वीराज की जन्म कथा है।

(२) दसम समय-इसमें दसावतारों की कथा है।

(३) दिल्ली किल्ली कथा इसमें राजा अनङ्गपाल के किल्ली गड़वाने और प्रोहित के कहने पर विश्वास न करके उसके उखड़वाने की कथा है जो पृथ्वीराज की माता ने अपने पुत्र से कही।

(४) लोहाना आजानबाहु समय इसमें लोहाना के ३२ हाथ ऊंचे गौख से कूदने की कथा है। पृथ्वीराज ने अपने सामंतों से कहा था कि जो इतने ऊंचे से कूदेगा उसे मैं बहुत कुछ पुरस्कार दूंगा। लोहाना कूदा पर उसे बड़ी चोट आई। अच्छा होने पर पृथ्वीराज ने उसे बहुत कुछ इनाम दिया। जो जागीर मिली उसमें ओछा भी था। वहां के राजा जसवंत सिंह ने लोहाना से लड़ाई ली पर अन्त में हार कर उसकी अधीनता स्वीकार की।

(५) कन्ह पट्टी समय—गुजरात का चालुक्य राजा भीमदेव था। उसके भाई सारंगदेव के सात पुत्र थे। प्रताप सिंह को जो अपने बाप सारंग देव की गद्दी मिली तो वह प्रजा को बड़ा कष्ट देने लगा, इस पर भीमदेव बिगड़ उठा। अन्त में सातों भाई भागकर पृथ्वीराज के पास चले आए। एक दिन वे दर्बार में बैठे थे जब कि प्रताप सिंह ने अपनी मूछों पर हाथ फेरा। यह बात कन्ह को असह्य हुई। उसने चट तलवार निकाल कर प्रताप सिंह का सिर उड़ा दिया। इस पर सब भाई बिगड़ उठे। घोर युद्ध हुआ जिसमें चालुक्यों की हार हुई। पर पृथ्वीराज इस घटना पर बड़ा अप्रसन्न हुआ। उसने कन्ह को बुलाकर उसकी आंखों पर पट्टी बांध दी जो केवल सोने और युद्ध के समय खोली जाती थी। कन्ह की वीरता द्रोणाचार्य या रावण के समान कही गई है।

(६) आखेटक वीरवरदान—एक समय पृथ्वीराज शिकार खेलने गया। संग में चंद भी था। शिकार के पीछे दौड़ते दौड़ते चन्द अलग हो

गया और वह एक निर्जन स्थान पर पहुंचा जहां एक ऋषि तपस्या करते थे। उन्होंने एक मंत्र चंद को बताया जिसके जपने से ५२ वीर आ उपस्थित होते थे और वांछित सहायता देते थे। चंद ने इस मंत्र की परीक्षा की और वीरों का परिचय पाया।

(७) नाहरराय कथा—मंडोवर के पड़िहार राजा नाहरराय ने प्रतिज्ञा की थी कि जब पृथ्वीराज १६ वर्ष का होगा तो मैं अपनी कन्या का विवाह उससे कर दूंगा पर जब सोमेश्वर ने दूत भेजकर विवाह कराने को कहा तो उसने इंकार कर दिया। इस पर पृथ्वीराज चढ़ दौड़ा। नाहरराय की हार हुई और पृथ्वीराज ने उसकी कन्या से विवाह किया।

(८) मेवाती मुगल कथा—मेवात के राजा मुद्गलराज को सोमेश्वर ने कहला भेजा कि हमें यथानियम वार्षिक कर दिया करो। पर उसने इसकी कुछ परवाह नहीं की। इसपर सोमेश्वर ने उसपर चढ़ाई की। घोर युद्ध हुआ जिसमें मेवाती राजा की हार हुई। इस युद्ध में पीछे से पृथ्वीराज भी सम्मिलित हुआ था।

(९) हुसेन कथा—इसमें शहाबुद्दीन के चचेरे भाई मीर हुसेन और चित्ररेखा नामक वेश्या के पृथ्वीराज के शरणागत आने की कथा है जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज पर चढ़ाई की पर हारकर कैद हो गया। पीछे से पृथ्वीराज ने दया कर उसे छोड़ दिया।

(१०) आखेटक चूक वर्णन—पृथ्वीराज नागौर के खट्टू बन में शिकार खेल रहा था। यह मौका अच्छा समझ कर शहाबुद्दीन ने उसे जा घेरा पर अन्त में उसकी हार हुई और वह गजनी भाग गया।

(११) चित्ररेखा समय—सिंध के हिन्दू राजा की चित्ररेखा नामक वेश्या थी। शहाबुद्दीन ने उस पर चढ़ाई की पर लड़ाई होने के पहिले ही सिंध का राजा मुसल्मान हो गया और शहाबुद्दीन के मांगने पर उसने अपनी चित्ररेखा नामक वेश्या उसके अर्पण की और उसका दासत्व स्वीकार किया। अन्त में इस वेश्या का प्रेम मीर हुसेन से होगया जो उसे लेकर पृथ्वीराज के पास भाग आया।

(१२) भोलाराय समय—गुजरात के राजा भोलाराय भीमदेव ने आबू के राजा सलष पँवार पर चढ़ाई की। सलष पंवार की दो कन्याएं मंदोदरी और इंछनी थीं। मंदोदरी का विवाह भोलाराय के संग हुआ था। भोलाराय इंछनी को भी व्याहा चाहता था पर सलष ने उसका सम्बन्ध पृथ्वीराज से स्थिर किया था। जब सलष ने भोलाराय का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया तो वह उस पर सेना ले चढ़ आया। इधर सलष ने पत्र लिखकर पृथ्वीराज को सब सूचना दे दी। इस खबर को पाकर भोलाराय ने चढ़ाई पर शीघ्रता की। घोर युद्ध हुआ जिसमें सलष पंवार मारा गया और आबू पर भोलाराय का अधिकार हो गया। पृथ्वीराज इस समय नागौर में था। उसने झट सेना की तय्यारी की। दोनों का सामना हुआ, भोलाराय मारा गया और पृथ्वीराज की जय हुई।

(१३) सलष युद्ध समय—इसी समय शहाबुद्दीन भी आ पहुंचा। सलष पंवार का लड़का जैतसी

भी पृथ्वीराज की सहायता पर आ गया। इस युद्ध में शहाबुद्दीन हारा और बंदी होगया।

(१४) इंछनी व्याह कथा–इस खंड में जैतसी की बहिन इंछनी के पृथ्वीराज के संग व्याह होने का वर्णन है।

(१५) मुगल युद्ध कथा–जिस समय पृथ्वीराज इंछनी को व्याह कर आबू से दिल्ली लौट रहा था उस समय मेवात के मुगल सरदार ने पुराना बैर स्मरण कर पृथ्वीराज से बदला लेने की ठानी। जो युद्ध हुआ उसमें मुगल सरदार की हार हुई और वह क़ैद होगया।

(१६) पुंडीर दाहिमी विवाह कथा–इस अध्याय में चंद पुंडीर की कन्या तथा कैमास की दोनों बहिनों के साथ पृथ्वीराज के विवाह की कथा है।

(१७) भूमि स्वप्न प्रस्ताव–इस अध्याय में पृथ्वीराज के शिकार खेलने का वर्णन है। शिकार के अनन्तर पृथ्वी में असंख्य धन गड़े रहने के शुभ चिन्ह देख पड़े और राजधानी में लौटने पर खट्टू बन में धन गड़े रहने का पृथ्वीराज को स्वप्न भी हुआ।

(१८) दिल्ली दान प्रस्ताव–इस प्रस्ताव में पृथ्वीराज के दिल्ली गोद जाने की कथा है।

(१९) माधो भाट कथा–इस प्रस्ताव में शहाबुद्दीन के एक अन्तरंग चर माधो भाट के दिल्ली आने और वहां के सब समाचार ले जाने का वर्णन है। गज़नीपति समय अनुकूल जान दिल्ली पर चढ़ आया पर लड़ाई में हार कर बंदी होगया।

(२०) पद्मावती विवाह कथा–समुद्रशिखरगढ़ के राजा विजयपाल की कन्या पद्मावती के संग पृथ्वीराज के विवाह की कथा है। जब पृथ्वीराज विवाह कर लौटा आ रहा था तो शहाबुद्दीन ने उसे आ घेरा पर उसकी पराजय हुई और वह क़ैद होगया।

(२१) पृथा विवाह कथा–इस प्रस्ताव में पृथ्वीराज की बहिन पृथाबाई के चित्तौरगढ़ के रावल समरसी के संग विवाह होने का वृत्तांत है।

(२२) होली कथा–इस प्रस्ताव में चंद होलिका कथा का वर्णन करता है।

(२३) दीपमालिका कथा–इस प्रस्ताव में कवि चंद दीपमालिका कथा का वर्णन करता है।

(२४) धन कथा–इसमें खट्टू बन में ज़मीन के नीचे गड़ा हुआ धन निकालने तथा शहाबुद्दीन से लड़ाई होने की कथा है।

(२५) शशिवृता वर्णन–देवगिरि के सोमवंशी राजा भानराय यादव की कन्या शशिवृता का हाल एक नट द्वारा जानकर पृथ्वीराज उस पर आसक्त होगया। इस कन्या की सगाई कन्नौज के राजा के भतीजे के संग हुई थी पर शशिवृता पृथ्वीराज पर मोहित थी। निदान इधर पंग सेना बरात लेकर आई और उधर पृथ्वीराज भी गुप्त रीति से आ पहुंचा और अवसर पाकर शशिवृता को ले भागा। पंग सेना ने पीछा किया पर पृथ्वीराज को वह पकड़ न सकी। अन्त में यादव ने सादर पृथ्वीराज को बिदा किया।

(२६) देवगिरि समय–जयचन्द के भतीजे वीरचन्द को यह हार बड़ी दुखद प्रतीत हुई। उसने देवगिरि का किला घेर लिया और सहायता के लिये कन्नौज से सेना मंगाई। इधर पृथ्वीराज भी अपने ससुर की सहायता पर आ पहुंचा। जब अनेक उद्योग करने पर भी किला न टूट सका

तो जयचन्द ने अपनी सेना की बाग मोड़ी और वह अपने राज्य को लौट आया।

(२७) रेवा तट समय—रेवा तट के रम्य वन में पृथ्वीराज शिकार खेलने गया। वहां गजनी की सेना ने उसपर आक्रमण किया पर जीत पृथ्वीराज की ही हुई।

(२८) अनंगपाल समय—इधर मालवा के राजा ने सोमेश्वर पर चढ़ाई की और उधर अनंगपाल यह सुनकर कि पृथ्वीराज उनके कर्मचारियों को छुड़ाकर अजमेर के लोगों को अपनी सेवा में नियुक्त कर रहा है, बदरिकाश्रम से अपना राज्य लौटाने की चेष्टा में लगा। मालवा के राजा की हार हुई और पृथ्वीराज ने राज्य लौटाना अस्वीकार किया। इस समय शहाबुद्दीन अनंगपाल की सहायता के लिये उद्यत हो बैठा। युद्ध में अनंगपाल की हार हुई। पृथ्वीराज ने उसे बड़े आदर से अपने पास रक्खा और शहाबुद्दीन को कैद कर लिया। अन्त में एक वर्ष दिल्ली में रहकर अनंगपाल बदरिकाश्रम को लौट गया।

(२९) घघर नदी का युद्ध—पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन का युद्ध जिसमें कन्ह ने शाह को कैद कर लिया।

(३०) करनाटी पात्र समय—इस युद्ध के अनन्तर पृथ्वीराज ने कर्नाट देश पर चढ़ाई की। सब राजाओं ने मिलकर कर्नाट देशीय एक परम सुंदरी वेश्या पृथ्वीराज के अर्पण की। इस वेश्या की उपयुक्त शिक्षा का प्रबन्ध किया गया और वह समय पाकर रूप गुण लावण्य से सुशोभित हुई।

(३१) पीपा युद्ध—पृथ्वीराज ने जयचन्द पर चढ़ाई करने की तय्यारी की पर शहाबुद्दीन ने आ रास्ता रोका। लड़ाई हुई जिसमें पीपा पड़िहार ने शहाबुद्दीन को बंदी कर लिया।

(३२) करहरा युद्ध—पृथ्वीराज मालवा देश में शिकार खेलने गया। उज्जैन के राजा ने इसका बड़ा आदर सत्कार किया और अपनी कन्या इंद्रावती का पाणिग्रहण भी पृथ्वीराज के साथ कर देने की प्रतिज्ञा की, टीका चढ़ा और विवाह पक्का हुआ। इसी समय समाचार आया कि गुर्जर नरेश भीमदेव चालुक्य ने चित्तौर पर चढ़ाई की है। पृथ्वीराज समरसिंह की सहायता के लिये चल दिया और पज्जूनराय को उसने खड्ग बँधा कर उज्जैन विवाह निमित्त भेजा। इस युद्ध में भीमदेव ने हार मानी और वह भाग गया।

(३३) इन्द्रावती विवाह—उज्जैनपति ने खड्ग के साथ इन्द्रावती का विवाह करना स्वीकार नहीं किया। इस पर बहुत कुछ विवाद और विग्रह हुआ। अन्त में खड्ग के संग विवाह किया गया और सामंत मंडली इन्द्रावती को लेकर दिल्ली चली आई।

(३४) जैतराव युद्ध—खट्टू वन में पृथ्वीराज शिकार खेल रहा था। इसी समय शहाबुद्दीन ने कहला भेजा कि हुसैन खां को हमें दे दो। पृथ्वीराज ने यह न माना। शहाबुद्दीन दलबल सहित चढ़ आया। लड़ाई हुई जिसमें जैतराव ने उसे पकड़ लिया।

(३५) कांगुरा युद्ध प्रस्ताव—जालंधरी रानी ने पृथ्वीराज से कहा कि आपने मेरे लिये कांगड़े का किला दिला देने का वचन दिया था सो इसे खाली करा दीजिए। पृथ्वीराज ने वहां के राजा को कहला भेजा कि किला खाली करदो नहीं तो

युद्ध करो। राजा ने लड़ाई स्वीकार की पर इसमें उसकी हार हुई। पृथ्वीराज ने इसकी कन्या से विवाह करना स्वीकार किया।

(३६) हंसावती नाम प्रस्ताव—रणथंभ के यादव वंशी राजा भान की हंसावती नाम परम सुन्दरी कन्या थी। चँदेरी का शिशुपाल वंशी राजा पंचाइन उससे विवाह किया चाहता था। उसने अपना संदेसा राजा भान के पास कहला भेजा पर उस ने स्वीकार नहीं किया। इस पर पंचाइन एक बड़ी सेना ले रणथंभ गढ़ पर चढ़ दौड़ा और शहाबुद्दीन को भी अपनी सहायता पर लाया। शहाबुद्दीन ने एक सेना पंचाइन की सहायता के लिये भेज दी। राजा भान ने यह अवस्था देख पृथ्वीराज से सहायता मांगी। पृथ्वीराज झट सेना ले चल पड़ा और उसने चित्तौरपति को भी सब समाचार कहला भेजा। वे भी रणथंभ की ओर चल पड़े। युद्ध हुआ जिसमें पंचाइन मारा गया और रणथंभ गढ़ की जीत हुई। वहां से पृथ्वीराज शिकार खेलने चला गया। मंगल गढ़ में राजा सारंग ने बदला लेने का यह अवसर अच्छा जान पृथ्वीराज को न्योता दिया। जब वे किले में आए तो उन्हें अकेला जान घेर लिया पर बाहर सामंतों ने सहायता की। सारंग ने हार मानी और अपनी बहिन समर सिंह को ब्याह दी। इसके अनन्तर जब विवाह का दिन निकट आया तो पृथ्वीराज ने रणथंभ गढ़ जाकर हंसावती को ब्याहा।

(३७) पहाड़ राय समय—शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज पर आक्रमण किया, और युद्ध हुआ जिसमें पहाड़ राय ने शहाबुद्दीन को पकड़ लिया।

(३८) बरुण कथा—एक समय चन्द्र ग्रहण अवसर पर सोमेश्वर यमुना स्नान करने गए। वहां कुछ ऐसा दैवी उत्पात हुआ कि सोमेश्वर मूर्छित होगए। पृथ्वीराज ने उन की उस समय रक्षा की।

(३९) सोमवध—गुजरात का राजा सोलंकी भीम देव था। वह पृथ्वीराज से बुरा मानता था इस लिये उसने अजमेर पर चढ़ाई की। सोमेश्वर युद्ध करने पर सन्नद्ध हुए। लड़ाई में सोमेश्वर मारे गए। पृथ्वीराज अजमेर की गद्दी पर बैठा।

(४०) पज्जून छोगा नाम प्रस्ताव—गुजरात में राजा भीम देव के अकारण अजमेर पर चढ़ आने के कारण पृथ्वीराज बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने पज्जून राय कछवाहे को उसके पुत्र मलय सिंह के साथ भीमदेव के पास भेजा। दोनों ने बड़ा उत्पात मचाया। लड़ाई कर के वह भीमदेव का फिर मोहन छोगा आदि लेकर दिल्ली चला आया।

(४१) पज्जून चालुक प्रस्ताव—जब हिंदू ने देखा कि सीधी चाल से चौहान नहीं दबता तो उसने अपने भाई बलुका राय को सहायक सेना देकर शहाबुद्दीन से दिल्ली पर चढ़ाई कराई। इस समय पृथ्वीराज पिता की मृत्यु के कारण अशौच में था। इस लिये उस ने पज्जून राय को सेना नायक बनाकर संयुक्त शत्रु सेना के मुकाबिले पर भेजा। लड़ाई में पज्जून राय की जीत हुई।

(४२) चंद द्वारिका गमन—एक समय चंद ने पृथ्वीराज की आज्ञा से द्वारिका पुरी की यात्रा की। पहिले वह सिमोर गया। वहां से पट्टनपुर होता हुआ वह द्वारिका गया। लौटकर वह पुनः पट्टनपुर आया। वहां उस से और पट्टनपुर के भाट जगदेव से कुछ विवाद होगया। चंद ने अपनी

शक्ति का चमत्कार दिखाया पर यह समाचार पाकर कि शहाबुद्दीन ने चढ़ाई की है वह शीघ्र दिल्ली लौट गया।

(४३) कैमास युद्ध—इस में पृथ्वीराज और शाहबुद्दीन के युद्ध और कैमास द्वारा शाह के पकड़े जाने का वर्णन है।

(४४) भीम बध—अपने पिता का बध पृथ्वीराज को नहीं भूला। बदला लेने की इच्छा उसे सदा सताती रही। अवसर पाते ही वह भीमदेव पर चढ़ दौड़ा। घोर युद्ध हुआ जिसमें भीमदेव मारा गया और पृथ्वीराज की जय हुई।

(४५) विनय मंगल नाम प्रस्ताव—इस खण्ड में संयोगिता के पूर्व जन्म की कथा तथा जैचंद के सोम-वंशी राजा मुकुन्ददेव की कन्या से विवाह करने का वर्णन है। संयोगिता का जन्म ११३४ अनंद संवत् में हुआ।

(४६) विनय मंगल—इस प्रस्ताव में संयोगिता के शैशव काल की कथा तथा उसका मदन ब्राह्मणी के यहां विनय की शिक्षा पाने का वृतान्त है।

(४७) सुक वर्णन—इस खंड में सुक वेषधारी यक्ष के ब्राह्मण रूप धारण कर पृथ्वीराज के पास जाने और संयोगिता के रूप गुण की कथा सुना कर उस के मन को लुब्ध करने का वर्णन है।

(४८) बालुका राय प्रस्ताव—इस प्रस्ताव में जैचंद के यज्ञ करने का वर्णन है। जैचंद ने पृथ्वीराज के पास यज्ञ में आने का निमन्त्रण भेजा और दरबान कार्य करने को कहा। पृथ्वीराज बड़ा ही क्रोधित हुआ और सेना सज कर कनौज राज्य के स्थानों पर उसने आक्रमण कर दिया। जैचन्द का भाई मुकाबिले पर आया पर मारा गया।

(४९) पंगयज्ञ विध्वंस वर्णन—जिस समय जैचन्द यज्ञ क्रिया में व्यस्त था उसी समय बालुका राय ने आकर पुकार की और दुखड़ा रो सुनाया जैचन्द ने शीघ्र ही दिल्ली पर आक्रमण करने की तय्यारी करदी।

(५०) संयोगिता नाम प्रस्ताव—पंगसेना ने दिल्ली पर चढ़ाई की पर जय पृथ्वीराज की हुई। इस के अनन्तर जैचंद ने संयोगिता का स्वयंवर रचा पर संयोगिता ने इसे स्वीकार नहीं किया। इस पर क्रुद्ध हो जैचंद ने उसे गंगा के किनारे एक महल में एकांतवास का दंड दिया।

(५१) हांसीपुर प्रथम युद्ध—यह युद्ध शहाबुद्दीन की सेना में और पृथ्वीराज की सामंत मंडली में हुआ अन्त में हांसीपुर का किला सामंत मण्डली के हाथ रहा।

(५२) द्वितीय हांसी युद्ध—हार का हाल सुनते ही शाह ने लड़ाई की फिर तय्यारी की। इधर पृथ्वीराज भी समरसिंह के साथ अपनी सेना सज कर शाह से लड़ने पर उद्यत हुआ। दोनों ओर से विशेष उद्योग किया गया पर शहाबुद्दीन हारा और पृथ्वीराज की जय हुई।

(५३) पज्जून महुवा प्रस्ताव—पृथ्वीराज ने हांसीपुर का किला पज्जून राय को दिया। उस समय शहाबुद्दीन ने महुवा पर चढ़ाई की। पज्जून ने शाही सेना पर आक्रमण किया और उसे मार हटाया।

(५४) पज्जून पातिसाह युद्ध प्रस्ताव—महुवा की हार शहाबुद्दीन को बड़ी खली। उसने एक दिन भरी सभा में प्रतिज्ञा की कि पज्जून का खून पी लूंगा तब पाग बांधूगा। सेना सज कर

वह नागौर में चला आया। वहां से उसने पज्जून को कहला भेजा कि या तो क़िला छोड़ कर चले जाओ या मुझसे लड़ाई लो। पज्जून लड़ने पर उद्यत हुआ, लड़ाई में पज्जून की जीत हुई और शहाबुद्दीन क़ैदी हो गया। पीछे से पृथ्वीराज ने उसे छोड़ दिया।

(५५) सामंत पंग युद्ध प्रस्ताव—जब जैचंद्र किसी प्रकार पृथ्वीराज को अपने बश न कर सका तब उसने यह नीति सोची कि पहिले समर सिंह से मैत्री कर के उसे अपनी ओर मिला लेना चाहिए। पर समर सिंह ने यह स्वीकार नहीं किया। इस पर जैचंद ने क्रुद्ध हो कर अपनी सेना के दो भाग किए,एक तो दिल्ली को भेजा,दूसरा चितौर को। दिल्ली को जो सेना गई वह हार खाकर लौट आई।

(५६) समर पंग युद्ध नाम प्रस्ताव—जो सेना-भाग चितौर को गया उसके अनेक उद्योगी करने पर भी समरसिंह पराजित न हुए वरन अन्त में उन्हीं की जय हुई और पंग सेना उल्टी कनौज को लौट आई।

(५७) कैमास बध समय—पृथ्वीराज शिकार खेलने गया हुआ था। कैमास दिल्ली में था। एक दिन संयोग बश कैमास की और कर्नाटी वेश्या की आंखे चार होगई। दोनों एक दूसरे पर लोलुप हो पड़े। यह समाचार रानी इंछनी ने पृथ्वीराज के पास भेज दिया। पृथ्वीराज छिपा छिपा दिल्ली आया और अपनी आंखों से सब हाल देख कर उसे बड़ा कोप हुआ। उस समय एक तीर से उसने कैमास का काम तमाम किया। दासी महल से निकल भागी और जैचंद के यहां चली गई।

(५८) दुर्गा केदार समय—शहाबुद्दीन का दर्बार कवि केदार पृथ्वीराज के पास आया। उसने अपना कला कौशल बहुत कुछ दिखाया जिस पर प्रसन्न हो पृथ्वीराज ने उसे बहुत कुछ इनाम दिया। केदार ने लौट कर शहाबुद्दीन को सब हाल सुनाया। उस ने उसी समय चढ़ाई की तय्यारी कर दी। इस का समाचार केदार ने अपने भाई के हाथ पृथ्वीराज के पास भेज दिया। पृथ्वीराज भी सबद्ध हो बैठा। जब दोनों सेनाओं का साम्हना हुआ तो घोर युद्ध मचा। अन्त में शाह पकड़ा गया और पृथ्वीराज की जय हुई।

(५९) दिल्लीवर्णन—इस खंड में दिल्ली की शोभा का तथा राजकुमार रेनसी की बाल क्रीड़ा का बर्णन है।

(६०) जंगम कथा—इस प्रस्ताव में कनौज से एक जंगम के दिल्ली आने की कथा तथा उस के संयोगिता के स्वयंबर का पूरा वृतान्त सुनाने का बर्णन है। पृथ्वीराज कनौज जाने को उद्यत हुआ। चंद ने बहुत समझाया पर उसने न माना।

(६१) कनवज कथा—इस प्रस्ताव में पृथ्वीराज के छिप कर कनौज जाने और वहां से संयोगिता को हर लाने की कथा है। इस का बर्णन प्रारम्भ में किया जा चुका है। यह प्रस्ताव बड़ा ही रोचक है।

(६२) शुक चरित—इस प्रस्ताव में, एक तोते द्वारा रानी इंछनी के पृथ्वीराज और संयोगिता की क्रीड़ा का समस्त वृतान्त जानने की कथा है।

(६३) आखेटक शाप प्रस्ताव—इस प्रस्ताव में पृथ्वीराज के शिकार खेलने की कथा है। शिकार में खबर लगी कि एक सिंह निकला है, पृथ्वीराज

उस के पीछे दौड़ा। उसे यह भ्रम हुआ कि सिंह एक गुहा में घुस गया। उसने उस के द्वारा पर आग लगवा कर धुआं करवाया। उस गुहा में एक तपस्वी तपस्या करता था उसे बड़ा कष्ट पहुंचा। वह बाहर निकल आया और क्रोध से भर कर उसने शाप दिया कि तैने मेरे नेत्रों को कष्ट पहुंचाया है अतः तेरा शत्रु तेरे दोनों नेत्र निकालेगा। चंद के बहुत कुछ प्रार्थना करने पर ऋषि ने वर दिया कि जो पृथ्वीराज का शत्रु भी उस के हाथों मरेगा।

(६४) धीर पुंडीर प्रस्ताव—इस खंड में धीर पुंडीर के विशेष पराक्रम दिखाने तथा शहाबुद्दीन को प्रतिज्ञानुसार पकड़ने की कथा है। अन्त में पुंडीर धोखे में पड़कर मारागया।

(६५) विवाह समय—इस में पृथ्वीराज के सब विवाहों का वर्णन है।

(६६) बड़ी लड़ाई समय-इस खंड में पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन के अंतिम युद्ध का वर्णन है जिस में पृथ्वीराज बंदी हुआ और गज़नी में कैद किया गया।

(६७) बान बेध समय—इस में पृथ्वीराज के दुःख उठाने तथा गज़नी में चंद के कौशल से शब्दबेधी बाण चलाने और शहाबुद्दीन को मारने तथा चंद और पृथ्वीराज के परस्पर एक दूसरे को मारने का वर्णन है।

(६८) राजा रैणसी नाम प्रस्ताव—इस खंड में रैणसी के गद्दी पर बैठने और शासन करने का वर्णन है।

(६९) महोबा खंड-इस खंड में पृथ्वीराज और परमर्दिदेव का युद्ध का वर्णन है। यह कथा संदिग्ध है तथा इस के क्षेपक रचित होने में संदेह है इसलिये यह अंत में रक्खा गया है

यह पृथ्वीराज रासो का सारांश है। इस में जिन जिन ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है उनपर विचार करने से लेख के बहुत बढ़जाने का भय है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से यह ग्रन्थ छप रहा है। आज कल बड़ी लड़ाई समय छपरहा है। शेष तीन समयों के छप जाने पर इस ग्रंथ की भूमिका में सब बातों पर सविस्तर विचार किया जायगा। इस लेख का उद्देश्य केवल दिग्दर्शनमात्र कराना है। अस्तु, कविचंद अपने रासो के आदि पर्व में अपने पूर्व के कवियों का इस प्रकार वर्णन करता है—

——— [अपूर्ण]

सभा का कार्यविवरण।

साधारण अधिवेशन।

शनिवार तारीख़ २४ फरवरी १९१२।

सन्ध्या के ५½ बजे। स्थान सभाभवन।

(१) पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के प्रस्ताव तथा बाबू जगन्नाथ दास शर्मा के अनुमोदन पर राय कृष्णदास गुप्त सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (तारीख़ २७ जनवरी १९१२) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के आवेदन पत्र उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए:-

१. ठाकुर राजबहादुर सिंह शर्मा मन्त्री आर्य समाज कटांवा-ज़ि० सुलतानपुर १॥) (२) बाबू हरी नारायण लाल-असीन-मठा-सत दीवानी-आज़मगढ़ १॥) (३) बाबू रघुबीर सिंह-मुन्सरिम-कक्ष अज बहादुर आज़मगढ़ १॥) (४) बाबू अमरनाथ शर्मा बी० ए० विद्याविनोद-१६। ३ ईडन हिन्दू हास्टल कलकत्ता १॥) (५) पण्डित जगन्नाथ प्रसाद पाण्डेय एम० ए०, बी० एल० काव्यतीर्थ-वकील मुज़फ्फरपुर ५) (६) बाबू राम सहाय लाल राम पुर-पो० एकमा-ज़िला सारन १॥) (७) लाला बाबू लाल-पैट्रन-मी सेवाय होस्टल मसूरी १॥) (८) पण्डित रामदीन दुबे मुनिसिपल आफ़िस-मसूरी १॥) (९) लाला सीता राम नं० ८

गोरे बाज़ार-मसूरी १॥) (१०) लाला मथुरा प्रसाद बजाज-सर्हौर बाज़ार-मसूरी १॥) (११) लाला रामलाल बजाज-सर्हौर बाज़ार मसूरी १॥) (१२) बाबू गंगा सहाय-म्युनिसिपल आफिस मसूरी १॥) (१३) पण्डित कालिकाप्रसाद त्रिवेदी वकील सीतापुर १॥ (१४) पण्डित गया प्रसाद तिवारी-वकील सीतापुर १॥) (१५) बाबू कमलसिंह-मंत्री-क्षत्रिय स्वजातीय-सभा कांडा गोरीबाज़ार ज़िला गोरखपुर १॥) (१६) बाबू आनन्दी लाल गुप्त-मंत्री सनातनधर्म सभा पो० जुनहरा भरतपुर राज्य १॥) (१७) बाबू शिवशङ्कर प्रसाद सब पोस्ट मास्टर-चोलापुर-ज़िला बनारस १॥) (१८) पण्डित पन्नालाल उपाध्याय प्रोप्राइटर मेडिकल हाल गाज़ीपुर ३) (१९) पण्डित कंठदेव स्वामी रामपुर स्टेट यू० पी० १॥) (२०) पण्डित लक्ष्मीदत्त त्रिपाठी ठि० पण्डित ब्रह्मदत्त पांडे पुराना कानपुर पो० नवाबगंज १॥) (२१) बाबू गनेशी लाल क्लर्क दफ़्तर इन्स्पेक्टर गमकें-तीस-कलकत्ता ३) (२२) गोस्वामी ज्वालादत्त प्रसाद कूचा-पण्डित मधुसूदन गुमटी बाज़ार-लाहौर ५॥) (२३) बाबू पूरणचन्द नाहर नं० २८ हरिसनरोड-कलकत्ता ३) (२४) श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य्य स्वामी हरिहरानन्द ठि० बाबू केसरी प्रसाद सिंह बी० ए० बारिस्टर-बांकीपुर ३) (२५) पण्डित चन्द्रसेन जैन वैद्य इटावा १॥) (२६) बाबू माधुरी शरणदास-गोविन्दपुरा-काशी १॥) (२७) बाबू राम प्रसाद श्रीवास्तव उमरा-पो० बिसवां-ज़िला सीतापुर ५) (२८) बाबू देवीशरण-ठि० बाबू काशीराम वैश्य-दलकुशा लखनऊ १॥) (२९) पण्डित बासवानन्द गैरोला टिहरी गढ़वाल १॥) (३०) पण्डित हरिदत्त शास्त्री इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूल्स टिहरी गढ़वाल १॥) (३१) पण्डित बद्रीनाथ वैद्य-जतनबर-काशी २) (३२) बाबू कन्हैयालाल खत्री नायघाट पाटनदरवाज़ा-काशी १॥) (३३) पण्डित जगन्नाथ प्रसाद दीक्षित वकील मैनपुरी ३) (३४) पण्डित छब्बीलाल चतुर्वेदी मिश्र वकील हाई कोर्ट, मैनपुरी ३) (३५) रावबहादुर ठाकुर राजसिंह बेदला-उदयपुर-मेवाड़ ३) (३६) पण्डित कृष्ण दत्त पाण्डेय-मौज़ा रामादोह पो० सोनपुरा-पलामू १॥) (३७) बाबू दलबहादुर सिंह मौज़ा रमना पो० सिलीदाग-पलामू १॥) (३८) बाबू मधुसूदन लाल अधौरी मुनसर्क़ी-भैया साहब कटारी पो० मांझपारा-पलामू ३) (३९) पण्डित दत्तात्रय काशीनाथ करमरकर हेडक्लार्क-मेसर्स राजाब्रदर्स पन्नालाल-पो० ब्यावर (राजपूताना) ३) (४०) बाबू जगदम्बा प्रसाद हेडटीचर-म्युनिसिपल बोर्ड स्कूल-राजघाट-काशी १॥) (४१) पण्डित रामनाथ शर्म्मा वैद्य-कूचा भाईदास बाज़ार सीताराम-दिल्ली १॥) (४२) पण्डित महाराज कृष्ण रैना रैना ब्रादर्स-चान्दनी चौक दिल्ली १॥) (४३) लाला श्याम सुन्दरलाल-मालिक दूकान जंगलीमल अमराव सिंह छोटादरीबा-दिल्ली १॥) (४४) बाबू मोहन नाथ दर ठि० मिसर्स मोहन ब्रदर्स-नाथ मर्चेन्ट्स दिल्ली १॥) (४५) पण्डित शंकरराय मदल गोस्वामी महामहोपाध्याय कटरानील दिल्ली ३) (४६) बाबू नागरमलपोद्दार ठि० बाबू जमुनाधरपोद्दार नागपुर ५) (४७) बाबू मथुरादास-भैरव बाज़ार काशी २) (४८) बाबू मक्खूलाल अयोध्याप्रसाद-कसेरहटी १॥) (४९) बाबू गयाप्रसाद आर्य्य कचहरी-कन्नौज ३) (५०) बाबू लक्ष्मी नारायण भट्टाचार्य्य-कन्नौज १॥) (५१) बाबू सूर्य्य प्रसाद ठेकेदार फ़र्रुख़ाबाद ५) (५२) पण्डित माखनलालचौबे वकील फ़र्रुख़ाबाद ४) (५३) बाबू गुलराज गोपाल गुप्त-सुपरवाइज़र-फ़तहगढ़ १॥) (५४) बाबू लालमन भट्टाचार्य्य फ़र्रुख़ाबाद ३) (५५) बाबू सोहन प्रसाद-रिटायर्ड डिप्टी मेजिस्ट्रेट मैनपुरी ३) (५६) बाबू जुगललाल शर्म्मा-मिश्राटोला इटावा १॥) (५७) चौधरीपदम सिंह वर्म्मा दुकानदारी मिजारत-इटावा १॥) (५८) बाबू मथुराप्रसाद मुख़्तार मु० छतराना इटावा १) (५९) लाला बाबू रामगुप्त ठेकेदार रेलवे नया शहर-इटावा ३) (६०) बाबू द्वारिका प्रसाद मुख़्तार कलक्टरी इटावा १॥) (६१) ठाकुर जगराम सिंह मौ० अगरा पो० मलपुरा-आगरा १॥) (६२) पण्डित राम सुमिरन पांडे पुलिस लाइन-कूचबिहार १॥) (६३) बाबू धनपत राय सब डिप्टी इन्स्पेक्टर मदारिस महोबा-ज़ि० हमीरपुर १॥) (६४) पण्डित दयाशङ्कर पांडे-कानूनगो सिकदार-तहसील राठ-ज़ि० हमीरपुर १॥) (६५) पण्डित रामनाथ दीवान-मालगुज़ार-मौज़ा पानगुडरिया-पो० मरदानपुर-राज्यभूपाल ५) (६६) पण्डित द्वारिका प्रसाद ब्रह्मभट्ट स्थान रोहली पो० सराय प्राग ज़ि० फ़र्रुख़ाबाद १॥) (६७) पं० जगन्नाथ प्रसाद मिश्र-रोहली-पो० सराय प्रयाग-ज़ि० फ़र्रुख़ाबाद १॥) (६८) पण्डित रामनारायण मालवीय-ठि० जगदयाल मदनगोपाल-सेल कोठी-गया १॥) (६९) बाबू विश्वेश्वर प्रसाद-पुरानी गोदाम-गया १॥) (७०) कुमारी कलावतीगार्गी-गवर्न्मेंट गर्ल्स नार्मल स्कूल लखनऊ १॥) (७१) कुमारी हरदेवी गार्गी गवर्न्मेंट गर्ल्स नार्मल स्कूल लखनऊ १॥) (७२) बाबू गोविन्दरामपोद्दार मु० करोंड़ा-ज़ि० बांदा ३) (७३) बाबू गुलाब राय बाजाराम

जी रोड़ा-बारधा सी० पी० ३) (७४) पण्डित जय राम त्रिवेदी गिरदावर कानूनगो-जौनपुर १॥) (७५) बाबू आशुतोष चट्टोपाध्याय एम० ए० अध्यापक कटन कालिज-गौहाटी (आसाम) १॥) (७६) पण्डित मुरलीधर बाजपेयी स्टेशनमास्टर-अतर्रा-बांदा १॥) (७७) पण्डित रामबिहारी लाल पांडे हेडमास्टर अपर प्राइमरी स्कूल-अतर्रा-ज़ि० बांदा १॥) (७८) पण्डित गोकुल प्रसाद द्विवेदी ग्राम अतर्रा ज़ि० बांदा १॥) (७९) बाबू लक्ष्मीनारायण-लक्ष्मीकुण्ड-काशी १॥) (८०) बाबू भोजराज-रावत-चांग दरवाज़ा-ब्यावर ३) (८१) बाबू जसवन्तसिंह ज़मींदार-महुवा पो० दनकौर-ज़ि० बुलन्दशहर ३) (८२) कुंअर मोतीलाल जैन-ठि० राय बहादुर सेठ चम्पालाल जी ब्यावर ५) (८३) बाबू ललित मोहन बेनर्जी एम० ए० एल एल०बी० वकील, हाईकोर्ट इलाहाबाद ५) (८४) श्रीयुत कर्नल के० एन० हक्सर सी० आई० ई०, प्राइवेट सेक्रेटरी श्रीमान् ग्वालियर नरेश-ग्वालियर १०) (८५) श्रीयुत डाक्टर देश राज रणजीतसिंह-कॉलिन्स रोड-इलाहाबाद ५) (८६) लाला हज़ारी लाल-तहसीलदार-जागीर खोहट पो० काशीपुर-ज़ि० हमीरपुर १॥) (८७) पण्डित मूलचन्द पटवारी-नेगुवां-जागीर नेगुवां रिबई-पो० अजनर-ज़ि० हमीरपुर १॥) (८८) बाबू गौरीशंकर प्रसाद-श्रीसागगंज का गोला-काशी १॥) (८९) बाबू तेजूमल एम० कनल-मेनेजर उत्तम खैराती भण्डार-अहमदाबाद १॥) (९०) पण्डित जगन्नाथनायक, बोरधा, ज़ि० होशंगाबाद १॥) (९१) बाबू ब्रजलाल वर्म्मा मेनेजर एम० एल० वर्म्मन एण्ड सन्स, मथुरा १॥) (९२) पण्डित गंगा दत्त हेडमास्टर-मुज़फ़्फ़र नगर-तहसीलस्कूल १॥) (९३) बाबू लछमनदास बी० ए० अब डिप्टी इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूल्स-मुज़फ़्फ़र नगर १॥) (९४) बाबू खेमी प्रसाद रईस कनखल ज़ि० सहारनपुर १॥)
(९५) बाबू महाराज किशोर खज़ा मेनेजर बनारस बैंक लिमिटेड-बनारस ३) (९६) बाबू मुरलीधर करण-फेमरा-पो० बोबरा-गया ५) (९७) पण्डित भारतराम त्रिपाठी रईस और ठेकेदार-पनभा-पो० मानपुर-राज्य रीवां ३) (९८) पण्डित बिहारीलाल शर्म्मा-दिलेरगंज-शाहाबाद-ज़ि० हरदोई ५) (९९) पण्डित ब्रह्मानन्दभट्ट-मु० कटरा-शाहाबाद ज़िला-हरदोई १॥) (१००) बाबू ज्वाला प्रसाद मोरवाड़ी-पो० शिवपुर-ज़ि० हावड़ा १॥) (१०१) बाबू ललित मोहनदत्त-ठि० बाबू नवीनचन्द्र बोस-वकील-नारियल बाज़ार-कानपुर १॥) (१०२) पण्डित कामता प्रसाद तिवारी-ठि० बाबू घसीटे लाल ठीकेदार-ठंढी सड़क-कानपुर १॥) (१०३) बाबू तुलसी दयाल वकील-बलिया १॥) (१०४) बाबू लक्ष्मी-नारायण मथुरा श्रीधरिया-बलिया १॥) (१०५) पण्डित हरिशंकर शर्म्मा वैद्य मऊ शाहिदपुर १॥) (१०६) बाबू जगेश्वर प्रसाद नन्दे-मऊ शाहिदपुर १॥) (१०७) पण्डित माधव राम शर्म्मा-ठि० पण्डित निष्कामेश्वर मिश्र-लाहौरी टोला-काशी १॥)

(४) पण्डित इन्द्रकान्त नारायण गुर्टू का ६ फरवरी का पत्र उपस्थित किया गया जिस में उन्हों ने सभा से इस्तीफ़ा दिया था।

निश्चय हुआ कि उनसे प्रार्थना की जाय कि वे अपने इस्तीफे पर पुनः विचार कर उसे लौटा लें।

(५) स्वामी प्रकाशानन्द गिरि ने यह प्रस्ताव किया कि सभा के ऊपर जो ऋण बना हुआ है उससे सभा के कार्य्यों में बड़ी हानि होती है। अतः सभा कुछ सज्जनों का एक डेप्युटेशन नियत करे जो काशी के सब सभासदों की सेवा में उपस्थित हो कर इसके लिये सहायता प्राप्त करे।

निश्चय हुआ कि यह प्रस्ताव स्वीकृति के लिये प्रबन्धकारिणी समिति में उपस्थित किया जाय।

(६) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईं:- बाबू राधा मोहन गोकुल जी, १७ पगैया पट्टी, कलकत्ता-नीतिदर्शन प्रथमखण्ड। स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती, हृषीकेश-ईश्वर प्रार्थना, श्रीगुरुविशेषणाष्टक, यतिशतक। बाबू आनन्द मोहन चौधरी न्याय सुधा प्रेस, नागपुर-श्री राम कृष्ण-परमहंस देव का अलौकिक जीवन चरित्र। श्रीमती हेमन्त कुमारी चौधरी सुपरिण्टेण्डेण्ट, विक्टोरिया कन्या विद्यालय, पटियाला-आदर्शमाता। उपाध्याय पण्डित बदरी नारायण चौधरी, मिर्ज़ापुर-सौभाग्य समागम २ प्रति, प्रयाग रामागमन। पण्डित रामचन्द्र जैन, ज़ि० मथुरा-संकटोद्धार। बाबू शीतल प्रसाद श्रीवास्तव, दलसिंघ सराय, तिरहुत-बहार कुढ़वा मंगल मेमारी दो प्रति। खरीदी गई-आश्चर्यजनक घंटी और अन्य रोचक कथायें, अमरीका पथ प्रदर्शक।

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

बालमुकुन्दवर्म्मा-उपमंत्री।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

भाग १६ | मई १९१२ | संख्या ११

चन्द बरदाई।

[पूर्व प्रकाशितान्तर]

प्रथम भुजंगी सुधारी ग्रहनं।
जिनें नाम एकं अनेकं कहनं।
दुती लम्भयं देवतं जीवतेसं।
जिनें विश्व राख्यो बलीमंत्र सेसं॥
चवं वेद ब्रंभं हरी किति भाखी।
जिनें धम्म साधम्म संसार साखी॥
त्रती भारती व्यास भारत्थ भाख्यो।
जिनें उत्त पारथ्थ सारथ्थ साख्यो॥
चवं सुकदेवं परीखत्त पायं।
जिनें उद्धर्यो सब्ब कुरवंस रायं॥
नरं रूप पंचम्म श्रीहर्ष सारं।
नलै राय कंठं दिने पद्ध हारं॥
छटं कालिदासं सुभाषा सुबद्धं।
जिनें बागबानी सुबानी सुबद्धं।
कियो कालिका मुक्ख वासं सुसुद्धं।
जिनें सेत बंध्योति भोज प्रबंधं॥
सतं डंडमाली उलाली कवित्तं।
जिनें बुद्धि तारंग गंगा सरित्तं॥
जयदेव अट्ठं कवि कब्बिरायं।
जिनें केवलं किति गोविंद गायं॥
गुरं सब्ब कव्वी लहू चंद कव्वी।
जिनें दर्सियं देवि सा अंग हव्वी॥
कवी किति किति उकत्ती सुदिक्खी।
जिनें की उचिष्टी कवी चंद भक्खी॥

इस प्रकार कविचंद अपनी दीनता दिखाता हुआ कहता है कि मेरे पूर्व जो कविगुरु होगए हैं उन्हीं की उक्ति को मैं कहता हूं। पुनः वह कहता है—

कहां लगि लघुता बरनवों
कविनदास कवि चंद।
उन कहि ते जो उब्बरी,
सो बकहों करि छंद॥
सरस काव्य रचना रचों,
खल जन सुनि न हसंत।
जैसे सिंधुर देखि मग,
स्वान सुभाव भुसंत॥

आगे चलकर कवि अपने काव्य के विषय में यह लिखता है

आसा महीअ कव्वी, नव नव कित्तीयं संग्रहं ग्रंथं।
सागर सरिस तरंगी, बोहथ्थयं उक्तियं चलयं॥
काव्य समुद्र कवि चंद कृत,
मुगति समप्पन ग्यान।
राजनीति बोहिथ सुफल,
पार उतारन यान॥
छंद प्रबन्ध कवित्त जति,
साटक गाह दुहथ्थ।
लहु गुर मंडित खंडिय हि,
पिंगल अमर भरथ्थ॥
अति ढंक्यौ न उघार,सलिल जिमि सिष्ष सिवालह।
बरन बरन सोभंत, हार चतुरंग विसालह।
विमल अमल बानी विसाल, बयन बानो बर ब्रंनन।
उक्ति बयन विनोद, मोद श्रोतन मन हर्नन॥
युत्त अयुत जुक्ति विचार विधि,बयन छंद छुट्यौ न कह।
घटि बढ़ि मति कोई पढ़ै, तो चन्द दोस
दिज्जौ न वह॥
उक्ति धर्म विशालस्य, राजनीति नवं रसं।
षट् भाषा पुराणं च, कुरानं कथितं मया॥

कविचन्द अपने ग्रंथ की काव्य संख्या यों बताता है—

सत सहस नषसिष सरस,
सकल आदि मुनि दिष्ष।
घट बढ़ मन कोऊ पढ़ौ,
मोहि दूसन न बसिष्ष॥

अपने महाकाव्य का सारांश चन्द एक स्थान पर इस प्रकार देता है—

दानव कुल छत्रीय, नाम ढूंढा रष्षस बर।
तिहिं सु जोत प्रथिराज, सूर सामंत अस्ति भर॥
जीह जोति कविचन्द, रूप संजोगि भोगि भ्रम।
इक्क दीह ऊपन्न, इक्क दीहे समाय क्रम॥
जथ कथ्थ होइ निर्मये, जोग भोग राजन लहिय।
बज्जंग बाहु अरि दल मलन, तासु कित्ति चन्दह
कहिय॥

प्रथम राज चहुआन पिथ्थवर।
राजधान रंजि जंगल धर॥
मुष सु भट्ट सूर सामंत दर।
जिहि बंध्यो सुरतान प्रान भर॥
हूं कवि चन्द मित्त सेवह पर।
अरु सुहित सामंत सूर वर॥
बंधों कित्ति प्रमार सार मह।
रच्यों वर्नि भंति थिति थह॥

जैसा कि आगे लिखा जा चुका है चन्द ने दो विवाह किए थे। इन में से पहिलो स्त्री का नाम कमला उपनाम मेवा और दूसरी का गौरी उपनाम राजोरा था। चन्द रासो की कथा अपनी स्त्री गौरी से कहता है। चन्द की ग्यारह संतति हुई, दस लड़के और एक लड़की। कन्या का नाम राजबाई था। रासो के बान बेध समय में चंद के लड़कों के नाम इस प्रकार दिए हैं—

दहति पुत्र कवि चंद, "सूर" "सुन्दर" "सुज्जानं"।
"जल्ह" "वल्ह" "वलिभद्र", कविय "केहरि" वष्षानं॥
"वीरचन्द" "अवधूत", दसम नन्दन "गुनराजं"।
अप्प अप्प क्रम जोग, बुद्धि भिन भिन करि काजं।
जल्हन जिहाज गुन साज कवि, चन्द छन्द सायर
तिरन।
थंप्यौ जिहत्त रासो सरस, चल्यौ अप्प राजन सरन॥

यह विदित नहीं है कि किस स्त्री से कौन संतति हुई थी और जल्ह को छोड़ कर अन्य किसी के विषय में भी कुछ ज्ञात नहीं। जल्ह के

विषय में तीन सूचनाएं रासो में मिलती हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) पृथ्वीराज के पुत्र का नाम रैनसी था। रासो के "दिल्ली वर्णन प्रस्ताव" में रैनसी की बालक्रीड़ा का वर्णन है। वहीं पर उन सामंत पुत्रों के नाम भी दिए हैं जो राजकुमार के संग खेल कूद में सम्मिलित रहते थे। उस वर्णन में जल्ह के विषय में यह लिखा है "बरदाइ सुतन जल्हन कुमार। मुख बसै देवि अम्बिका सार"

(२) दूसरा वर्णन जल्ह के विषय में उस स्थान पर है जहां पृथ्वीराज की बहिन पृथाबाई के विवाह की कथा है। रासो के अनुसार पृथाबाई का विवाह चितौर के रावल समर सिंह के संग हुआ था। कवि वर्णन करता है कि अन्य तीन लोगों के साथ जल्ह भी दहेज में दिया गया था। पृथा विवाह समय में यह लिखा है—

"श्रीपतसाह सुजान देश थम्भह सँग दिन्नो।
कह प्रोहित गुरराम ताहि आया नृप किन्नो।
रिषीकेस दिय ब्रह्म ताहि धन्वन्तर पद सोहै।
चन्द सुतन कवि जल्ह असुर सुर नर मन मोहै।
कविचन्द कहै बरदाय बर फिर सुराज आया करिय।
कर जोर कह्यो पीथलनृपति तब रावर सतभांवर फिरिय" ॥

समरसिंह का रासो में अनेक स्थानों पर वर्णन है। जैचन्द ने इन्हें अपनी ग्रोर मिलाने का उद्योग किया था पर वे सदा पृथ्वीराज का साथ देते रहे श्रौर अन्त में शहाबुद्दीन के साथ पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में मारे गए। उस समय पृथाबाई उन के शरीर के साथ सती हुईं। सती होने के पहिले उन्हों ने अपने पुत्र को एक पत्र लिखा था जिसमें सूचना दी थी कि श्री हजूर समर में मारे गए श्रौर उन के संग रिषीकेश जी भी बैकुंठ को पधारे हैं। रिषीकेस जी उन चार लोगों में से हैं जो दिल्ली से मेरे संग दहेज में आए थे, इस लिये इन के वंशजों की खातिरी रखना। "ने पाछे मारा च्यारी गरां का मनखां की चाची राख जो। ई मारा जीव का चाकर हे जो यासु कदी हराम-खोर निवेगा।" यह पत्र माघ सुदी १२ अनन्द विक्रम संवत् ११५७ (वि० सं० १२४८) का लिखा है। यह पत्र परवाने के समान माना जाता था, इसलिये जब यह पुराना होगया तो संवत् १७५१ में उदयपुर के महाराणा जय सिंह ने इसे पुनः लिख कर अपनी सही कर दी। नए परवाने में ऊपर लिखे वाक्यों को उद्धृत करके यह लिखा है—"श्रो लख्यो हो जो देवेन नवो करा देवाणो जो थे अणी राज का स्यामखोर हो।" अतएव यह स्पष्ट है कि जल्ह दहेज में चितौर दिया गया था श्रौर वहां यह प्रतिष्ठाप्राप्त हुआ था। कहा जाता है कि मेवाड़ राज्य का "राजोरा राय" वंश जल्ह से ही प्रारम्भ होता है।

(३) तीसरा उल्लेख जल्ह का उस समय पर है जब अंतिम लड़ाई हो चुकी है श्रौर पृथ्वीराज शहाबुद्दीन के बन्दी हो गए हैं। अपने सखा तथा राजा के पकड़ जाने पर चन्द को बड़ा दुःख हुआ। उसने अपने राजा के पास जाने की ठानी। उसकी स्त्री ने उसे बहुत समझाया पर चन्द ने एक भी किसी की न सुनी। इस स्थान पर रासो में जो पति पत्नी का सम्भाषण दिया है वह बड़ा ही मनोहर तथा उत्साहवर्धक है। अन्त में यह लिखा है।

उत्तर जानि प्रिया पय लागी ।
सुम प्रिय नाद अनाहद जागी ॥
जोग जुगति उद्दारन सामं ।
दो यो गल्ह सरे किम कामं ॥

चन्द वाक्य ।

सकल योग सोइ सुधम्म । तप जप सोई धम्म ।
सोहि सुगति सूझत मरम । सुजस किति गुन क्रम्म।
दिवस रयन राजन सुमति । अह गज्जनवै रोस ।
मन बच क्रम एकंग होय । सामि उधारौं दोस ।
उभय सत्त नव रस त्रिगुन । किय पूरन गुन तत्त ।
रासो-नाम उदद्दहु जुगति । गद्दो मत्ति मै सत्ति ॥

इस प्रकार कवि कहता है कि जब तक मैं स्वामी का उद्धार न करूंगा मुझे चैन नहीं पड़ता मैंने उसकी कीर्ति लिख ली है, वह सागर के समान है। इस कीर्ति रूपी रासो को चन्द ने जल्ह को सौंप कर सब बातें समझा दीं और आप गजनी की राह ली-

दहति पुत्र कविजन्द कै, सुन्दर रूप सुजान ।
इक्क जल्हन गुन बावरौ, गुन समंद ससि मान ॥
आदि अंत लगि वृत्तमन, ब्रव गुनी गुनराज ।
पुस्तक जल्हन हथ्थ दै, चलि गज्जन नृप काज ॥

राजा रैनसी समय में लिखा है-

प्रथम वेद उद्धार, बंभ मछ्छ तन किनो ।
दुतिय वीर बाराह, धरनि उद्धरि जस लिनो ।
कौमारक जभदेस, धरम उद्धरि सुर सख्यिय ।
कूरम सूर नरेस, हिंद हद उद्धरि रख्यिय ।
रघुनाथ चरित हनुमंत कृत,
भूप भोज उद्धरिय जिम ।
पथिराज सुजस कविचंद कृत,
चंद नंद उद्धरिय इम ॥

इन वाक्यों से स्पष्ट है कि जिस प्रकार कादम्बरी के रचयिता बाणभट्ट के अधूरे काम को उस के पुत्र ने अशंत: पूर्ण किया उसी प्रकार हिन्दी के आदि काव्य को चन्द पूरा नहीं कर सका। अन्तिम लड़ाई के अनन्तर उसको अपने प्यारे राजा के उद्धार की उत्कंठा ने अव्यवस्थित कर रक्खा था और उसी ओर वह अपने चित को लगाए हुए था, पर साथही उसे भय था कि कहीं इस उद्योग में मेरा शरीर पात हो जाय तो मेरे साथही मेरे राजा की कीर्ति का भी लोप हो जायगा। इसलिये उस ने सब कथा को "उभय सत नव रस त्रिगुण" दिनों में पूरा करके अपने पुत्र जल्ह के हवाले किया। जल्ह भी लिखता है कि जिस प्रकार हनुमत्कृत रघुनाथ चरित का भोजराज ने उद्धार किया था उसी प्रकार कवि चंद कृत पृथ्वीराज सुजस का चंद के पुत्र [जल्ह] ने उद्धार किया। इन बातों से यह स्पष्ट है कि पृथ्वीराज रासो का संस्कार, उसका क्रम आदि सब जल्ह की कृति है। साथ ही यह भी निश्चय है कि बड़ी लड़ाई के अनन्तर की कथा अर्थात् बानबेध समय और रैनसी समय तो पूर्णतया उसी की रचना है तथा बड़ी लड़ाई का कम से कम अंतिम भाग उसका लिखा है।

जल्ह की कविता के विषय में इतनाही कहना यथेष्ट होगा कि चन्द का यह प्रिय पुत्र था और निस्संदेह कवित्व शक्ति में अपने पिता का वात्सल्य भाजन था। चंद ने स्वयं लिखा है कि इसके "मुख बसै दोव कविका सार।" जल्ह की कविता में वह प्रौढ़ता और गम्भीरता नहीं पाई जाती जो चंद की रचना में पद पद पर मिलती है और

न उस का वर्णन अपने पिता के समान उत्साह वर्धक ही है। नीचे जल्ह की कविता के कुछ चुने हुए उदाहरण दिए जाते हैं। यदि मेवाड़ के राठौर राय वंश के इतिहास की विशेष छान बीन की जाय तो कदाचित् उसके आदि पुरुष जल्ह के विषय में अनेक नवीन बातें ज्ञात हो सकें।

जल्ह पृथ्वीराज की शब्द बेधी बाण विद्या की प्रशंसा करता हुआ यह कहता है—

नयन बिना नरघात, कहो ऐसो कछु किट्ठी।
हिंदू तुरक अनेक, हुए पै सिट्ठ न मिट्ठी।
धनि साहस धनि हथ्थ, धनि जस वासनि पायो।
ज्यों तरु छुट्टि पत्र, उड़त अप सत्तियो आयो।
दिय्यौं सुमथ्थ यो साह को, मनु नछित्र नभ तें टयो।
गोरी नरिंद कवि चंद कहि, राय धर पर इम पर्यो॥

मृत्यु पर पृथ्वीराज का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

पर्यो संभरी राइ दीसै उतंगा,
मनो मेरु बज्जी कियं शृंग भृंगा।
जिनें बार बारं सुरतान साह्यो,
जिनें भंजि के भीम चालुक्क गाह्यो।
जिनें भंज मेवात द्वै बार बंध्यो,
जिनें नाहरं राइ गिरनार संध्यो।
जिनें भंजि पट्टा सुकट्ठा निकंदं,
जिनें भंजि महिपाल दिनथंभ दंदं।
जिनें जीति जद्दों सबोरत्त आनो,
जिनें भंजि कमधज्ज रथ्थौ जुपानी।
जिनें भंजि पंहार सु उज्जैन मांहो,
परंमार भोमंग पुत्री विवाही।
जिनें दोरि कनवज्ज साहाय कीयो,
जिनें कंगुरा लेय हम्मीर दीयो।
जिनें बीलि कज्ज बालुका पेत ढाह्यो,
जिनें गाहि रा पंग संजोग लायो।
भए राइ राजा अनेकं सुथानं,
किनें सत्त के मध्य मुक्यौ न बानं।
इनें संभरी राइ साहाब संध्यौ,
उभै दीन जासं पराक्रम्म बंध्यौ।
सबं देवहूरं पुरष्पं बधारा,
मुरं जोति जोतिं सजोति समारा।
तिनक्की उपम्मा कवी चंद भाषी,
मिले हंस हंसं रवीचंद साषी।

जल्ह रासो की कथा समाप्त कर के माहात्म्य इस प्रकार वर्णन करता है।

नव रस विलास रासो विराज,
एकैक भाषा अनेक काज।
सो सुनय त्रिविध रासो विवेक,
गुन अनंत सिद्धि पावहि अनेक।
सूरत्त दान विग्यान मान,
नाटक्क गेय विद्या विनान।
चातुरी भेद बचनह विलास,
गति गाम नरम रस हास रास।
गति साम दाम भर दंड भेद
सब काम धाम त्रिख्यान वेद।
आचंन कवित्त कारन गोप,
बर विनय बिद्धि बुभ्झय सदोप।
विधि सप्त सार दिम बहन भार,
गति मान दान निरवान कार।
पैरान धरम कारन विवेक,
रस भाव भेय विग्यान नेक।
पैरान सकल कथ अथ्थ भाय,
भारथ्थ अथ्थ बेषंन ताय।

कलि काव्य रस्स प्राहा बरंग,
    बंधनिय छंद बुझ्झि सुजंग।
निब्बेक ह्यान बिच्चार सार,
    गति बाम बाम रति रंग भार।
नव सपत कला बिच्चार बेद,
    बिज्ञान थान चौरासि भेद।
गति पंच अरथ बिग्यान मान,
    उप्पमा जेन मति अंग थान।
रितु रस रसानि बिलास गति,
    मंतन सुमन्त आभास अत्ति।
भोगवन पहु मिति बिच्चार बिट्ठि,
    ग्रह इष्ट देव उप्पाय सिट्ठ।
गंधब्ब कला संगीत सार,
    पिंगलह भेद लघु गुरु प्रचार।
पिता मात पति परिचरन भेय,
    राजंग राज राजंत जेय।
पर ब्रह्म ध्यान उद्धार सार,
    बिधि भगति बिस्व तारन पार।
आधुनह बेद हय गय बिनान,
    यह गति मति जे तिश्र थान।
कलि सार सार बुझ्झिह बिचार,
    संभलहि भूप रासो प्रचार।
पावहि सु अरथ अरु धम्म काम,
    निरमान मोष पावहि सुधाम।

यह वृतांत चन्द और उसके पुत्र जल्ह का है। वास्तव में ऐसा अपूर्व ग्रंथ हिन्दी में दूसरा नहीं है। इस ग्रंथ पर जैसा कि आगे लिखा जा चुका है, बहुत कुछ आक्षेप हुए हैं। पहिले विचारने की बात यह है कि यह ग्रंथ बहुत पुराना है यहां तक कि इसके पहिले का कोई ग्रंथ हिन्दी में मिलता ही नहीं। दूसरे इसका राजपुताने में बहुत कुछ प्रचार रहा है यहां तक कि अनेक राज्यों का इतिहास इसी के आधार पर बना है। तिस पर यह काव्य ग्रंथ है। अतएव उस में अत्योक्ति का होना सम्भव ही नहीं वरन आवश्यक भी है। इस अवस्था में जो लोग यह आशा करते हैं कि चंद के ग्रंथ को हम केवल निरे इतिहास ग्रंथ की दृष्टि से जांचे वे भूल करते हैं। निस्संदेह इस में ऐतिहासिक बातें भरी पड़ी हैं पर यह इतिहास ग्रंथ नहीं है, यह एक महा काव्य है अतएव इस पर विचार करते समय दोनों इतिहास और काव्य के लक्षणों पर ध्यान देकर तब इस पर अपना मत प्रकाशित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त इसकी आदि प्रति हमें प्राप्त नहीं है और न उसके प्राप्त होने की आशा ही है। जो प्रतियां इस समय प्राप्त हैं वे न जाने कितनी प्रतिलिपियों के बाद लिखी गई हैं। जिन्होंने गोस्वामी तुलसी दास जी के रामचरित मानस को देखा और उसकी प्राचीन प्रतियों को आधुनिक छपी प्रतियों से मिलाया होगा उन्होंने पाया होगा कि तुलसी दास की असल रामायण में और आज कल की छपी रामायणों में आकाश पाताल का अंतर है। केवल शब्दों ही का परिवर्तन नहीं है वरन क्षेपकों की यहां तक भरमार हुई है कि सात के स्थान पर आठ कांड हो गए हैं।* जब तुलसी कृत रामायण जैसे सर्वमान्य, सर्व प्रचलित और सर्व प्रसिद्ध ग्रंथ की यह अवस्था हो सकती है तो इस

* यह आनन्द की बात है कि काशी नागरीप्रचारिणी सभा और इंडियन प्रेस के उद्योग से इस पुस्तक का एक शुद्ध संस्करण प्रकाशित हो गया है।

में आश्चर्य ही क्या है कि चन्द के महाकाव्य में भी क्षेपक भर गए हों और वह हमें आज आदि रूप में प्राप्त न हो। आशा है कि समय पाकर और प्रतियों के मिलने पर इस का बहुत कुछ निर्णय हो सके परन्तु जब तक यह न हो तब तक जो प्रतियां इस समय प्राप्त हैं उन के आधार पर इस को प्रकाशित करना और इसका रसास्वादन करना कदापि अनुचित नहीं है।

एक बड़ा भारी आक्षेप इस ग्रंथ पर यह लगाया जाता है कि इस में जितने संवत् दिए हैं वे सब झूठे हैं। पृथ्वीराज का राजत्व काल तीन मुख्य घटनाओं के लिये प्रसिद्ध है- (१) पृथ्वीराज और जयचंद का युद्ध (२) कालिंजर के परमर्दिदेव का पराजय और (३) शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज का युद्ध जिस में पृथ्वीराज बन्दी बने और अन्त में मारे गए। इस स्थान पर यह उचित होगा कि पृथ्वीराज, जयचंद, परमर्दिदेव और शहाबुद्दीन का समय ठीक ठीक जान लिया जाय और इस बात का निर्णय दानपत्रों तथा शिलालेखों से हो तो अति उत्तम है क्योंकि इनसे बढ़कर दूसरा कोई विश्वासदायक मार्ग इस बात के जानने का नहीं है।

अब तक ऐसे चार दान पत्रों और शिलालेखों का पता लगता है जिनपर पृथ्वीराज का नाम पाया जाता है। इनका समय विक्रम संवत् १२२४ और १२४४ के बीच का है।

जयचंद के सम्बन्ध में १२ दानपत्रों का पता लगा है। इस में दो पर जो विक्रम संवत् १२२४ और १२२५ के हैं इसे युवराज करके लिखा है। शेष १० पर महाराजाधिराज जयचंद यह नाम लिखा है। इनका समय विक्रम संवत् १२२६ से १२४३ के बीच में है।

कालिंजर के राजा परमर्दिदेव के जिनको पृथ्वीराज ने पराजित किया था, छ दानपत्र और शिलालेख वर्तमान हैं जिनका समय विक्रम संवत् १२२३ से १२५८ तक है। इनमें से एक पर जो विक्रम संवत् १२३९ का है पृथ्वीराज और परमर्दिदेव के युद्ध का वर्णन है।

शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी का समय फारसी इतिहासों से सिद्ध है और उसके विषय में किसी का मतभेद नहीं है। मेजर रिवर्टी तबक़ाते नासरी के अनुवाद के ४५६ पृष्ट में लिखते हैं कि ५८७ हिजरी (सन् ११९० ई०) में उन सब ग्रंथकारों के अनुसार जिन से मैं उद्धृत कर रहा हूं तथा अन्य अनेक ग्रंथकारों के अनुसार जिन में इस ग्रंथ का कर्ता भी सम्मिलित है, राय पिथौरा के साथ शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी का पहिला युद्ध हुआ और उसका दूसरा युद्ध जिस में राय पिथौरा पराजित हुआ और मुसल्मान लेखकों के अनुसार मारा गया निस्संदेह हिजरी सन् ५८८ (११९१ ई०=वि० सं० १२४८) में हुआ।

ऊपर जिन सन् संवतों का वर्णन किया जा चुका है वे पृथ्वीराज, जयचन्द, और परमर्दिदेव के दानपत्रों तथा शिलालेखों से लिए गए हैं और एक दूसरे को शुद्ध और प्रामाणिक सिद्ध करते हैं। निदान इन सब से यह सिद्धांत निकलता है कि पृथ्वीराज विक्रम तेरहवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध और ईस्वी बारहवीं शताब्दी के द्वितीयार्द्ध में वर्तमान था और उसका अन्तिम युद्ध विक्रम संवत् १२४८ (ई० ११९१) में हुआ।

जिन शिलालेखों का ऊपर उल्लेख हो चुका है उन के अतिरिक्त अर्णोराज और सोमेश्वर के भी शिलालेख और दानपत्र मिलते हैं जो ऊपर दिए हुए सन संवतों की प्रामाणिकता और ऐतिहासिक सत्यता को सिद्ध करते हैं ।

अब हम रासो के सन संवतों पर विचार करेंगे। चार भिन्न भिन्न संवतों पर विचार करने से यह स्पष्ट विदित हो जायगा कि वे अन्य इतिहासों में दिए हुए संवतों से कहां तक मिलते हैं । चन्द ने पृथ्वीराज का जन्मकाल संवत १११५ में, दिल्ली गोद जाना ११२२ में, कन्नौज जाना ११५१ में और शहाबुद्दीन के साथ युद्ध ११५८ में लिखा है। तबक़ाते नासरी में अन्तिम युद्ध का समय जिस में पृथ्वीराज पराजित हुआ और बन्दी बनाया गया, ५८८ हिजरी (१२४८ वि०) दिया है । अब यदि १२४८ में से ११५८ घटा दिया जाय तो ९० बाकी बचता है। इसके अतिरिक्त इन चार भिन्न भिन्न अवसरों पर पृथ्वीराज के वयक्रम का हम ध्यान करें तो यह सिद्ध होता है कि कथित घटनाएं १२०५, १२१२, १२४१ और १२४८ में हुईं । न कि १११५, ११२२, ११५१ और ११५८ में जैसा कि रासो में दिया है । यह भेद नीचे दिए कोष्टक से स्पष्ट हो जायगा ।

घटनाएं	रासो के संवत्	पृथ्वीराज की उस समय वय	अन्य पुस्तकों का संवत्	अन्तर
जन्म	१११५-१६	०	१२०५-६	९०-९१
गोदजाना	११२२-२३	७	१२१२-१३	९०-९१
कन्नौजगमन	११५१-५२	३६	१२४१-४२	९०-९१
अन्तिमयुद्ध	११५८-५९	४३	१२४८-४९	९०-९१

अब यदि प्रत्येक घटना के संवत् में पृथ्वीराज के जीवन के शेष वर्ष जोड़ दिए जांय तो सबका समय १२४८ हो जाता है। जो कुछ ऊपर लिखा जा चुका है उससे स्पष्ट है कि चन्द ने अपने ग्रंथ में ९०-९१ वर्ष की भूल की है परन्तु सब स्थानों में समभेद का रहना भूल की गिनती में नहीं आ सकता । चन्द ने ९०-९१ वर्ष का अन्तर अपने ग्रंथ में वर्णित घटनाओं में क्यों रक्खा इसका कोई उपयुक्त कारण अवश्य होगा ।

हिन्दी हस्त लिखित पुस्तकों की प्रथम वार्षिक रिपोर्ट [सन् १९०० ई०] में मैंने कुछ पट्टों और परवानों के फोटो दिए हैं जिनका सम्बन्ध ऊपर कही हुई घटनाओं से है । ये पट्टे ११३५ से ११५७ के बीच के लिखे हुए हैं । इन से ये बातें प्रगट होती हैं ।

(१) ऋषीकेश कोई बड़ा वैद्य था जिस का बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध मेवाड़ और दिल्ली के राजघरानों से था और जो पृथाबाई के विवाह समय चित्तौर के रावल समरसिंह जी को दहेज में दिया गया था । यह घटना इन परवानों के अनुसार संवत् ११४५ में हुई । महारानी पृथाबाई ने जो अन्तिम पत्र अपने पुत्र को लिखा था उसमें उन चार घरानों का उल्लेख था जो उनके साथ दिल्ली से आये थे और जिन्हें सम्मान पूर्वक रखने के लिये उसने अपने पुत्र को आदेश किया था । रासो के पृथा विवाह समय के एक पद * से जो ऊपर दिया जा चुका है यह कथा स्पष्ट हो जाती है ।

* चोपत साह सुजान वैदयम्भह संग दियो-इत्यादि ।

इस पद से प्रगट होता है कि जिन घरों का वर्णन पृथाबाई ने अपने पत्र में दिया है उन के विषय में चन्द का कथन है कि वे दहेज में रावल समर सिंह को दिए गए थे। श्रीपत साह देपुरा महाजन वंश का, गुरुराम प्रोहित सनावढ़ ब्राह्मणों का, ऋषीकेश आचारज (दायमा) ब्राह्मणों का और चन्द का पुत्र जल्ह राजौराराय वंश का आदि पुरुष था। ये चारों लोग पृथाबाई के साथ चित्तौर गए थे और अब तक इनके वंशजों को मेवाड़ दर्बार में विशेष प्रतिष्ठा है।

(२) पृथ्वीराज का अंतिम युद्ध जिसमें रावल समर सिंह मारे गए संवत् ११५८ के माघ शुक्ल पक्ष में हुआ था जो समय चंद के दिए हुए समय से मिलता है।

(३) कविराजा श्यामलदास जी और उन के अनुयायी लोगों के न मानने पर भी यह बात सिद्ध है कि पृथाबाई का विवाह समर सिंह के साथ हुआ। जो वंशवृक्ष मेवाड़वंश का उस दर्बार से प्रगट किया जाता है वह ठीक नहीं माना जा सकता। मुहम्मद अबदुल्ला लिखित "तारीख तुहफे राजस्थान" में जो मेवाड़ दर्बार की ओर से छापी गई थी और जिसे स्वयं महाराणा जी तथा कविराजा श्यामलदास जी ने सुना और स्वीकार किया था उदयपुरवंश की नामावली दी हुई है जिस में से दो नाम जान बूझ कर निकाल दिए गए हैं—एक तो उदय सिंह का और दूसरा बनबीर का, यद्यपि आगे चलकर यह लिखा गया है कि वे दोनो उदयपुर की गद्दी पर बैठे थे। इस स्पष्ट पूर्वापरविरोध का कारण भी खोजने पर उसी ग्रंथ से मिल जाता है। उस में लिखा है कि इन दोनो में से एक तो दासीपुत्र था और दूसरे ने अपनी कन्या को मुसल्मान को देने को कहा था। अतएव एक ऐसे वंश ने जो बहुत दिनों से राजपूताने के अन्य वंशों में प्रसिद्ध तथा श्रेष्ठ चला आता है यह उचित न समझा कि ऐसे दो नाम उसके वंश में बने रहें जिनके कारण उसके निर्मल यश में कलंक लगता हो। बस फिर क्या था दोनों नाम वंशावली में से अलग कर दिए गए। यद्यपि वंश गौरव के विचार से यह कार्य किसी प्रकार प्रशंसनीय माना जा सकता है पर इतिहास के लिये इस से बढ़कर दूसरा कोई घोर पाप नहीं हो सकता। इस बात से स्पष्ट है कि जो वंश इस प्रकार का कार्य कर सकता है वह यदि इस बात को कहे कि पृथाबाई का विवाह समरसिंह के साथ हुआ ही नहीं और समरसिंह पृथ्वीराज की पताका के अधीन होकर न लड़े और न मारे गए तो इतिहासवेत्ता गण उन पत्रों और परवानों पर जिन का उल्लेख ऊपर हो चुका है ध्यान देकर स्वयं विचार और न्याय कर सकते हैं कि यह बात कहां तक सत्य मानी जा सकती है।

इस सम्बन्ध में एक ऐतिहासिक घटना ऐसी है जिस पर विचार कर लेना आवश्यक है। यदि समर सिंह पृथ्वीराज के समकालीन थे तो उनके पुत्र रतनसी का युद्ध अलाउद्दीन खिलजी के साथ १३०२-०३ ई० में कैसे हुआ। सादड़ी में जैनो शिलालेख में जिस पर १४९६ विक्रम संवत् खुदा है और जो राणा कुम्भाकरण के राजत्व काल का है, बाप्पा रावल से लेकर कुम्भाकरण तक राजाओं की नामावली दी है। उसमें लिखा है कि भुवन सिंह ने जिसका नाम समर सिंह के पीछे दिया

से अलाउद्दीन को हराया। तुहफ़े राजस्थान में जो नामावली दी है उस में समर सिंह और भुवन सिंह के बीच में ९ राजाओं के नाम और दिए हैं वे ये हैं-समरसी, रतनसी, करनसी, राहुत, नरपत, दिनकर, तमकरण, नागपाल, कर्णपाल, पृथ्वीपाल, भुवन सिंह। भुवनसिंह के पीछे भीम सिंह प्रथम जैसिंह प्रथम और लक्ष्मण सिंह ये तीन नाम दिए हैं। कर्नल टाड लिखते हैं कि राहुत से लक्ष्मण सिंह के बीच में ९ राजे चित्तौर की गद्दी पर बैठे और थोड़े थोड़े दिनों तक राज करके सब सुरधाम को सिधारे। इन ९ राजाओं में से ६ लड़ाई में मारे गए। इस सबों ने गया को मुसल्मानों से रक्षित रखने के लिये अपने प्राण दिए। पृथ्वीपाल ने इन मुसल्मानों को हरा दिया और अलाउद्दीन के पूर्व तक वे अपने जघन्य कर्म से पराङ्मुख रहे। अब इस से भुवन सिंह का समय १२८० ई० के लगभग होता है और लक्ष्मण सिंह का उससे कुछ पीछे। इससे यह सम्भव जान पड़ता है कि वह रतनसी नहीं था जिसकी स्त्री प्रसिद्ध सुन्दरी पद्मावती के लिये अलाउद्दीन ने चित्तौर का नाश किया वरन वह लक्ष्मण सिंह था जिसका नाम अब तक इस सम्बन्ध में प्रचलित चला आता है। कविराजा श्यामल दास जी जिस शिलालेख को अपना पक्ष समर्थन करने के लिये उपस्थित करते हैं वह ठीक नहीं माना जा सकता। पंडित मोहन लाल विष्णु लाल पंड्या उसकी पोल भली भांति खोल चुके हैं। इन शिलालेखों पर पूर्णतया विश्वास कदापि नहीं किया जा सकता जब तक उनके फोटो न छापे जांय क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि किसी अन्यपक्षपाती ने उन में २ के स्थल पर ३ बनवा दिया है।

(४) पृथ्वीराज के परवानों पर जो मोहर है उससे उसके सिंहासन पर बैठने का समय ११२२ विदित होता है। यह भी चन्द के दिए हुए समय से मिलता है। रासो के दिल्ली दान समय में लिखा है—

एकादस संवतः अट्ठ अग हत तीस भने।
प्रथ सुरित तहां हेम सुद्ध मगसिर सुमास गने।
सेत पक्ख पंचमीय सफल गुर पूरन।
सुत्रि मृगसिर सम इन्द्र जोग सदहि सिध चूरन।
पहु अनंगपाल अप्पिय पहुनि पुत्तिय पुत्त पवित्त मन
छंड्यो सुमोह सुख तन बरुनि पत्तो बद्री मझे सरन

तो अब चन्द के अनुसार अनंगपाल ने राज सिंहासन अपने दौहित्र को शुद्ध मन से ११३०—८= ११२२ की मार्गशीर्ष सुदी ५ को दिया। इससे यह सम्भव है कि पृथ्वीराज गद्दी पर बैशाख सुदी ३ संवत् ११२२ का बैठा हो।

इन पर्वानों और पट्टों की सत्यता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता क्योंकि वे एक दूसरे की सत्यता को प्रमाणित करते हैं। कुछ फारसी शब्दों के प्रयोग से सन्देह हो सकता है पर यह जान लेने से सन्देह का कारण दूर हो जाता है कि पृथबाई दिल्ली से आई थी जहां एक सेना मुसल्मानी योद्धाओं की सदा रहती थी और जहां लाहौर के मुसल्मानी दर्बार से दूतों का आना जाना सदा लगा रहता था, क्योंकि दोनों राज्यों की सीमा मिली हुई थी और पृथ्वीराज के १०० बर्ष पहिले से मुसल्मानी राज्य पंजाब में स्थापित हो चुका था। इस अवस्था में क्या यह

आश्चर्य की बात है कि दिल्ली के रहने वालों की भाषा में कुछ फारसी शब्द मिल गए हों।

जो कुछ ऊपर कहा जा चुका है उससे स्पष्ट है कि चन्द ने निज रासो में जो सब सन् संवत् दिए हैं वे अशुद्ध नहीं हैं वरन वे उस अब्द से ठीक मिलते हैं जो उस समय दर्बार के कागज़ों में प्रचलित था और जो प्रचलित विक्रम संवत् से ९०-९१ पूर्व था। इसी अब्द से हम यह बात सिद्ध कर सकते हैं कि शिलालेख और परवाने तथा पट्टे सब सत्य हैं। इस नवीन अब्द का आभास हमें इस दोहे से मिलता है—

एकादस से पंचदह विक्रम जिमि ध्रमसुत।
त्रितिय साक पृथिराज को लिख्यो विप्रगुनगुप्त॥

इसका तात्पर्य यह है कि जैसे युधिष्ठिर के ११५० वर्ष पीछे विक्रम का संवत् चला वैसे विक्रम के ११५० वर्ष पीछे मैं [चंद] पृथ्वीराज का संवत् चलाता हूं। चन्द पुनः लिखता है।

एकादस से पंचदह विक्रम साक अनंद।
तिहि रिपु जयपुर हरन को भय पृथिराज नरिंद॥

अब तक मेवार में यह बात प्रसिद्ध है कि पूर्वकाल में दो विक्रम संवत् थे। कर्नल टाड भी हारावती के वर्णन में इस बात का उल्लेख करते हैं। अब तक 'अनंद' शब्द का अर्थ 'आनन्द' 'शुभ' लगाया जाता था परन्तु पंडित मोहन लाल विष्णु लाल पंड्या का कथन है कि इस का अर्थ 'नन्द रहित' है। नन्द के अर्थ नौ के हैं क्योंकि 'नव नन्दा प्रकीर्तिताः' ऐसा भागवत में लिखा है। 'अ' का अर्थ हुआ शून्य—"अंकानां वामतो गतिः" के अनुसार अनन्द का अर्थ हुआ '९०' और इस संख्या के प्रचलित विक्रम संवत् में से घटा देने से चंद का संवत् निकल आता है। दूसरा अर्थ अनन्द का यह है। मौर्यवंश का आदि राजा चन्द्रगुप्त हुआ जो महानन्द का दासीपुत्र था। इस वंश के राजा नन्दवंशीय कहलाते थे सम्भव है मेवार के अभिमानी राजपूतों ने जान बूझ कर इन राजाओं के काल की गणना न करने के उद्देश्य से प्रचलित विक्रम संवत् में से उनका राजत्व काल घटा दिया और इस 'अनन्द विक्रम संवत्' का प्रचार किया हो। इन अर्थों के अतिरिक्त सब से उपयुक्त एक दूसरी बात सूझती है जिसे मैं यहां लिख देना उचित समझता हूं। यह बात इतिहास में प्रसिद्ध है कि कन्नौज का राजा जयचन्द अपने को अनंगपाल का उत्तराधिकारी बताता था और कहता था कि दिल्ली की गद्दी पर बैठने का अधिकार मेरा है न कि पृथ्वीराज का। इस कारण पृथ्वीराज और जयचन्द दोनों में परस्पर विवाद रहा और अंत में दोनों का नाश हुआ। कन्नौज के राजाओं ने जयचन्द तक केवल ९०-९१ वर्ष राज्य किया था। अतएव आश्चर्य नहीं कि उनके राजत्व काल को न गिनने के प्रयोजन से और उन्हें नन्दवंशियों के तुल्य मानने के अभिप्राय से इस नवीन संवत् का प्रचार किया किया गया हो।

जो कुछ ऊपर लिखा जा चुका है उससे स्पष्ट है कि चंद के संवत् मनोकल्पित और असत्य नहीं हैं तथा रासो में जो बातें लिखी हैं वे निरी गप्प नहीं हैं। यह सिद्ध कर दिया गया है कि बारहवीं शताब्दी में मेवार में दो संवतों का प्रचार था—एक सनन्द और दूसरा अनन्द विक्रम संवत् और दोनों में ९०-९१ वर्ष का अन्तर था। अब यह

बात स्वत: सिद्ध है कि चन्द का रासो वास्तविक घटनाओं से पूरित महाकाव्य है जैसे कि उस काल के ऐतिहासिक काव्य प्राय: सब देशों में मिलते हैं और अब इसे झूठा सिद्ध करने का उद्योग केवल निरर्थक, निष्प्रयोजनीय तथा द्वेषपूर्ण माना जायगा। पृथ्वीराज और उसके सामंतों का चरित्र इंगलैंड के राजा आर्थर (King Arthur and his round table) से बहुत कुछ मिलता है। अस्तु इस में सन्देह नहीं कि यह ग्रंथ सहस्रों मनुष्यों के हाथों में गया और सैंकड़ों ने इसे लिखा है। इस से यदि आज हम को इसके पाठ में दोष वा कहीं कहीं गड़बड़ अथवा क्षेपक मिलें तो इस में आश्चर्य ही क्या है। इससे इस ग्रंथ के गुण और आदर में किसी प्रकार की अवहेला नहीं होनी चाहिए।

श्यामसुन्दरदास।

सुकन्या की वैदिक कहानी।

[illegible] भोजन [illegible] पीछे एक श्लोक* पढ़ा [illegible] है कि राजा शर्याति, उसकी कन्या सुकन्या, मुनि च्यवन, सोम, और अश्विनीकुमार—भोजन किए पीछे इनका नित्य स्मरण करने वाले की आँख कभी नहीं बिगड़ती। इस सुकन्या की पतिभक्ति की कहानी प्रसिद्ध है। कैसे उसने बूढ़े च्यवन की धर्मपूर्वक सेवा की, कैसे वह बहकाई जाकर भी पतिव्रत से नहीं डिगी, और कैसे उसके सतीत्व के बल से उसका पति भला चङ्गा हो गया,-यह रोचक कहानी हिन्दु माताओं, देवियों और पुत्रियों को सदा स्मरण रहनी होगी। तभी तो हिन्दुओं ने उसके उपाख्यान को इतना गौरव दिया कि नित्य के स्मरणीय नामों में उसको रक्खा। इस कथा का पौराणिक रूप झालरापाटन के पण्डित गिरिधर शर्म्मा ने 'सरस्वती' की किसी पिछली संख्या में खड़ी बोली की कविता में वर्णन किया है। आज मैं उस कथा का वैदिक स्वरूप सुनाता हूं जो पौराणिक कथा का पिता है॥

शतपथ ब्राह्मण के चौथे काण्ड में आश्विन ग्रह (सोम का वह कटोरा जिसके देवता अश्विनी कुमार होते हैं) की प्रशंसा के साथ साथ यह आख्यायिका आई है—

जहां से भृगु के वंशीय वा अङ्गिरस के वंशीय (अपने कर्मों से) स्वर्गलोक को गए वहां च्यवन, जो या तो भृगुगोत्र का था या आङ्गिरस गोत्र का बहुत बूढ़ा और पलीत का होकर[1], पीछे रह गया। मनुवंशी शर्यात[2] राजा अपने ग्राम के साथ[3] विचर रहा था। उसने उसी के च्यवन के पड़ोस में आ कर डेरा किया। लड़कों ने[4] खेलते खेलते च्यवन को बूढ़ा पलीत का सा और निकम्मा समझ कर पत्थरों से खूब दला। वह (च्यवन) शर्यात-वालों[5] पर

---

* शार्यातिं च सुकन्यां च च्यवनं सोममश्विनौ।
भोजनान्ते स्मरेन्नित्यं तस्य चक्षुर्न हीयते॥

1 कृत्याकृप:-कठपुतली का सा या भुतने का सा।

2 पौराणिक नाम शार्याति। वेद में इन्द्र का नाम भी शार्यात अर्थात् 'शर्या के गोत्र का' मिलता है। पुराने राजाओं और देवताओं का सगोत्र और सयोनि होना बहुत जगह पाया जाता है।

3 सारी प्रजा के साथ, सारी सेना के साथ, वा सारी क़ौम के साथ।

4 शर्यात के पुत्र अथवा क़ौम के कम उमर जवान।

5 शर्यात के परिवार पर, या सारी प्रजा पर। सब से पुराने समाजों में कुल का बड़ेरा ही जाति का राजा होता था

क्रुद्ध हुआ जिससे उनको व्यामोह हो गया और बाप बेटे से लड़ने लगा और भाई भाई से[1]। शर्यात ने सोचा कि 'मैंने कुछ न कुछ किया है जिससे कि यह आन पड़ा'। इसलिए उसने ग्वालों और गड़रियों को बुला कर कहा 'तुम में से किसीने आज यहां कुछ देखा था ?'। उसने उत्तर दिया, "यहां पर एक बूढ़ा मनुष्य ही प्रेत सा सोया रहता है उसे निकम्मा समझ कर कुमारों ने पत्थरों से दला है"। राजा समझ गया कि यही च्यवन हैं[2]। 'वह हाथ जोड़ कर और उसमें अपनी पुत्री सुकन्या शार्याती को रख कर चला और वहां पहुंचा जहां ऋषि था, और बोला 'ऋषे' नमस्ते। मैं नहीं जानता था इस से मैंने अपराध किया (शब्दार्थ, हिंसा की)। यह सुकन्या (शब्दार्थ, अच्छी लड़की) है इस से मैं तुम से प्रायश्चित्त करता हूं (शब्दार्थ, अपराध छिपाता हूं), मेरा ग्राम फिर जुड़ जाय, समझ जाय[1]। तभी उस की प्रजा ठीक होगई और शर्यात मानव वहां से डेरा उठा कर (शब्दार्थ, जूड़ा जोड़ कर) फिर चल पड़ा कि दूसरी बार अपराध न होजाय।

अश्विनी दोनों जगत् में चिकित्सा करते हुए फिरते थे। वे सुकन्या के पास आए और उससे जोड़ा करना चाहा। उसने यह नहीं माना। उन दोनों ने कहा 'सुकन्ये किस लिये इस बूढ़े खूसट प्रेत के पास सोती है ? हमारे पास चली आ।' वह बोली 'जिसे मुझे बाप ने दिया है उसके जीते जी मैं उसे नहीं छोड़ूंगी।' ऋषि यह जान गया। वह बोला 'सुकन्ये तुझे इन्होंने क्या कहा ?'। उसने उस से सब बखान कर दिया। सुन कर उसने कहा 'यदि तुझे ऐसाही फिर कहें तो कहना कि तुम अपने आप भी तो ऐसे समृद्धिवाले और भरे पूरे नहीं हो कि मेरे पति की निन्दा करते हो। यदि वे तुझे पूछें कि हम क्योंकर नहीं समृद्ध और नहीं भरे पूरे हैं तो कहना कि मेरे पति को

प्रजा के दोनों अर्थ हैं, सन्तति और रिआया। पुराने राजा सन्तति में और प्रजा में भेद भी नहीं समझते थे क्योंकि सन्तति ही, किसी काल में, प्रजा थी।

१ दुर्वासा का ठट्ठा और अपमान करने से द्वारिका में यदुवंशियों को भी यों ही व्यामोह हुआ था और मद्य पीकर वे भी यों ही कट मरे थे। राजकुमारों का उद्दण्ड होना सदा प्रसिद्ध, जैसे-

यत्किञ्चनकारितया नृणां भवेद्राजपुत्रत्वम्, और कर्कट सधर्माणो हि जनकभक्षा राजपुत्राः (कौटिल्य)

२ काण्व शाखा के शतपथ ब्राह्मण में यह कथा कुछ और तरह है-तब शर्यात ने सोचा 'कुछ न कुछ मैंने किया है किस से ऐसी बड़ी भारी आपत्ति आई।' तब उसे यह सूझा 'अवश्य ही बूढ़ा आङ्गिरस या भार्गव च्यवन यहां छूट गया था उसे मैं ने किसी न किसी तरह अतिक्रुद्ध कर दिया होगा। इस से ही इतनी बड़ी आपत्ति हुई।' उसने अपने ग्राम को बुलवा जुटाया। सब को जुटा कर उसने पूछा गोपालों या गड़रियों ने किसी ने यहां कुछ देखा है ? उन्होंने कहा 'वह यहां एक बुड्ढा प्रेत सा आदमी पड़ा है, उसे लड़कों ने ढेलों से मारा है। यही देखा है'।

१ पौराणिक कथा में तपस्या में बैठे हुए च्यवन की आंखों में चपलता और बालसुलभ कौतूहल से स्वयं सुकन्या ने कांटा चुभाकर रुधिर निकाला है और फिर जब इस कारण पिता के कटक पर आपत्ति आई तो अपने पाप के अपराध स्वरूप उसने स्वयं उस वृद्ध की 'अन्धे की लाठी,' बनना स्वीकार किया है। वैदिक कथा में कन्या का स्वार्थ त्याग और भी अद्भुत है। जाति के उद्दण्ड कुमारों ने अपराध किया है। सारे राष्ट्र पर विपत्ति पड़ी है। उसे मिटाने के लिये पिता अपनी निरपराधिनी कन्या को, इफ्गाईल के जफ्था की तरह, बलि देता है। वह भी पिता की आज्ञा के अनुसार, अपने पिता और भाइयों के कल्याण के लिये, उसी बूढ़े प्रेत जैसे पति की अनन्य सेविका हो जाती है।

फिर जवान कर दो तब तुम्हें कहूंगी'। वे फिर उसके पास आए और उसे वैसे ही कहा। वह बोली–"तुम दोनों भी तो बहुत समृद्ध और बहुत भरे पूरे नहीं हो कि मेरे पति को हंसते हो। उन्होंने कहा 'हम काहे से नहीं भरे पूरे हैं, काहे से असमृद्ध हैं?'। उसने उत्तर दिया–मेरे पति को फिर युवा कर दो तब कहूंगी'। वे बोले–'इस ह्रद में[1] उसे न्हिला दे, वह जिस अवस्था को चाहेगा उसी का हो कर निकलेगा'। उसने उस ह्रद में न्हिलाया और [च्यवन] ने जिस वय की इच्छा की उसी के साथ वह निकला। वे बोले "सुकन्ये, हम काहे से नहीं भरे पूरे हैं काहे से नहीं समृद्ध हैं?"। उनको ऋषि ने ही उत्तर दिया "देवता कुरुक्षेत्र में यज्ञ कर रहे हैं उस में से तुम दोनों को अलग कर रक्खा है, इसलिये नहीं भरे पूरे हो, नहीं समृद्ध हो"। वहां से दोनों अश्विन् चल दिए और बहिष्पवमान नामक सूक्त से स्तुति हो चुकने के समय यज्ञ में देवों के पास आ पहुंचे। उन्होंने कहा–"हम को बुलाओ"। देवताओं ने कहा "तुम को नहीं बुलाएंगे, तुम चिकित्सा करते हुए बहुत दिन मनुष्यों में मिल जुल कर विचरे हो[2]"। वे बोले "बिना सिर के यज्ञ से यज्ञ कर रहे हो"। देवताओं ने पूछा "क्योंकर बिना सिर के से?"। वे बोले "हमें यज्ञ में बुलाओ तब कहेंगे[3]"। "ठीक है" यों कह कर देवताओं ने उन्हें बुलाया। उनके लिए इस आश्विन सोमरस के कटोरे को लिया। वे दोनों यज्ञ के अध्वर्यु बने और यज्ञ का सिर फिर उन्होंने लगा दिया। यह बात दिवाकीर्त्यों के ब्राह्मण[1] में लिखी है कि उन्होंने कैसे 'यज्ञ का सिर फिर लगाया। इसी से यह कटोरा बहिष्पवमान स्तोत्र हो चुकने पर लिया जाता है क्योंकि वे [अश्विन्] बहिष्पवमान के स्तुत हो जाने पर आए थे॥

जैमिनीय तलवकार ब्राह्मण में इसी कथा का एक कुछ नवीन रूप है। उस में कथा का पिछला भाग यों है—

अश्विन् दोनों ने ऋषि से कहा 'महाराज, हमें सोम का भागी बनाइए।'–'अच्छी बात है, तुम मुझे फिर युवा कर दो।'–वे उसे सरस्वती के शैशव [निकलने के स्थान) के पास ले गए। ऋषि [सुकन्या से] बोला 'बाले, हम सब एक सार दिखाई देते हुए निकलेंगे, तू तब मुझे इस चिह्न से पहचान लेना'। वे सब ठीक एकाकार दीखते हुए स्वरूप में अति सुन्दर होकर निकले। उस [सुकन्या] ने उसे [च्यवन को] पहचान कर कहा 'यही मेरा पति है'। उन्होंने ऋषि से

---

१ काण्व शाखा में इस का उल्लेख नहीं है।

२ मनुष्यों के संपर्क से ब्राह्मणों में चिकित्सकों की तरह देवताओं में अश्विन् भी कुछ हीन माने जाते थे, बहुत काल तक उन्हें यज्ञ में भाग नहीं था।

३ यहां अश्विन् वही चाल चले हैं जिससे सुकन्या और च्यवन ने उनसे अपना मनोरथ पाया था।

१ दिवाकीर्त्य या दिवाकीर्त। शतपथ १४. १. १. ८ से तात्पर्य है। गवामयन नामक संवत्सर सत्र में विषुवत् का दिन [अथवा एकविंश] भी आता है उस के पहले और पीछे दस दस दिन जो पाठ होते हैं उन में प्रयोग में आने वाले मन्त्र, और वह 'इक्कीसवां' दिन भी दिवाकीर्त्य कहे जाते हैं। ऋग्वेद १० ।१७० । १-३ के सामगान का भी नाम दिवाकीर्त्य है। महादिवाकीर्त्य के ग्यारह मन्त्रों का शाङ्खायन उल्लेख श्रौत सूत्र में है। साम संहिता उत्तरार्चिक ८। ३ का नाम बोधायन धर्मसूत्र में महादिवाकीर्त्य लिखा है।

कहा 'ऋषे, हमने तुम्हारा वह काम पूरा कर दिया है जो तुम्हारा काम था ; तुम फिर युवा हो गए हो, अब हमको इस तरह सिखाओ कि हम सोम के भागी हो जांय'। तब च्यवन भार्गव युवा होकर शर्यात मानव के पास गया और उसने पूर्व वेदि पर उसका यज्ञ कराया। राजा ने उसे सहस्र [गौएं] दी, उनसे उसने यज्ञ किया। यों च्यवन भार्गव, इस च्यवन साम में प्रशंसित हो कर फिर युवा हो गया, उसने बाला स्त्री पाई और सहस्रदक्षिण यज्ञ किया।

पौराणिक कथा से इस पुरानी कथा की तुलना पाठक कर लें।

श्री चन्द्रधर शर्म्मा।

राजा अजयदेव के सिक्के।

राजा **अजयदेव** के चांदी तथा तांबे के सिक्के विशेष कर राजपूताने में, और कभी कभी मथुरा आदि में भी, मिल जाते हैं और सिक्कों से संबंध रखने वाली कई अंगरेज़ी पुस्तकों में उनका वृत्तान्त फोटो सहित छप चुका है। मि॰ प्रिन्सेप, जनरल सर ए॰ कनिंगहाम तथा डाक्टर डबल्यु॰ स्मिथ आदि यूरोपियन विद्वानों ने ये सिक्के किस राजा के हैं यह बतलाने का यत्न भी किया है, परन्तु मेरी राय में उनका यत्न सफल नहीं हुआ।

राजा **अजयदेव** के सिक्कों पर एक तरफ़ "**श्रीअजयदेव**" लेख तथा दूसरी ओर बैठी हुई देवी [लक्ष्मी] की मूर्ति होती है।

इन सिक्कों का वृत्तान्त प्रकट करने वालों में प्रथम मिस्टर प्रिन्सेप थे। उन्होंने इन सिक्कों पर कन्नौज के राठौड़ [गहरवार] राजा **विजयचन्द्र** और **जयचन्द्र** [जेचंद] के सिक्कों की भांति बैठी हुई देवी [लक्ष्मी] की मूर्ति होने से इनको कन्नौज के राठौड़ों के सिक्के अनुमान किया[1], परन्तु कन्नौज के राठौड़ों में अजयदेव नामक कोई राजा नहीं हुआ इसलिये उन्होंने यह लिखा कि "ये सिक्के अवश्य राजा जेचंद्र के हैं, जिसका ठीक नाम अजयचन्द्र होगा। उसके वंश का नाम 'चन्द्र' पुस्तकों तथा लेखों [शिलालेखादि] दोनों में बहुधा छोड़ दिया जाता है[2]"।

इस प्रकार प्रिन्सेप साहब के इन सिक्कों को कन्नौज के राठौड़ों के मानने का मुख्य कारण कन्नौज के राठौड़ों के सिक्कों की नांई इनकी एक तरफ बैठी हुई देवी [लक्ष्मी] की मूर्ति होना ही है, परन्तु ऐसा मानने के कोई सबल कारण नहीं हैं, क्योंकि कन्नौज के राठौड़ों के अतिरिक्त **तोमरों** [तंवरों][3], **डाहल** के **कलचुरियों**[4] [हैहय-वंशियों] तथा **महोबा** के **चन्देल**[5] राजाओं के कितने एक सिक्कों पर इसी प्रकार बैठी हुई देवी

---

१ प्रिन्सेप साहब रचित 'एसेज़ आन ऍंटिक्विटीज़, नामक पुस्तक जिल्द पहिली, पृ॰ २९२, प्लेट २४ वीं, संख्या ७ और ८।

२ 'एसेज़ आन ऍंटिक्विटीज़, जि॰ १, पृ॰ २९२-९३।

३ देहली के तंवर राजा कुमारपाल, महीपाल आदि के सिक्कों पर।

४ डाहल के कलचुरी वंशी राजा गांगेयदेव के सिक्कों पर।

५ चंदेल वंशी राजा कीर्तिवर्मदेव, सल्लक्षणवर्मदेव, मदनवर्मदेव परमर्दिदेव (परमल), त्रैलोक्यवर्मदेव और वीरवर्मदेव के सिक्कों पर।

[लक्ष्मी] की मूर्तियां मिलती हैं[1]। दूसरी आपत्ति यह है कि जयचन्द्र [जैचंद] और अजयदेव को एक ही राजा मानने के लिये कोई प्रमाण नहीं मिलता और न कन्नौज के राठोड़ों के किसी लेख में उनके वंश का नाम 'चन्द्र' मिलता है। ऐसी दशा में इन सिक्कों को राठोड़ों के मानने के के लिये कुछ भी प्रमाण नहीं है।

प्रिन्सेप साहब के आधार पर डाक्टर बेब साहब ने[6] तथा जनरल सर ए० कनिंगहाम साहब ने[7] भी राजा अजयदेव को अजयचन्द्र [जयचन्द्र] अनुमान कर इन सिक्कों को कन्नौज के राठोड़ [गहरवार] राजा जयचन्द्र का मान लिया, जिस से ये सिक्के भ्रम से अब तक राठोड़ों के ही माने जाते हैं।

वास्तव में अजयदेव और जयचन्द्र [जैचंद] दो भिन्न वंशों के राजा थे और जयचन्द्र (जैचंद) के स्थान पर अजयचन्द्र लिखा हुआ किसी प्राचीन पुस्तक, शिलालेख या ताम्रपत्र में नहीं मिलता। अजयदेव अजमेर के चौहानों में प्रतापी राजा हुआ, जिसने अपने नाम से अजमेर नगर बसाया और जो प्रसिद्ध अर्णोराज [आनाजी] का पिता था, ऐसा 'पृथ्वीराज विजय' नाम के काव्य से, जो पृथ्वीराज जी की विद्यमानता में बना था और चौहानों के प्राचीन इतिहास की अमूल्य पुस्तक है, पाया जाता है। राजा अजयदेव के ये सिक्के राजपूताने में जहां जहां चौहानों का राज्य रहा वहां विशेष मिलते हैं और अजयदेव के पौत्र सोमेश्वर [जो पृथ्वीराज के पिता थे] के राज्य समय में भी अजयदेव के चांदी के सिक्के इस प्रदेश में चलते थे ऐसा उदयपुर [मेवाड़] राज्य के धोड़ गांव [जो ज़िले जहाज़पुर में है] के बाहर के 'रूठी राणी' नामक शिवालय के एक खंभ पर खुदे हुए विक्रम संवत् १२२८ [ई० स ११७१] के लेख से, जो चौहान राजा सोमेश्वर के राज्य समय का है, पाया जाता है[9]।

इन्हीं कारणों से मैं ने ई० स० १९०६ में कर्नेल टाड साहब के 'राजस्थान' [टाड राजस्थान] के हिन्दी अनुवाद के साथ के अपने टिप्पनों में इन सिक्कों का प्रसिद्ध चौहान राजा अजयदेव के अनुमान किया[10]। कुछ समय पूर्व मुझे चौहानों के इतिहास का अपूर्व पुस्तक 'पृथ्वीराज विजय' पढ़ने का लाभ मिला जिस से मुझे निश्चय हो गया कि मेरा उपर्युक्त अनुमान ठीक था और वास्तव में ये सिक्के चौहानों के ही हैं, क्यों कि उक्त काव्य के पांचवें सर्ग में चौहान राजा अजयदेव के चांदी के सिक्कों के विषय में यह लिखा है कि—

स दुर्वर्णमयैर्भूमिं रूपकैः पर्यपूपुरत् ।
तां सुवर्णमयैस्तत्र कविवर्गस्त्वपूरयत् ॥
कीर्तिं स वर्तमानानां भटैर्जह्रे जयप्रियैः ।
अतीतानागतानां तु रूपकैरजयप्रियैः[11] ॥

---

६ कनिंगहाम साहब रचित 'काइन्स आफ़ मिडिएवल इंडिया' प्लेट ८, वी० ए० स्मिथ साहब संगृहीत 'कैटेलाग आफ़ दी काइन्स इन दी इंडियन म्यूज़ियम, कलकत्ता' प्लेट २६।

७ करन्सीज़ आफ़ दी हिन्दु स्टेट्स आफ़ राजपूताना' पृ० ३९, प्लेट ४, नं १।

८ 'काइन्स आफ मिडिएवल इंडिया' पृ० ८७, प्लेट ९, नं० १७।

९ तत्कालवर्तमानरौप्यमयश्रीअजयदेवमुद्रांकितद्रम्म १६ षोडश (धोड़ गांव के लेख से, जो अब तक छपा नहीं है)।

१० खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर, का छपा हुआ टाड राजस्थान का हिन्दी अनुवाद, पृ० ४००

११ 'पृथ्वीराजविजय' काव्य पर प्रसिद्ध काश्मीरी पंडित जोनराज की, जिसने 'राजतरंगिणी' का दूसरा खंड लिखा

अर्थ—'उस (अजयदेव) ने चांदी के बने हुए रूपकों (सिक्कों) से पृथ्वी को भरदिया और कवियों ने उसे सुवर्ण (सुंदर अर्थवाले) रूपकों (नाटकों) से भरदिया। उस (अजयदेव) ने जय प्रिय[1] योद्धों से वर्तमान राजाओं की कीर्ति छीनली और अतीत[2] तथा अनागत[3] राजाओं की कीर्ति अजयप्रिय[4] रूपकों (सिक्कों) से छीन ली।"

ऊपर उद्धृत किये हुए श्लोकों से स्पष्ट है कि जिन सिक्कों पर 'अजयदेव' लेख मिलता है वे अजमेर के चौहान राजा अजयदेव के ही हैं।

गौरीशंकर हीराचंद ओझा।

राणी सोमलदेवी के सिक्के।

राणी सोमलदेवी के चांदी और तांबे के सिक्के बहुधा राजपूताने में मिल जाते हैं, परन्तु यह सोमलदेवी किस राजा की राणी थी इसका अब तक निर्णय नहीं हुआ।

सोमलदेवी के चांदी के सिक्कों की, जो बहुत कम मिलते हैं, एक तरफ बहुत भद्दी तरह से बना हुआ राजा का चेहरा होता है जिसको साधारण मनुष्य गधे का खुर होना प्रकट करते हैं और जिन सिक्कों पर वह चिन्ह रहता है उनको वे 'गधिये' सिक्के कहते हैं, और दूसरी ओर 'श्रीसोमलदेवी' या 'श्रीसोमलदेवि' लेख होता है। इस के तांबे के सिक्कों पर एक तरफ सवार और दूसरी तरफ 'श्रीसोमलदेवि' लेख मिलता है।

सोमलदेवि के एक चांदी के और ५ तांबे के सिक्कों की प्रतिकृतियां (छापे) प्रथम प्रिंसेप साहब ने प्रकट[1] कीं और चांदी के सिक्के पर के लेख को 'श्रीसा लदेव' तथा तांबे के सिक्कों पर के लेखों को 'श्रीसाम···लदेव' पढ़ा[2] और साथ में यह लिखा कि "इन सब सिक्कों की जांच से उन पर का लेख 'श्रीसाम लदेव' निश्चित होता है, बीच की खाली जगह ('म' और 'ल' के बीच) में 'न्तपा' अक्षर होने चाहिये और पूरा लेख 'श्रीसामन्तपालदेव' होगा अथवा यदि ऐसा माना जावे कि उन ('म' और 'ल') के बीच कोई अक्षर रह नहीं गया है तो उन पर का लेख 'श्रीसमलदेव' होगा[3]।

इस प्रकार इन सिक्कों को प्रिंसेप साहब ने 'सामन्तपालदेव' या 'सामलदेव' नामक किसी राजा का ठहराया, जिसका कारण इन पर के लेख का ठीक ठीक पढ़ा न जाना ही था।

फिर ई० स० १८९४ में जनरल सर ए० कनिंगहाम साहब ने अपने 'काइंस आफ मिडिएवल इंडिआ' (माध्यमिक काल के भारतवर्ष के सिक्के) नामक पुस्तक में सोमलदेवी के दो चांदी के

था, टीका भी है। ऊपर उद्धृत किये हुए श्लोकों पर जिनराज की टीका नीचे लिखे अनुसार मिलती है —

दुर्वर्णा रौप्यं दुश्च वर्णश्च तन्मयैः रूपकैर्दीनारविशेषैर्नाटकैश्च स भुवमपूरयत् सौवर्णाः सुवर्णमयैश्शोभनाक्षरमयैश्च कविवर्गस्तामपूरयत्। जयः प्रियो येषां तैर्भटैः करणभूतैर्वर्तमानानां कीर्तिमहरत् अजयस्य राज्ञः प्रियैरूपकैर्दीनारविशेषैश्च भूतानां भाविनां च राज्ञां कीर्तिमहरत् ॥

१ जयप्रिय = जय से प्रीति रखने वाले।

२ अतीत = जो पहिले हो चुके।

३ अनागत = जो भविष्य में होंगे, होने वाले, जो अभी न आए।

४ अजयप्रिय = जो अजयदेव को प्रिय थे।

१ प्रिंसेप साहब रचित 'एसेज़ आन ऐंटिक्विटीज़' नामक पुस्तक जि० १, प्लेट २७ नं० १७ और प्लेट २५ नं० ९-१३।

२ प्रिंसेप साहब रचित उपरोक्त पुस्तक, पृ. ३०४।

सिक्कों के, जो बहुत अच्छी दशा में थे, फोटो[१] प्रकट किये, परन्तु उन पर के लेख को 'श्रीसोमल देव' पढ़[२] कर उन को सोमलदेव नामक किसी राजा का ठहराया। जनरल सर कनिंगहाम भी उन पर के लेख को शुद्ध पढ़ न सके इसी से उन्हों ने उन को 'श्रीसोमलदेव' राजा के बतलाया।

फिर ई० स० १९०० में मिस्टर ई० जे० रापसन एम० ए० (E. J. Rapson, M. A.) ने कनिंगहाम साहब के प्रगट किये हुए उक्त सिक्कों के फोटो की जांच कर उन पर क्रमशः 'श्रीसोमलदेवि' और 'श्रीसोमलदेवी' लेख होना प्रकट किया[३] जो यथार्थ था, परन्तु सोमलदेवी किस राजा की राणी थी इसका निर्णय न हो सका। इस विषय में उन्हों ने यह लिखा कि "यह रानी कौन थी इसका हम अभी तक निर्णय नहीं कर सकते। हम केवल यही कह सकते हैं कि महाकोशल के कलचुरी (अर्थात् रत्नपुर के हैहय) वंशी राजाओं में से जाजलदेव दूसरे की, जिसका मल्हार से मिला हुआ लेख [चेदी] संवत् ९१९ ई० स० ११६७-६८ का है, राणी का नाम सोमल्लदेवी हमको ज्ञात है। सोमलदेवी के इन सिक्कों पर के लेखों की लिपि महाकोशल के कलचुरियों के सिक्कों की, जो ई० स० १०६० से ११४० के मध्य के हैं, लिपि के सदृश ही है परन्तु केवल इसी आधार पर सिक्कोंवाली तथा उक्त सोमल्लदेवी (जाजल्लदेव की राणी) को एक मान लेना साहस होगा[१]"। इन सिक्कों के निर्णय का काम यहीं अटक गया।

बीजोल्यां (मेवाड़ में) के पास के एक चट्टान पर खुदे हुए चौहान राजा सोमेश्वर के समय के वि० सं० १२२६ (ई० स० ११७०) के लेख में अजमेर प्रसिद्ध चौहान राजा अजयदेव की राणी का नाम सोमल्लदेवी[२] मिलने, एवं इन सिक्कों के विशेष कर चौहानों के अधीन के देश में से मिलने तथा तांबे के सिक्कों की एक तरफ सवार (जो विशेष कर चौहान राजाओं के सिक्कों पर होता है) बना हुआ होने से ई० स० १९०६ में मैंने टाड राजस्थान के हिन्दी अनुवाद के अपने टिप्पणों में इन सिक्कों को अजमेर के चौहान राजा अजयदेव की राणी सोमलदेवी के ठहराये[३], और 'पृथ्वीराज विजय' नामक चौहानों के ऐतिहासिक काव्य के पढ़ने से मुझे निश्चय होगया कि मेरा निर्णय ठीक था क्योंकि उक्त काव्य के पांचवे सर्ग में चौहान राजा अजयदेव की राणी सोमलेखा [सोमलदेवी] के विषय में यह लिखा है कि:—

सोमलेखा प्रिया तस्य प्रत्यहं रूपकैर्नवैः।
कृतैरपि न संस्पर्शं कलङ्केन समासदत् ॥[४]

अर्थ—इस [अजयदेव] की प्रियराणी सोमलेखा

१ 'कायंस आफ मिडिवल इंडिया' प्लेट ६, नं० १०-११

२ " " " पृ० ४१

३ 'जर्नल आफ दी रायल एशिआटिक सोसाइटी, स० १९००, पृ० १२१·

१ जर्नल आफ दी रायल एशिआटिक सोसाइटी, स० १९००, पृ० १२१।

२ तत्पुत्रो जयदेव इत्यवनिपः सोमल्लदेवी पतिः (बीजोल्यां के लेख से)

३ बांकीपुर के खड्गविलास प्रेस का छपा हुआ टाड राजस्थान का हिन्दी अनुवाद, पृ० ४००।

४ इस श्लोक पर जोनराज की टीका इस तरह है— तस्य प्रिया सोमलेखाख्या राज्ञी चन्द्रलेखा च प्रत्यहं नवैः कृतैः रूपकैर्दीनारविशेषैर्नाटकैश्च हेतुभिः कलङ्केनापायेन लाञ्छनेन च स्पर्शं न प्रापत्।

प्रतिबिंब नये रुपये बनाती थी तो भी कलङ्क ने स्पर्श नहीं किया था ।

इस से स्पष्ट है कि 'सोमलदेवी' लेखवाले सिक्के अजमेर के चौहान राजा अजयदेव की राणी सोमलेखा के ही हैं, जिसका नाम बीजोल्यां के उपरोक्त लेख में सोमल्लदेवी और सिक्कों पर सोमलदेवी मिलता है । गौरीशंकर हीराचंद ओझा ।

सभा का कार्यविवरण ।

साधारण सभा ।

शनिवार तारीख ६ अप्रैल १९१२ ।

सन्ध्या के ५ बजे । स्थान-सभाभवन ।

(१) बाबू अमीर सिंह के प्रस्ताव तथा बाबू जगन्मोहन वर्म्मा के अनुमोदन पर पण्डित रामचन्द्र शुक्ल सभापति चुने गए ।

(२) गत अधिवेशन (तारीख २४ फरवरी १९१२) का कार्यविवरण उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ ।

(३) प्रबन्धकारिणी समिति का तारीख ३ फरवरी १९१२ का कार्यविवरण सूचनार्थ पढ़ा गया ।

(४) निम्नलिखित सज्जन नवीन सभासद चुने गए:- १ पण्डित कृष्ण चैतन्य गोस्वामी, गुलजार बाग, पटना १॥) २ बाबू माधव प्रसाद सिंह-सोरा कुआं, बनारस सिटी ३) ३ महन्त सीताराम दास, संस्थापक साधु पाठशाला, दुर्गाकुण्ड, काशी १॥) ४ पण्डित गोपीनाथ नायक पालना, महल्ला भिखारी दास साहु, काशी १॥) ५ बाबू पन्नालाल खत्री, कोठी बाबू मक्खन लाल, कचौड़ीगली, काशी १॥) ६ पण्डित काशी प्रसाद त्रिपाठी, केदारघाट, काशी १॥) ७ बाबू सुरेन्द्र मोहन विद्यार्थी, असिस्टेंट सेक्रेटरी, काश्मीरी मठ, मैमरी, बंगाल १॥) ८ पण्डित रामधन तिवारी, मैनेजर, काश्मीरी मठ, मैमरी बंगाल १॥) ९ बाबू अमरनाथ, ठि० लाला लालचन्द खत्री ब्रह्मनाल, काशी १॥) १० बाबू बलराम दास, नन्दन साहु का महल्ला, काशी १॥) ११ पण्डित विश्वम्भरनाथ, सूरज कुंड, काशी १॥) १२ बाबू राम किशोर, मन्नीलाल की दूकान, ठठेरी बाजार, काशी १॥) १३ बाबू श्री कृष्ण प्रसाद, साक्षीविनायक, काशी १॥) १४ बाबू लक्ष्मण प्रसाद श्रीवास्तव बी० ए० वकील मशक गंज, लखनऊ ३) १५ पण्डित लक्ष्मीनारायण अग्निहोत्री असिस्टेंट मास्टर, हाई स्कूल, बांदा १॥) १६ ठाकुर बेनी सिंह जमींदार, मौजा मटौंध, जिला बांदा १॥) १७ बाबू हरिवंशलाल बी० ए०, एल० एल० बी० प्राइवेट ट्यूटर श्री राजकुमार हरि सिंह, काश्मीर हाउस, मेयो कालेज, अजमेर ३) १८ लाला गणेश लाल, गार्डियन कुवर साहब सीकर, जोधपुर हाउस मेयोकालेज, अजमेर ३) १९ रावत मान सिंह रावतसर, बीकानेर हाउस, मेयोकालेज, अजमेर ५) २० ठाकुर दौलत सिंह कुम्माना बीकानेर की कोठी, मेयो कालेज, अजमेर ३) २१ पण्डित विपिन बिहारी मिश्र, प्रबन्धकर्त्ता, उपन्यास पुस्तकालय, हरिहरपुर, पो० सब्बाड़ो, जिला सारन १॥) २२ बाबू आत्माराम नैथाणी, श्रीनगर गढ़वाल १॥) २३ पण्डित योगेश्वर प्रसाद डिमरी शर्म्मा, रविग्राम, महल्ला पंचखण्डा, पो० जोशीमठ, जि० गढ़वाल १॥) २४ पण्डित रामअधीन अग्निहोत्री, वकील, सीतापुर ३) २५ पण्डित रामचन्द्र दुबे-सेक्रेटरी-श्रीहज़ूर दर्बार-डूंगरपुर मेवाड़ ३) २६ बाबू पन्नालाल चौधरी-सुपरिटण्डेण्ट, स्याद्वाद महाविद्यालय भदैनी घाट-काशी १॥) २७ पण्डित रामदेव मिश्र हेडमास्टर तहसीली स्कूल, मछलीशहर, प्रतापगढ़ १॥) २८ पण्डित महाराज नारायण अवस्थी -नायब तहसीलदार, काशी १॥) २९ कुंअर सम्पति सिंह, राजकालाकांकर, प्रतापगढ़ ५) ३० राजकवि अलोप दीन कालाकांकर-प्रतापगढ़ १॥) ३१ पण्डित मानचन्द्र शर्म्मा क्लर्क, सर्वे दफ्तर-मन्सूरी १॥) ३२ कुमार दुर्गा दानकोठा रामघाट-काशी ५) ३३ बाबू विष्णु दयाल बी० ए० सब डिप्टी इन्स्पेक्टर आफ स्कूल, आगरा १॥) ३४ पण्डित, रामअधीन राम शर्म्म, गिरतलाई, पो० बरही श्यामसुन्दरा-जि० जबलपुर ३) ३५ बाबू शिवदास दम्माणी ठि० सेठ रामधन दास शिवदास दम्माणी, खामगांव बरार ५)

(५) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईं :-पण्डित उदयनारायण वाजपेयी, औरैया, जि० इटावा प्राचीन भारत वासियों की विदेश यात्रा, सम्राट पंचम जार्ज । पण्डित रूप नारायण पाण्डे, काशी-आचार प्रबन्ध । लाला कौड़ीमल, नीमच, गिरगांव, बम्बई पंचम ज्यार्ज का मुकुटोत्सव । पण्डित बांके राय नवल गोस्वामी दिल्ली राजभक्ति प्रकाश । पण्डित राम कृष्णमिश्र नं० ३६६ बादशाही मंडी प्रयाग-रघुवंश भू

काव्य। Indian Antiquary for February & March 1912. एशियाटिक सोसायटी आफ़ बङ्गाल, कलकत्ता-Journal & Proceedings Vol VII. Nos 7 to 9 for July, August & September 1911. गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी, अहमदाबाद-उत्सर्गमाला. गुजराती भाषा नो कोश। पण्डित श्यामबिहारी मिश्र एम० ए०, ठि० खड्गविलासप्रेस बांकीपुर-गोगिरिश । बा० काली प्रसन्न चट्टोपाध्याय, काशी-श्री श्रीराम कृष्ण के उपदेश। पण्डित रामस्वरूप शर्म्मा, सनातनधर्म्म पताका, मुरादाबाद भारत कीर्त्ति, रामकृष्णोपदेशमाला, गर्भोपनिषद, विधवा विवाह विचार, भक्ति सूत्र। पण्डित गङ्गाधर प्रसाद त्रिपाठी गढ़ा कोटा, जबलपुर-न्यायाक्षनीति दर्पण २ प्रति। बाबू मैथिली शरण गुप्त, चिरगांव, झांसी-पद्यप्रबन्ध। मुंशी तुलसी चन्द, क्लार्क मिस्टर एच० डी० घोष वकील, होशंगाबाद कानून मीयाद। बाबू निहालचन्द वर्म्मा, उपन्यास पुस्तकालय, काशी मोती महल भाग १ और २। खरीदी गई तथा परिवर्तन में प्राप्त योग सार, ठन ठन बाबू, कुसुम वाटिका, आदर्श रमणी, भूषण दूषण, नित्य कर्म पद्धति, वनस्पति शास्त्र, हिन्दी केमिस्ट्री।

(६) बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा ने इस सभा के सभासद बाबू विश्वेश्वर प्रसाद वर्म्मा की मृत्यु की सूचना दी जिस पर सभा ने शोक प्रकट किया।

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

प्रबन्ध कारिणी समिति

शनिवार तारीख २३ मार्च १९१२ सन्ध्या के ६ बजे

स्थान-सभाभवन।

(१) पण्डित रामनारायण मिश्र के प्रस्ताव तथा बाबू ब्रजचन्द के अनुमोदन पर बाबू बेणी प्रसाद सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (तारीख ३ फरवरी १९१२) का कार्य्य पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) ग्वालियर की हस्तलिपि परीक्षा के पर्चे उपस्थित किये गए। निश्चय हुआ कि इन की परीक्षा के लिये निम्न लिखित सज्जनों की सब कमेटी बना दी जाय अर्थात् बाबू अमीर सिंह, राय कृष्णदास और पण्डित रामनारायण मिश्र।

(४) मिस्टर एस० आर बट्टा आडिटर की रिपोर्ट के विषय में बाबू गौरीशंकर प्रसाद जी की यह सम्मति उपस्थित की गई कि सभा की कैश बुक और लेजर में परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है।

निश्चय हुआ कि बाबू गौरी शंकर प्रसाद जी की सम्मति स्वीकार की जाय।

(५) बाबू गौरी शंकर प्रसाद का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभाभवन में नौकरों के रहने के स्थान के पीछे म्युनिसिपैलिटी की जो भूमि ३० वर्ष के लिये एक रुपये वार्षिक पर ली गई है उस से सभा को कोई लाभ नहीं है। अतः यह भूमि छोड़ दी जाय।

निश्चय हुआ कि यह प्रस्ताव स्वीकार किया जाय।

(६) नए सिक्कों पर नागरी अक्षरों के लिये गवर्मेंट से पुनः प्रार्थना करने के सम्बन्ध में अनेक सज्जनों के प्रस्ताव उपस्थित किए गए।

निश्चय हुआ कि ये आगामी अधिवेशन में उपस्थित किए जांय।

(७) ललिता पारितोषिक के पत्रों के विषय में सब कमेटी की यह रिपोर्ट उपस्थित की गई कि यह पारितोषिक चमेली नाम की नाटिका को दिया जाय।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(८) बिना तार की टेलिग्राफी शीर्षक लेख पर बाबू लक्ष्मीचन्द एम० ए० की सम्मति उपस्थित की गई। निश्चय हुआ कि यह लेख पदक के योग्य नहीं है।

(९) बाबू भगवान दास एम० ए० का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि कार्य्य की अधिकता से वे "वर्तमान शिक्षाप्रणाली" विषयक लेखों पर अपनी सम्मति नहीं दे सकेंगे।

निश्चय हुआ कि इन लेखों पर सम्मति देने के लिये उनके स्थान पर बाबू लक्ष्मीचन्द एम० ए० नियत किए जांय।

(१०) हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मंत्री का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने अपने नियम (५·३) के अनुसार हिन्दी साहित्य सम्मेलन से सभा का सम्बन्ध करा लेने के लिये लिखा था।

निश्चय हुआ कि साम्प्रति एक वर्ष के लिये यह सम्बन्ध करा लिया जाय

(११) बाबू बाल मुकुन्द वर्म्मा के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि जनवरी १९१२ से नागरी प्रचारिणी पत्रिका का वार्षिक मूल्य १) रु० के स्थान पर १॥) रु० कर दिया जाय।

(१२) स्वामी प्रज्ञानानन्द गिरि का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभा के व्यय की पूर्ति के लिये काशी में चन्दा

एकत्रित करने के लिये कुछ सज्जनों का एक डेप्युटेशन नियत कर दिया जाय ।

निश्चय हुआ कि यह प्रस्ताव आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय ।

(१३) पण्डित सूर्य्यनारायण त्रिपाठी और पण्डित माधव प्रसाद पाठक के पत्र उपस्थित किए गए जिन में इन सज्जनों ने कोश कार्य्यालय का निरीक्षक होना अस्वीकार किया था।

निश्चय हुआ कि ये पत्र आगामी अधिवेशन में उपस्थित किए जांय और इस बीच में कोश विभाग के सब बिलों को स्वीकृत करने का अधिकार पण्डित रामनारायण मिश्र को दिया जाय ।

(१४) पण्डित चन्द्रधर शर्म्मा का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने हिन्दू अधिनिवेशन शीर्षक लेख के विषय में यह सम्मति दी थी कि इसे लेख माला में छापना उचित न होगा। निश्चय हुआ कि पत्रिका के सम्पादक यदि पत्रिका में इसे छापना उचित समझें तो उसमें इसे प्रकाशित कर दें।

(१५) पण्डित चन्द्रधर शर्म्मा का "सुकन्या की वैदिक कहानी" शीर्षक लेख उपस्थित किया गया ।

निश्चय हुआ कि यह लेखमाला में प्रकाशित किया जाय

(१६) पुस्तकालय के निरीक्षक का २३ मार्च का पत्र उपस्थित किया गया ।

निश्चय हुआ कि यह आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय ।

(१७) बाबू दंशीधर वैश्य का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि संस्कृत की प्रथम परीक्षा में हिन्दी को भी स्थान दिलाने के लिये सभा उद्योग करे

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय ।

(१८) बुलन्दशहर की नागरी प्रचारिणी सभा के मंत्री का पत्र उपस्थित किया गया जिस में उन्होंने लिखा था कि उन की सभा इस सभा की शाखा सभा बनाई जाय ।

निश्चय हुआ कि सम्प्रति एक वर्ष के लिये यह स्वीकार किया जाय ।

(१९) निश्चय हुआ कि राम अवतार दफ़्तरी अभी एक मास के लिये ८) रु० मासिक वेतन पर नियत किया जाय और इस के विषय में बाबू माधव प्रसाद की सम्मति आगामी अधिवेशन में उपस्थित की जाय ।

(२०) बाबू गौरीशंकर प्रसाद का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने कार्य की अधिकता से प्रबन्धकारिणी समिति का सभ्य होना अस्वीकार किया था ।

निश्चय हुआ कि उनके स्थान पर बाबू काली प्रसन्न चटर्जी प्रबन्धकारिणी समिति के सभ्य चुने जांय ।

(२१) उपमंत्री ने सूचना दी कि पण्डित शीवानन्द शर्म्मा के यहां तीन वर्ष का चन्दा बाकी है जिसे उन्होंने अब तक नहीं दिया । अतः अब नियमानुसार उनका नाम सूची "ख" में लिखा जाना चाहिए ।

निश्चय हुआ कि प्रबन्ध कारिणी समिति में उनके स्थान पर बाबू भोलानाथ महरोत्रा चुने जांय ।

(२२) बाबू जय शंकर प्रसाद का २१ मार्च का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने सभा के पुस्तकालय के अंग्रेजी विभाग से बराबर एक पुस्तक लेने की आज्ञा मांगी थी ।

निश्चय हुआ कि इसके लिये उन्हें आज्ञा दी जाय ।

(२३) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई ।

साधारण सभा

शनिवार ता० २७ अप्रैल १९१२ सन्ध्या के ६ बजे । स्थान—सभाभवन

(१) गत अधिवेशन (तारीख ६ अप्रैल १९१२) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ ।

(२) निम्नलिखित सज्जन नवीन सभासद चुने गए:-(१) ला० मक्खन लाल कारिन्दा, मु० पिलुआ, जिला एटा १।।)(२) बाबू मंजूलाल मेहरा, ठि० ला० रामदयाल मल लाला गोरीशंकर, कुंजगली, काशी १।।) (३) पं० रामबिहारी दुबे, केराकत, जिला जौनपुर १।।) (४) बा० जमुना दास उदासी, कसबा केराकत, जि० जौनपुर १।।) (५) बाबू हरिहरप्रसाद सिंह, सरायगोवर्द्धन, काशी १।।) (६) पं० संतन प्रसाद पांडे. सदर बाजार, सागर ३) (७) बा० माताप्रसाद निगम, रजिस्ट्रार कानूनगोय, हमीरपुर १।।) (८) पं० गनपत राव आत्माराम, अहलमद कलक्टरी, हमीरपुर १।।) (९) बा० कृपाराम सिंह, गिर्दावर कानूनगो, शाहगंज, जौनपुर १।।) (१०) बा० ठाकुरप्रसाद सिंह सेक्रेटरी राजपूतक्लब, चौगाईं,पो० मुरार, जि० आरा १।।) (११) ठाकुर रघुराज सिंह सवई, कैसरगंज, जिला बहराइच ५) (१२)

पं० यदुनाथ शुक्ल, मिसदायर कानूनगो, कैसरगंज, बहराइच ५) (१३) पं० सूर्य्य प्रसाद शर्म्मा, इन्स्पेक्टर कानूनगोयान, ज़िo गिर्द, ग्वालियर १॥) (१४) बाबू चन्द्रदीप सिंह, मु० गढ़मेलपुर, पो० चौरपुर, जि० बलिया, १॥) (१५) बा० सुन्दर लाल चौधरी, इन्स्पेक्टर कानूनगोयान, ज़ि० शिवपुर १॥) (१६) बा० विश्वनाथ लाल, ख्वाजिसपुर, पो० बहादुरगंज, ज़ि० गाज़ीपुर १॥) (१७) पं० शम्भूदयाल दुबे, कापर्मोर्स बंक, बहराइच १॥) (१८) पं० ज्वालाप्रसाद पांडे, मेनेजर पीपुल्स इण्डसिट्रयल बंक लिमिटेड, बहराइच १॥) (१९) पं० नोखेलाल शर्म्मा उपनाम नारायण दत्त शर्म्मा, फ़स्ट असिस्टेंट मास्टर, ब० वी० मिडिल स्कूल, पो० विजयराघवगढ़, त० मुरवाड़ा, ज़ि० जबलपुर १॥) (२०) महामहोपाध्याय पं० मुकुन्दराम शास्त्री मुहल्ला सुत्थू, श्रीनगर, (काश्मीर) ३) (२१) श्रीयुत बाबू योगेन्द्र सिंह साहब, होम मिनिस्टर, पटियाला १०) (२२) बाबू केशवराम वर्म्मा, चन्दरशहर बाज़ार, पेशावर शहर ३) (२३) पं० विष्णुप्रसाद त्रिपाठी, जनौरा, पो० मक्खीगंज, जि० मैनपुरी १॥) (२४) बा० हीरासिंह पेन्शनर, स्कूलमास्टर, चक नं० १३० दखणी पो० हयडेवाली, सरगोधा ५) (२५) बाबू महानन्द नौटियाल टिहरी, गढ़वाल १॥) (२६) बा० विश्वेश्वर प्रसाद गैरोला टिहरी, गढ़वाल १॥) (२७) बा० महादेव प्रसाद मिगनेलर, शोहरत गंज, जि० बस्ती १॥) (२८) बा० क्षेत्रपाल वर्म्मा, काकोरी, पो० पेसारा, जि० जौनपुर १॥) (२९) पं० केदारनाथ शुक्ल औरैया, जि० इटावा १॥) (३०) ला० गौरी दयाल, मु० सराय अघाहरपुर, एटा १॥) (३१) बा० हरीशंकर, कुंजगली, बनारस सिटी १॥)

(३) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफे उपस्थित किए गए:—(१) बाबू कन्हैयालाल पोद्दार, रामगढ़, जि० सीकर (२) बा० विश्वेश्वर सिंह, हौज़ कटोरा, काशी ।

निश्चय हुआ कि ये स्वीकार किए जांय ।

(४) मंत्री ने इस सभा के सभासद पण्डित रामभरोस शुक्ल, पो० सुमेरपुर खास, जि० हमीरपुर की मृत्यु की सूचना दी जिस पर सभा ने शोक प्रकट किया ।

(५) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईं:-

श्रीयशोविजय जी जैन पाठशाला, काशी- जैनशासन दीपमालिका संख्या । पण्डित श्रीधर शिवलाल, ज्ञानसागर छापाखाना, बम्बई-नीतिवाक्य रत्नावली । मेनेजर, माडर्नप्रेस इलाहाबाद-दिल्ली दर्बार, प्रियम्वदा । बाबू चतुर्भुजसहाय वर्म्मा-देवघर, महामारी निर्णय चिकित्सा । बाबू निहालचन्द्र गौड़, सेकेंड मास्टर, इञ्जीनियरिङ्ग सेक्शन, विक्टोरिया कालेज, दौलतगंज, लश्कर, ग्वालियर-सर्वेइङ्ग और लेवेलिंग सिविल इञ्जीनियरिङ्ग । बाबू लल्लू भाई गुलाब चन्द जवेरी, १०९ सराफ बाज़ार बम्बई-The testimony of science in favour of Natural & Humane Dit संयुक्त प्रदेश की गवर्न्मेंट-Annual Progress Report of the Superintendent, Hindu & Buddhist Monnments, Northern Circle for the year ending 31st March 1911. कुंवर जोध सिंह मेहता, जोधपुर- मेदपाट राजवंशीय संक्षेप इतिहास, महाराणा प्रताप सिंह जी की चित्र छिहत्तरी, पाखण्ड विडम्बनम्, बसन्त बहार । ठाकुर बहादुर सिंह, भक्त ठाकुर, बिदासर, बीकानेर-List of Kshatriya Rajpoot caste पण्डित श्रीधर पाठक, लूकरगंज इलाहाबाद-वनाष्टक ५ प्रतियां । पण्डित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, कलकत्ता-संसार-चक्र, निरंकुशता निदर्शन । पं० शिवकुमारशर्म्मा, जगन्नाथपुर गोरखपुर-शिवरत्न । बा० बालमुकुन्द वर्म्मा, काशी-मालती । सेक्रेटरी, हिन्दू गर्ल्स स्कूल, लखनऊ-रामजन्मोत्सव । मि० जी० वाई० मानिकराव-शिकारी दोस्त । खरीदी गईं तथा परिवर्तन में प्राप्त-बारह मासी गोस्वामी तुलसीदास कृत, कबीर साखी संग्रह, धर्मदास की शब्दावली, राजस्थान इतिहास भाग १ और २, वृहद्भजन रत्नमाला, यमालय से लौटा हुआ मनुष्य, आस्मानी लाश, मागधी कुसुम, मदनमोहिनी प्रथम भाग, जीवन सन्ध्या, चन्द्रमुखी भाग १ और २, नाटक रामायण, डामर तन्त्रम्, रेखा गणित अध्याय १ और २, कौतुक रत्नाकर भाग १ और २, दो नक्काबपोश तीसरा भाग रसमोदक हज़ारा (हस्तलिखित), प्रेम सागर (हस्तलिखित) Indian Antiquary for March 1912.

(६) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई ।

प्रबन्धकारिणी समिति

शनिवार ता० २७ अप्रैल १९१२ सन्ध्या के ६¼ बजे । स्थान–सभाभवन

(१) पण्डित रामनारायण मिश्र के प्रस्ताव तथा राय कृष्णदास के अनुमोदन पर बाबू श्यामसुन्दर दास सभापति चुने गए।

(२) नए सिक्कों पर नागरी अक्षरों को स्थान दिलाने के लिये पुनः उद्योग करने के सम्बन्ध में कई सज्जनों के प्रस्ताव उपस्थित किए गए।

निश्चय हुआ कि करेंसी नोट पर नागरी अक्षरों के सम्बन्ध में जो प्रश्न कौंसिल में किया गया था उस का उत्तर जो गवर्नमेंट ने दिया है उसकी प्रतिलिपि के सहित यह विषय आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय।

(३) पण्डित माधव प्रसाद पाठक और पण्डित सूर्य्यनारायण त्रिपाठी के पत्र उपस्थित किए गए जिन में इन सज्जनों ने कोश कार्यालय का निरीक्षक होना अस्वीकार किया था।

निश्चय हुआ कि पण्डित देवी प्रसाद उपाध्याय कोश कार्यालय के निरीक्षक चुने जांय पर यदि वे किसी कारण से इस पद को ग्रहण न कर सकें तो पंडित रामनारायण मिश्र से प्रार्थना की जाय कि वे इस पद को स्वीकार करें।

(४) कोश कार्यालय के निरीक्षक की जनवरी १९१२ की रिपोर्ट उपस्थित की गई जिस में उन्होंने लिखा था कि (क) कोश कार्यालय में छुट्टियां अधिक होती हैं (ख) कार्यालय में उपसम्पादक लेखक का कार्य न किया करें और (ग) प्रतिदिन ठीक समय से कार्यारम्भ होना चाहिए।

निश्चय हुआ कि (क) सभा के कार्यालय के लिये जितनी छुट्टियां नियत हैं उन की अपेक्षा कोश विभाग में वर्ष में केवल ५ छुट्टियां अधिक हैं और इस में कमी करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती (ख) बाबू श्याम सुन्दर दास जी ने सूचना दी कि उन्होंने केवल थोड़े समय के लिये विशेष अवस्था में ऐसा प्रबन्ध किया था और अब उप-सम्पादक लेखक का कार्य नहीं करते (ग) निरीक्षक इस बात का विशेष ध्यान रक्खें कि कोश कार्यालय का कार्य नियमानुकूल ठीक समय पर सदा हो।

(५) पंडित रामनारायण मिश्र का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि उन्हें लगभग ३ मास तक बाहर रहना पड़ेगा। अतः इतने दिनों के लिये मंत्री के पद पर कोई सज्जन नियत कर दिए जांय।

निश्चय हुआ कि पंडित रामनारायण मिश्र जी की अनुपस्थिति में पंडित निष्कामेश्वर मिश्र मंत्री के पद पर कार्य करें।

(६) हिन्दी पुस्तकों की खोज के निरीक्षक की सन् १९११ की रिपोर्ट उपस्थित की गई।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार की जाय और गवर्नमेंट की सेवा में सूचना के लिये भेज दी जाय।

(७) समय अधिक होजाने के कारण निश्चय हुआ कि इस समय सभा विसर्जित की जाय और शेष कार्य्यों के लिये पुनः तारीख २८ अप्रैल १९१२ को सन्ध्या के ७ बजे अधिवेशन हो।

प्रबन्धकारिणी समिति ।

तारीख २८ अप्रैल १९१२ संध्या के ७ बजे । स्थान-सभाभवन ।

(१) बाबू श्यामसुन्दर दास जी सभापति चुने गए।

(२) ब्यावर की नागरी प्रचारिणी सभा के मंत्री का चैत्र बदी १२ का पत्र उपस्थित किया गया जिस में उन्होंने लिखा था कि उनकी सभा इस सभा की शाखा सभा बनाई जाय।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(३) निश्चय हुआ कि डूसन्स मेटाफिजिक्स का अनुवाद तथा प्रोफेसर गंगानाथ झा का प्राच्यदर्शन प्रदीप, ये दोनों ही नागरी प्रचारिणी लेखमाला में प्रकाशित किए जांय।

(४) हिन्दू अधिनिवेशन शीर्षक लेख के विषय में नागरी प्रचारिणी पत्रिका के सम्पादक की सम्मति उपस्थित की गई कि यह लेख सभा द्वारा प्रकाशित करने योग्य नहीं है।

निश्चय हुआ कि यह लेख बाबू श्यामसुन्दर दास जी के पास सम्मति के लिये भेजा जाय।

(५) मंत्री ने सूचना दी कि काशी में दर्बार के समय सभा को जो कुर्सियां मंगनी दी गई थीं उन में से आठ

गई कुर्सियां पुरानी कुर्सियों से बदल गई हैं । इन के मूल्य का १०) रु० का बिल भेजा गया है पर इसका द्रव्य अभी तक प्राप्त नहीं हुआ ।

निश्चय हुआ कि यदि १५ दिन के भीतर सभा की कुर्सियां अथवा उनका मूल्य न मिल जाय तो इसके लिये बनारस के कलेक्टर को लिखा जाय ।

(६) बाबू शारदा चरण मित्र का १६ अप्रैल का पत्र उपस्थित किया गया जिस में उन्हों ने लिखा था कि "देवनागर" को प्रकाशित करने का भार सभा अपने ऊपर ले और इसके लिये वे आर्थिक सहायता सभा को देंगे ।

निश्चय हुआ कि सभा की सम्मति में यदि वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन समिति को इस पत्र के निकालने का भार सौंपें तो उत्तम होगा ।

(७) पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और पण्डित चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी का पत्र उपस्थित किया गया जिस में उन्हों ने लिखा था कि सभा द्वारा दादू दयाल की बानी और दादू दयाल के सबद का जो संस्करण प्रकाशित हुआ है उस में बहुत अशुद्धियां हैं और इनका शुद्ध शुद्ध पत्र बन जाना ठीक नहीं होगा । इस कारण सभा इन पुस्तकों की बिक्री बन्द कर दे ।

निश्चय हुआ कि इन पुस्तकों की बिक्री आज से बन्द कर दी जाय ।

(८) मुंशी देवी प्रसाद मुन्सिफ़ के पत्र उपस्थित किए गए जिन में उन्होंने लिखा था कि क) युवती योग्यता तथा सिन्ध के इतिहास की प्रतियां सभा उन्हें अर्द्ध मूल्य पर दिया करे और (ख) सिन्ध के इतिहास के दूसरे भाग के सम्पादन के लिये उन्हें उसकी १०० प्रतियां बिना मूल्य दी जाय ।

निश्चय हुआ कि (क) केवल एक बार वे इन पुस्तकों की जितनी जितनी प्रतियां कहें उतनी उन्हें अर्द्ध मूल्य पर भेज दी जांय (ख) सिन्ध के इतिहास के दूसरे भाग के सम्पादन के लिये उन्हें उस पुस्तक की एक सौ प्रतियां दी जांय ।

(९) पंडित बजरंग दत्त शर्मा का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि कचहरियों के कागज़ों में उर्दू आदि के जो शब्द लिखे जाते हैं उन के प्रतिरूप हिन्दी शब्द सभा द्वारा संगृहीत और निश्चित होने चाहिएं ।

निश्चय हुआ कि यह कार्य किस प्रकार किया जाय और इस में क्या व्यय होगा इस सम्बन्ध में बाबू गौरीशंकर प्रसाद की सम्मति ली जाय ।

(१०) संयुक्त प्रदेश की हिन्दी हस्तलिपि परीक्षा के सन् १९१२ के पर्चे उपस्थित किए गए ।

निश्चय हुआ कि इसकी परीक्षा का भार भी उसी सब-कमेटी को सौंपा जाय जो ग्वालियर की हस्तलिपि परीक्षा के लिये नियत की गई है ।

(११) स्वामी प्रकाशानन्द गिरि का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभा के ऋण की पूर्ति के लिये काशी में चन्दा एकत्रित करने के लिये कुछ सज्जनों का डेप्युटेशन नियत कर दिया जाय ।

निश्चय हुआ कि इस प्रस्ताव पर फिर विचार किया जाय ।

(१२) पुस्तकालय के निरीक्षक का २३ मार्च का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्हों ने लिखा था कि (क) पूर्व पुस्तकाध्यक्ष पं० कन्हैया लाल को पुस्तकालय का चार्ज देने के लिये १ जनवरी से २ मार्च १९१२ तक का वेतन भी दिया जाय (ख) पुस्तकालय के नवीन सूचीपत्र में फिर से संशोधन करने की आवश्यकता है (ग) पुस्तकालय में जो सूचीपत्र रक्खा है वह बहुत जीर्ण हो गया है अतः उस की दूसरी नक़ल करवा ली जाय (घ) पण्डित केदारनाथ पाठक पुस्तकाध्यक्ष को १२) मासिक वेतन दिया जाय ।

निश्चय हुआ कि (क) यह स्वीकार किया जाय (ख) निरीक्षक से प्रार्थना की जाय कि वे इसके संशोधन का भार अपने ऊपर लें और यह कार्य पुस्तकाध्यक्ष से अपनी देख भाल में करावें (ग) नम्बर क्रम से पुस्तकों की जो सूची है उसकी नक़ल करवा ली जाय घ पण्डित केदारनाथ पाठक को आगामी जुलाई से १२) रु० मासिक वेतन दिया जाय ।

(१३) निश्चय हुआ कि बाबू ब्रजचन्द्र ने जिस परिश्रम और योग्यता से पुस्तकालय को ठीक किया है उसके लिये उन्हें धन्यवाद दिया जाय ।

(१४) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई ।

बाल मुकुन्द वर्मा उप मंत्री ।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

भाग १६ | जून १९१२ | संख्या १२

वाणी और वर्ण का विकाश।

जड़ और चेतन में प्रधान भेद यही है कि चेतन अपने भावों को दूसरों पर प्रगट कर सकते हैं और दूसरों के भावों को जान सकते हैं पर जड़ न तो अपने भावों ही को दूसरों पर प्रगट कर सकते हैं और न वे दूसरों के भावों को समझ ही सकते हैं। भावों को प्रगट करने में विशेष काम संकेतों से लेना पड़ता है। यद्यपि आकृति और चेष्टा भावों के प्रगट करने में सहायक हैं पर फिर भी संकेतों के बिना ये स्वयं दूसरों पर भावों को प्रकाशित करने में असमर्थ हैं।

एक वृक्ष मुरझा रहा है, उसके पत्ते कुम्हला गए हैं और वर्ण पीला पड़ गया है। इसके देखने से किसी मनुष्य को यह अनुमान हो सकता है कि उस वृक्ष को जल की आवश्यकता है अथवा उसम खाद की जरूरत है या उसे कोई रोग होगया है जिस से उसकी ऐसी आकृति होगई है पर इतने मात्र से यह न समझना चाहिये कि उसने अपनी यह आकृति इसलिये बनाई थी कि दूसरों को अपनी अवस्था का बोध कराए। उसकी ऐसी आकृति से किसी को उसकी आवश्यकताओं का भले ही बोध हो जाय पर उसने स्वयं अपनी ओर से अपनी दशा और आवश्यकताओं का बोध कराने के लिये कोई प्रयत्न नहीं किया। अतः हम उसके मुरझाने आदि की आकृति होने पर भी संकेत नहीं कह सकते।

एक पक्षी तीर लगने से पृथिवी पर गिर पड़ा है और तड़प रहा है, यह चेष्टा है। इससे दूसरे को उसकी अवस्था और दुःख का भले ही बोध हो पर वह बोध कराने के लिये ऐसा नहीं कर रहा है। वह जो कुछ कर रहा है अपने दुःख से व्याकुल हो कर कर रहा है उसमें व्याकुलता से बोध कराने की शक्ति जाती रही है।

एक कुत्ता अंधेरी रात में किसी बाहरी मनुष्य को देखता है और उसे देख कर भूंकता है जिसे सुन दूसरे और कुत्ते उसके पास पहुंच जाते हैं। यह संकेत है जिसे पहिले कुत्ते ने दूसरे कुत्तों के प्रति किया।

एक बन्दर एक पेड़ पर बैठा है। उस पर एक आदमी नीचे से पत्थर फेंकता है। बन्दर कुछ मुंह से चीखता है और आकृति बनाकर उस आदमी की ओर ऐसी चेष्टा करता है मानों वह उस पर आक्रमण करने को है। उसका शब्द सुन दूसरे बन्दर आस पास से उस के पास दौड़ आते हैं। यह सब कुछ संकेत है क्योंकि उस बन्दर ने यह चेष्टा और शब्द दूसरों पर अपने भावों को प्रकट करने के लिये किया थी।

एक पुरुष काश-रोग-ग्रस्त है। वह पड़ा खांस रहा है। यह खांसने का शब्द संकेत नहीं है क्योंकि उसका अभिप्राय अपना दुःख दूसरों पर प्रगट करना नहीं है। पर यदि वह दूसरों को अपनी अवस्था का बोध कराने के लिये खांसे तो वही खांसना संकेत कहा जायगा।

इन सब उदाहरणों से यह स्पष्ट रूप से जाना जाता है कि अपने भावों को दूसरों पर प्रकट करने का प्रधान साधन संकेत हैं। यह संकेत दो प्रकार का होता है दृश्य और श्राव्य। हाथ पैर मुख आदि अंगों द्वारा अपने अभिप्राय का बोध कराने के लिये कुछ ऐसी आकृति बनाना या चेष्टा करना जिसे देख कर किसी को उसके भीतरी भावों का बोध हो दृश्य संकेत है। जैसे किसी भूखे का पेट पर हाथ रख कर अपनी भूख को प्रकट करना वा प्यासे का मुंह बनाकर दूसरे को यह बोध कराना कि वह पानी चाहता है इत्यादि इस प्रकार के संकेत हैं जो प्राय: समुपस्थित होके बोध कराने के लिये किये जाते हैं। मुंह से कुछ ऐसे शब्द निकालना जिससे सुननेवाले को उसके भावों का बोध हो श्राव्य संकेत है जैसे किसी प्राणी का सुमने वालों को अपनी पीड़ा का बोध कराने के लिये कराहना। इस प्रकार के संकेत द्वारा दूरस्थ प्राणियों पर भी यदि उन तक शब्द की गति है अपने अभिप्रायों का बोध कराया जा सकता है।

भाषा भी एक प्रकार का श्राव्य संकेत है जिस में प्रत्येक आकृति क्रिया और भावों के लिये शब्द नियत होते हैं जिनको संयोजित कर अपने विचारों को हम दूसरों पर प्रकाशित करते हैं। इन शब्दों के विस्तार होने ही पर मनुष्यों को अपने भावों को प्रकाश करने की योग्यता हुई है। पहिले मनुष्यों की आवश्यकतायें इतनी प्रविवर्धित नहीं थीं। उसकी प्रधान आवश्यकतायें वेही थीं जो और प्राणियों की हैं अर्थात् भोजन की प्राप्ति, वा तुत्प्रतीकार और आत्मरक्षा। इन्हीं आवश्यकताओं के लिये मनुष्य में वाणी का विकाश हुआ है। यह वाणीविकाश न केवल मनुष्यों ही में हुआ अपितु समस्त चेतन प्राणी मात्र में हुआ है।

प्राणियों का स्वभाव है कि वे अकेले नहीं रहते हैं बल्कि दो चार दस बीस मिल कर एक जथा बांध कर रहते हैं। भयानक से भयानक जन्तु अकेले नहीं रहते। अकेले रहने से उनका जी ऊब जाता है और जीना दोभर हो जाता है। एक से अधिक को एक साथ रहने से उनको जीवन में बड़ी सहायता मिलती है। एक दूसरे की रक्षा में सहायता करता है, उस के सुख दुःख का शरीक होता है। इस प्रकार मिल जुल कर रहने से उन में एक प्रकार की सहानुभूति हो जाती है। अपने भावों को दूसरों पर प्रकट करने के लिये वा उन से सहायता प्राप्त करने के लिये उनको चुप चाप नहीं रहना पड़ता है। चुप चाप रहने से

उनमें और जड़ में कोई भेद नहीं रहता। ऐसा करने के लिये उन को कुछ चेष्टा करनी पड़ती है, आकृति दिखलानी पड़ती है और मुंह से कुछ शब्द निकालने पड़ते हैं। ये सामग्रियां प्रायः सभी जन्तुओं के लिये समान नहीं हैं। चींटी से लेकर हाथी तक सभी जन्तु इन्हीं संकेतों द्वारा अपने भावों को दूसरों पर प्रकट करते हैं। सभी किसी न किसी ढंग से अपना काम चलाते हैं और अपने भावों को दूसरों पर आवश्यकतानुसार प्रकाशित करते हैं।

एक दिन मैंने एक चींटी को देखा जो दीवार के किनारे किनारे जा रही थी। राह में उसको एक मरा हुआ कीड़ा मिला जिसे वह अकेले नहीं खींच सकती थी। वह सीधे पीछे की ओर पलटी और जिस राह से आई थी वापस गई। मैं भी कुतूहल वश उसकी गति पर दृष्टि बांध कर बैठा और देखने लगा। चींटी चली जाती थी और राह में जितनी चींटियां मिलती थीं उनसे मुंह मिलाती जाती थी मानों उनसे कुछ कहती थी वा उस स्थान का जहां मृत कीड़ा पड़ा था संकेत करती थी। वे चींटियां बिना किसी रुकावट वा इधर उधर बहके हुए उस स्थान पर पहुंच जाती थीं। थोड़ी देर के बाद वह चींटी स्वयं आई और उन सब की सहायता से जो वहां उसके निर्देशानुसार एकत्रित हुई थीं उस कीड़े को घसीट ले गई।

इसी प्रकार अन्य पशु पक्षियों की दशा समझ लीजिए। कुत्ते को यदि आप कुछ दीजिए तो उसे खाकर वह ऐसी चेष्टा अपनी पूंछ हिला कर करैगा और आकृति बनावेगा मानों वह आपके सामने आपकी उस उदारता के प्रतीकार में अपनी कृतज्ञता प्रगट कर रहा है।

एक बार मैं एक गांव में जा रहा था। वहां मैंने एक बाहरी कुत्ते को देखा जिसे बहुत से उस गांव वाले कुत्ते घेरे हुए थे और काट रहे थे। कुत्ता मुझे देखते ही मेरी ओर दौड़ा और मेरे पैर के पास आकर लेट गया। मैंने उसे उन कुत्तों से बचा लिया। कुत्ता मेरे साथ हो लिया और सदा के लिये मेरे यहां रह गया मानों उसने अपनी प्राण रक्षा के बदले में सदा के लिये मेरा अनुगृहीत हो मेरा दासत्व स्वीकार किया।

इन बातों के दिखलाने से मेरा तात्पर्य्य यह है कि सब प्राणियों में भाव प्रकाशित करने का प्रधान साधन चेष्टा आकृति और वाणी है और उसका प्रथम उद्देश्य भोजन की प्राप्ति और आत्मरक्षा है।

मनुष्यों में अन्य प्राणियों से विशेषता यही है कि मनुष्य में विवेक और ग्राहकता है जिनकी अन्य प्राणियों में न्यूनता वा अभाव है। इन्हीं दो शक्तियों ने मनुष्य को इस उन्नति के शिखर पर पहुंचाया है। इन्होंने इस की आवश्यकताओं की संख्या को दो से अपरिमित किया। मनुष्य अन्य जन्तुओं के समान फल फूल वा अन्य प्राणियों के मांस ही पर तृप्ति न मान अन्नादि से नाना प्रकार के व्यंजन अपनी रुचि के अनुकूल बनाता है। यह स्वाभाविक कन्दमूलादि वा स्वच्छन्दजात फल अन्नादि की परवाह नहीं करता अपितु खेती करता है, बाग लगाता है और यदि पानी की आवश्यकता हो तो खेती और पेड़ों को कृत्रिम उपायों से सींचता है। वृक्षों पर न रह कर झोपड़ा महल प्रासाद बनाता है। अपने पंजों और दांतों को कमजोर समझ हथियार बनाता और उन्हें काम में लाता है। रात को चन्द्रमा के स्वाभाविक प्रकाश

की अपेक्षा न कर दीपक आदि से दिन की तरह अपने घरों को प्रकाशित करता है । यह पशु पक्षियों को पालता है और उन पर शासन करता है । कहांतक कहें जड़ से लेकर चेतन और कण से लेकर सूर्य्य तक से यथासमय काम लेता है । इसीलिये इसे सर्व श्रेष्ठ कहते हैं । पर क्या वह यह सब कुछ प्रथम से ही करता चला आया है ? क्या यह सर्गारंभ से ही ऐसा सभ्य था जैसा हम इसे आज देखते हैं ? नहीं इस ने यह सब कुछ लाखों वर्ष के लगातार अभ्यास और परीक्षा से सीखा है । इस में सभ्यता का इतिहास प्रमाण है । आज भी संसार में ऐसी जातियां है जिन्हें असभ्य वा जंगली कह सकते हैं जिनको सभ्यता की उस अवस्था तक जिन में अन्य दूसरी सभ्य जातियां हैं पहुंचने में लाखों वर्ष की देरी है । कहने की आवश्यकता नहीं कि सब से पहिले सभ्यता एशिया खंड में ही प्रारंभ हुई और यहीं के मनुष्यों ने उन्नति करना प्रारम्भ किया । इस उन्नति करने में इन को विशेष कर वाणी से सहायता मिली । इसी लिये हमारे पूर्वज आर्य्यों ने वेदों में वाणी वा सरस्वती की बड़ी स्तुति की है ।

यद्यपि आन्तरिक भावों के प्रकाश करने के प्रधान साधन तीन थे अर्थात् चेष्टा आकृति और वाणी, पर वाणी के विकाश होने पर यह सबसे मुख्य साधन होगई । चेष्टा और आकृति से हम केवल सम्मुखस्थ पुरुष पर ही अपने भावों को प्रकाश कर सकते हैं सो भी केवल दिन में वा प्रकाश में और विशेषता यह है कि वह आंखवाला हो अन्धा नहीं । पर वाणी से दिन रात प्रकाश अन्धकार में जहांतक शब्द की गति है और उस के समझनेवाले हैं हम अपने भावों को उसी प्रकार प्रकाशित कर सकते हैं जिस प्रकार उन के सामने उपस्थित होकर । इसी वाणी का दूसरा नाम भाषा भी है । संस्कृत में भाषा शब्द का अर्थ प्रकाश करने वाला है । भावों के प्रकाश करने से वाणी को भाषा कहते हैं ।

भाषा वाक्यों की योजना से बनती है । हम अपने भावों को प्रकाशित करने के लिये वाक्य की योजना करते हैं, वाक्य पदों की योजना से बनाते हैं और पद वर्णों की योजना से । संसार भर की प्राचीन और वर्तमान कालीन भाषाओं के मिलान करने से यह अनुमान होता है कि भाषाओं में समय समय पर विभेद पड़ता गया है । सांप्रति भाषाओं में सब से प्राचीन भाषा जो उपलब्ध हैं वेदों की भाषा है । इसे कितने लोग अनादि नित्य और ईश्वरीय भाषा आदि कहते हैं पर दर्शनकारों * ने और भारतवर्ष के आचार्य्यों ने केवल ज्ञान मात्र को ही नित्य माना है । उन की सम्मति है कि वेद के मन्त्र † ऋषियों के बनाये हैं जिन की भाषा में ‡ समयानुसार हेर फेर होता आया है ।

* यद्यपि टीकाकारों ने वेदों को ईश्वरप्रणीत सिद्ध करने की चेष्टा की है और अर्थों में खींचा तानी भी की है पर सूत्रों में कहीं भी इसे ईश्वरीय नहीं माना है । उदाहरण के लिये वैशेषिक दर्शन के सूत्र ' तद्वचनादाम्नायस्य प्रमाणम् ' को लीजिये टीकाकार 'तद्' से ईश्वर का ग्रहण करते हैं जो सर्वथा प्रकरण विरुद्ध है क्यों कि इस के पहिले का सूत्र 'यतो अभ्युदय निश्रेयससिद्धि स धर्मः' है । इस से स्पष्ट है कि 'तद्' शब्द धर्म के लिये आया है न कि ईश्वर के लिये और सूत्रार्थ यह होता है ।

'धर्म प्रवचनादाम्नायस्य प्रमाणम्' 'धर्म की व्याख्या करने से आम्नाय का प्रमाण है । इसी प्रकार अन्य दर्शनों की भी दशा जानिये ।

† साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवः । तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान्सम्प्रादुः । निरुक्त ।

‡ ननु चोक्तं नहि छन्दांसि क्रियन्ते । नित्यानि छन्दांसीति यद्यप्यर्थो नित्यः या त्वसौ वर्णानुपूर्वी साऽनित्या । तद्भेदाच्चैतद्भवति काठकम् कालापकम् मौदकम् पैप्पलादकमित्यादि ।

वेदों की भाषा इतनी प्राचीन होने पर भी यह निश्चित है कि उनकी रचना महाभारत के समय तक जारी थी। वेदों में स्वयं कितने ऐसे मन्त्र हैं जिन के ऋषि देवापि आर्ष्टिसेन जो शान्तनु के भाई थे तथा कृष्ण हैं जिन का काल निश्चित है। इतना सब कुछ होने पर भी यास्काचार्य्य के बहुत पहिले वेदों की भाषा अनिर्वचनीय हो चली थी जिसका उल्लेख स्वयं यास्काचार्य्य ने निरुक्त के प्रथम अध्याय में किया है। यद्यपि शाकटायन, यास्क, पाणिनि आदि महर्षियों ने वेदार्थ खोलने का यथासमय यथासाध्य प्रयत्न किया और अब भी विद्वान् लोग यत्न करते जाते हैं फिर भी कितने स्थल अबतक विवादग्रस्त हैं और कितने शब्द ऐसे हैं जिनका अर्थ अब तक साफ तौर से नहीं खुला है।

इतनी जटिल और दुर्भेद्य भाषा में वेदों के होने पर भी जब हम इन पर दृष्टिपात करते हैं तब हमें यह मालूम होता है कि वे एक सुविस्तृत और अर्थग्राही भाषा में लिखे गये हैं। वेदों के अर्थ ज्ञान के लिये पूर्वजों ने वेदाङ्गों की रचना की है जिनमें व्याकरण और निरुक्त प्रधान हैं। इन दोनों में शब्दों को यौगिक वा धातुज माना है, इन के सिद्धान्तानुसार एक एक धातु से अनेक शब्द बने हैं। ये धातु वास्तव मे कल्पित हैं क्योंकि धातुओं से शब्दों का निकलना परोक्ष काल में माना गया है जो वास्तव में ठीक है। अप्रत्यक्ष वा परोक्ष काल के विषय में प्रायः अनुमान के आधार पर कल्पना से ही काम लिया जाता है। यही कारण है कि परोक्ष काल विषयक ज्ञान में जब तक अनुमान की पुष्टि शब्द प्रमाण से न हो वह अधूरा रहता है। यही कारण है कि परोक्षकालिक बातों के विषय में पूर्व काल से ही मतभेद होता आया है और एक ही शब्द की व्युत्पत्ति कई प्रकार से भिन्न भिन्न आर्य्यों का करना इसमें प्रमाण है। हम यहां इस विषय पर उदाहरण प्रत्युदाहरण देकर लेख बढ़ाना नहीं चाहते। धातुओं की कल्पना सब से पहिले शाकटायनाचार्य्य ने की। यद्यपि ये धातु कल्पित थे पर कल्पना करने में इस बात पर पूरा ध्यान रक्खा गया था कि बहुत से समान सम्बन्ध रखने वाले शब्दों में से वह प्रधान अंश ले लिया जाय जिसके कारण से उनमें स्फोट संम्बन्ध (Phonetic) और अर्थ सम्बन्ध था। ये शब्द प्रायः एकाक्ष वा द्व्यक्ष थे जो आचार्य्यों के अनुमान से उन सब शब्दों के बीजभूत थे जिन में कि वे पाये जाते थे वा पाये जाते हैं। ऐसे शब्द को उनकी परिभाषा में धातु वा प्रकृति कहते हैं। ये धातु यद्यपि पूर्व में इस कल्पित रूप में न भी रहे हों पर यह निश्चित है कि प्रत्येक धातु का स्थानापन्न पूर्वकाल में अवश्य कोई ऐसा शब्द था जिस के उच्चारण और अर्थ में इन धातुओं से बहुत कुछ समानता थी और जिनसे कालांतर में एक एक शब्द से कितने शब्दों की सृष्टि हुई वा जिनके स्वयं कालान्तर में एक एक के कई कई भेद हो गए। एक एक धातु वा शब्द के नाना विभेद होने में कितना काल लगा होगा यह एक अत्यन्त गूढ़ प्रश्न है जिसका उत्तर देना नितान्त दुस्तर क्या दुःसाध्य है पर हां इतना कह देना अनुचित न होगा कि धातुओं से शब्दों की सृष्टि होने में कई सहस्र वर्ष क्या लाखों वर्ष लगे होंगे।

यह प्रकट है कि साहित्य काल से संहिता

काल और उस से मन्त्रकाल अत्यन्त प्राचीन है। पर यह एक रहस्य की बात है कि मन्त्र काल के पूर्व वाणी की क्या अवस्था थी? विचार करने से ज्ञात होगा कि मन्त्रकाल के पूर्व अनिर्दिष्ट काल में वाणी के विकाश के विचार से चार काल और बीत चुके हैं जिन को हम प्रयोगकाल, शब्द निर्माण काल और धातुकाल और वर्णविकाश काल कह सकते हैं। ये काल उत्तरोत्तर प्राचीनतर है। अगले तीनों कालों के लिये हम वाणी विकाश काल शब्द रख सकते हैं या वे वाणी विकाश के ही अवान्तर भेद माने जा सकते हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि आर्य्यों ने मन्त्रों की रचना उस समय की जब इनकी भाषा प्रौढ़ सुविस्तृत और अर्थग्राहिणी हो गई थी। वेदों की भाषा में पर्य्याय, अवस्था द्योतक शब्द, विकृत शब्द और मुहाविरे मिलते हैं। भाषा की यह अवस्था साधारण थोड़े काल में नहीं हो सकती। यह विचार समय समय पर विद्वानों को खटका है। डाक्टर हाग महोदय का अनुमान है कि निविद् इन मन्त्रों के मूल वा पूर्वरूप हैं। निविद् वे छोटे छोटे वाक्य हैं जिनका संग्रह परिशिष्ट में है। इनको पढ़कर यज्ञों में आहुतियां दी जाती हैं। पहिले तो यही बात विवादग्रस्त है कि निविद् मन्त्रों के पूर्व के हैं क्यों कि यदि ऐसा होता तो उनका संग्रह संहिता में होता न कि परिशिष्ट में। दूसरे यदि यह मान भी लें कि निविद् मन्त्रों के पहिले रचे गए तो भी उनकी भाषा में और वेदों की भाषा में कुछ भी अन्तर नहीं है। उनमें भी मुहाविरे आदि वैसे ही हैं जैसे मन्त्रों में हैं केवल भेद यही है कि वे छोटे छोटे वाक्य हैं और वेदों में संयुक्त वाक्य हैं।

भाषा पर दृष्टिपात करने से अनुमान होता है कि आर्य्य जाति को वेदों की रचना के पूर्व एक बहुतसा समय शब्दों के प्रयोग करने में बिताना पड़ा होगा। इस काल में उन लोगों ने शब्दों का प्रयोग करना प्रारंभ किया होगा। इस कल्प में उनकी भाषा इतनी विस्तृत नहीं थी कि वे चेष्टा और आकृति के बिना ही अपने भावों को सुगमता से दूसरे को बोध करा सकते रहे हों। बहुत दिनों तक अविरत अभ्यास करने पर उनको शब्दों का ठीक ठीक प्रयोग करना आया। इसी कल्प में उन लोगों ने निपात और उपसर्गों का निर्माण किया जो इसके पूर्व शब्द थे और भ्रष्ट हो कर इस रूप में आगये जो क्रिया के साथ मिल कर उसके अर्थों में कुछ विशेषता उत्पन्न करने में कुशल हुए। संभव है कि इस कल्प के रचे हुए मन्त्रों की भाषा का सुधार भाषा प्रौढ़ होने पर पीछे के ऋषियों द्वारा किया गया हो और इसी कल्प के ऋषियों को वेदों में पूर्व ऋषि आदि कहा गया हो। यह काल प्रयोग काल था जिसमें शब्दों को ठीक रूप में यथास्थान प्रयोग करना आर्यों ने सीखा।

इसके बहुत काल पूर्व से शब्द-निर्माण-काल का प्रारंभ हुआ जिसमें एक एक धातु वा मूल शब्द से काल और अवस्थादि भेद से अनेक अनेक शब्द विकृत हो कर निकले जिन के प्रयोग के अभ्यास को लोगों ने प्रयोग-काल में परिमार्जित किया। एक धातु से दश लकारों के पुरुष और वचन-भेद से तथा भिन्न भिन्न तद्धित कृदन्त और स्यादि

रूपों का निकलना कितने दिनों में हुआ इस का अनुमान करना बड़ा ही कठिन है। पर फिर भी इसमें कई हजार वर्ष लगे होंगे इस में कोई शक नहीं। इस काल में शब्दों का प्रयोग होता था पर यह शब्दप्रयोग ऐसा नहीं था कि सुननेवाला केवल शब्द मात्र को ही सुन कर बिना चेष्टा और आकृति देखे हुए ठीक ठीक अभिप्रायों को समझ लेता हो। चेष्टा और आकृति देखने पर भी वह बड़ी कठिनाई से अभिप्राय को समझता था। उच्चारण करनेवाला जब एक शब्द से बोध नहीं करा सकता था तब वह दूसरा शब्द उसी धातु से उत्पन्न बोलता था और इस प्रकार एक एक धातु से भिन्न शब्दों की सृष्टि हुई। इस कल्प में एक शब्द से बहुत बहुत अभिप्रायों का बोध करने की प्रथा थी। मनुष्यों का शब्द कोश इस समय इतना विस्तृत न था कि प्रत्येक अर्थ के लिये एक एक शब्द हो। इस कल्प के वाक्य यदि वैदिक काल के ऋषियों के सामने पड़ते तो वे लोग उनके समझने में हम से अधिक असमर्थ होते जितने हमलोग वेदों के समझने में होते हैं। क्योंकि उन्हें उसीके कल्प के लोग बड़ी कठिनाई से समझने में समर्थ होते थे जिन को अभिमुख कर के वे वाक्य कहे जाते थे और चेष्टा और आकृति द्वारा समझाने की चेष्टा भी की जाती थी। नामों में सब से पहिले सत्ववाचक संज्ञाओं की सृष्टि हुई और भाववाचक की बहुत पीछे उत्पत्ति हुई और यही कारण है कि भाव वाचक शब्द प्राय: समान नियम से बनते हैं और सत्व वाचक के बनने में एक नियम नहीं है।

शब्द निर्माण काल के बहुत पहिले धातु काल था। इस काल में मनुष्यों ने धातुओं वा मूलशब्दों को बोलना प्रारंभ किया जो पीछे के काल में बहुतों की प्रकृति हो गये। इस काल में शब्द प्राय: * अनुकृति से लिये गए। जैसे कोई पदार्थ जब ऊपर से वा कुछ दूरी से गिरता है तब 'पट' वा 'पत' शब्द होता है इस शब्द से 'पत्' अनुकृति मान कर इस का अर्थ गिरना समझा गया जिस से पत्र, पतन आदि शब्द तथा पतति आदि आख्यात पद निकले। इसी प्रकार सृ (सर) धातु 'सर' की अनुकृति है जो तेजी से किसी पदार्थ के चलने से होता है और इस से सर्पादि शब्द और आख्यात निकले। इसी प्रकार विचार करने से मालूम होगा कि संस्कृत भाषा के अधिकांश धातु अनुकरण से ली गई हैं। इस काल में शब्दों की सृष्टि होने पर भी अर्थावबोध कराने का प्रधान साधन चेष्टा और संकेत ही रहे।

इस प्रकार हमारे मन्त्रकाल के पूर्वजों को वाणी विकाशकाल के अन्तर्गत कई सहस्र वर्ष तक के तीन कालों के पर्वों को पार करना पड़ा जिन का हम ऊपर प्रयोगकाल शब्दनिर्माण काल और धातुकाल के नामों से परिचय दे चुके हैं। पहिले विशेष काम चेष्टा और आकृति के संकेतों से होता था पीछे वाणी से सहायता ली गई और अन्त में वाणी मुख्य और चेष्टा और आकृति सहायक मात्र रह गई पर अब तो वाणी ही प्रधान रह गई है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि धातु भी एक प्रकार के शब्द थे जो वर्णों के संयोग में बने थे पर

---

* इसविषय पर एक पृथक निबन्ध 'धातुओं का इतिहास' लिखा गया है।

क्या यह संभव है कि मनुष्यों को सभी स्वरों और व्यंजनों का उच्चारण करना एक साथ आ गया हो ? । इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में लिखा है :—

Of what phonetic form were earlier traditional speech signs is, as far as essentials are concerned, to be inferred with reasonable certainty. They were doubtless articulate, that is to say, composed of alternative consonant and vowel sounds like our present speech; and they probably contained a part of the same sounds which we now use. * * * What particular sounds and how many made up the first spoken alphabet is also a matter of conjecture merely; they are likely to have been the closest consonant and the openest vowels, medial utterance being of later development."

प्राचीन काल के मनुष्यों की भाषा कैसी थी और कैसे उच्चारण करते थे, जहां तक इस विषय के प्रधान तत्वांश से संबन्ध है युक्ति द्वारा निश्चय पूर्वक अनुमान किया जा सकता है। उन की भाषा हमारी वर्तमान कालिक भाषा की तरह स्वर और व्यंजन का संघात रूप थी और संभवतः उन की भाषा के शब्दों में हमारी भाषा के शब्दों का प्रधान अंश भी अवश्य था। आदि वर्णमाला में कितनी और कौन कौन प्रधान ध्वनि थी केवल अनुमान का विषय है पर प्रायः उस में संकुचिततम व्यंजन और उदात्ततम (वा स्पष्ट) स्वर थे और उन्हीं से मध्यवर्ती वर्णों का विकाश हुआ है।

मनुष्य की आकृति का यदि किसी जन्तु से मिलान होता है तो वह बन्दर है इसी लिये संस्कृत भाषा में उस का नाम वानर है जिस का अर्थ आधा मनुष्य है अर्थात् वानर जाति मनुष्य और पशुओं की मध्यवर्तिनी जाति है। यही समानता देख कर कितने ही पाश्चात्य विद्वानों की यह धारणा हो गई है कि मनुष्य जाति का प्रादुर्भाव बन्दरों से हुआ है। उन का कथन है कि पूर्व में एक और जाति थी जिसे Metamorphoses (परिवर्त्तनाभिमुख) वा किम्पुरुष कहते हैं। यह जाति बन्दरों और मनुष्यों के बीच की थी। आरोह (Evolution) के नियमानुसार मनुष्य जाति इसी जाति से निकली है। यद्यपि यह विचार यूरोप के लिये नवीन है पर हमारे लिये यह नवीन नहीं है। हमारे ग्रन्थों में इस सिद्धान्त का बीज स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। शतपथ ब्राह्मणों में किम्पुरुष से मनुष्य जाति की उत्पत्ति दिखाई गई है। रामायण में हनुमान आदि को वानर लिखा गया है और उन की आकृति कुछ ऐसी बतलाई गई है जो मनुष्य और वानरों के मध्य की कही जा सकती है तथा उन के कामों का वर्णन भी कुछ अद्भुत प्रकार का लिखा गया है जिसे अमानुष वा पशु और मनुष्य के बीच का कह सकते हैं जैसे वृक्षों का उखाड़ना, पत्थरों और डालियों का फेंकना समुद्र तैरना इत्यादि। ये लोग शाखा मृग वा पेड़ों के पशु कहे गये हैं। सभी मनुष्य जातियों का प्रादुर्भाव एक ही समय पृथ्वी के एक ही स्थान पर नहीं हुआ है। यदि ऐसा होता तो संसार भर की जातियों की आकृति सभ्यता भाषा और विचारों में घनिष्ठ समानता होती और दूरस्थ टापुओं में भी मनुष्यभक्षी राक्षसादि तथा असभ्य जातियां न मिलतीं। इन सब भिन्नताओं को देख कर यह स्पष्ट कहने का साहस होता है कि मनुष्य जाति का प्रादुर्भाव आरोह नियमानुसार

भिन्न भिन्न काल में भिन्न भिन्न स्थानों में हुआ। संभव है कि यह वानर जाति जिस का वर्णन रामायण में आया है बन्दरों से मनुष्य होने के आरोह मार्ग में रहे हों तभी तो इनकी आकृति आदि का वर्णन कवि ने पशुओं और मनुष्यों के बीच का लिखा है? अथवा कवि के समय में कोई ऐसी जाति रही हो जिसको देख कर उसने उनकी आकृति आदि का अनुमान किया हो। अस्तु।

अब यदि बन्दरों की बोली पर ध्यान दें तो ज्ञात होगा कि वे स्वरों के उच्चारण को तो यत्किंचित कर सकते हैं पर व्यंजनों का उच्चारण वे ऐसा करते हैं जो स्पष्ट रूप से अभिव्यंजित नहीं होता या जिसे अव्यक्त कह सकते हैं। स्वरों का उच्चारण तो समस्त पशु पक्षी कीट पतंगादि में जिन का शब्द हम सुन सकते हैं किसी न किसी रूप में, चाहे उन के मात्रानुसार उसे आप ह्रस्व दीर्घ आदि कुछ भी कहें, मिलेगा, पर व्यंजनों का उच्चारण सुव्यक्त रूप से मनुष्य ही कर सकता है। कितने पक्षी जिनको लोग केवल अपनी बोली सिखाने के लिये पालते हैं और बड़ा श्रम करने पर वे मनुष्यों की बोली सीख भी लेते हैं पर वे जब शब्द उच्चारण करेंगे तो स्वरों के उच्चारण चाहे वे ठीक कर लें पर व्यंजनों का वे सदा अव्यक्त ही उच्चारण करेंगे। मैं ने सैकड़ों तोते और मैना की बोलियों पर बहुत दिनों तक ध्यानपूर्वक विचार किया है पर उनके उच्चारित शब्दों में सुव्यक्त व्यंजनों का सदा ही अभाव पाया है। स्वरों को यथामात्रा उच्चारण करने से ही शब्दों की शुद्धि अशुद्धि का ज्ञान हो जाता है। कोयल के कूकने पर ध्यान दो। सुनने में तो वह 'कू' बोलती है पर इतने वर्ण समुच्चय मात्र में केवल स्वर 'ऊ' ही स्पष्ट है और व्यंजनांश नितान्त अव्यक्त है। इसी प्रकार आज कल विज्ञान की बढ़ती के समय में टेलीफोन और फोनोग्राफ़ द्वारा शब्दों को सुरक्षित रखने का विद्वान वैज्ञानिकों ने उचित प्रबन्ध किया है पर तो भी उनसे व्यंजनों का स्पष्ट सुव्यक्त रूप से अभिव्यंजन नहीं होता। हां, व्यंजनों के मात्रांश से काल तक नियमित तरंगों के उत्पन्न होने पर सुनने वालों को शब्द का बोध हो जाता है। विशुद्ध रूप से व्यक्त व्यञ्जनों का उच्चारण मनुष्य अथवा कोई ऐसा ही व्यक्ति कर सकता है जिसके मुख के भीतर के अवयवों की बनावट मनुष्य जैसी हो और जो बहुत दिनों तक निरन्तर अभ्यास करता रहा हो।

वर्णों के उच्चारण का प्रधान स्थान कंठ तालु और ओष्ठ है। इन्हींसे इनका उच्चारण समस्त पशु पक्षी करते हैं। किसी खोखले स्थान में वायु के प्रवेश करने वा उससे निकलने की दशा में ध्वनि वा वर्ण की उत्पत्ति होती है। वायु जब किसी संकुचित स्थान से निकलती वा उसमें प्रवेश करती है वा उसे किसी पदार्थ पर टकराते हैं तब उससे शब्द की उत्पत्ति होती है अर्थात् शब्द की उत्पत्ति में वायु का पीड़ित होना आवश्यक है। वायु के प्रवेश स्थान को कंठ और निकलने के स्थान को ओष्ट तथा दोनों के मध्यवर्ती स्थान को तालू कहते हैं। इन्हीं कंठ-तालू-ओष्ठ-स्थानो में वायु के अभिपीड़न करने से क्रमशः अ, इ, उ स्वरों तथा मात्रानुसार ही इन स्वरों के नाना भेदों की भी उत्पत्ति होती है। यह सभी लोग मानते हैं और परीक्षा से भी इसका पता चलता है कि स्वरों

का उच्चारण करना व्यंजनों की अपेक्षा सुगम है। इनके बाद यदि किसी वर्ण का उच्चारण सुगमता से हो सकता है तो वे अनुस्वार और विसर्ग हैं। अतः यह विशेष संभव है कि पहिला वर्ण जो मनुष्यों के मुँह से निकला वह ऐसा था जिसमें स्वर और अनुस्वार और स्वर और विसर्ग दोनों सम्मिलित थे। हमारा अनुमान है कि पहिले वर्ण जो मनुष्यों के मुँह से निकले वे * ओँ और अः थे जो पीछे से विकृत होकर ओ३म् और अथ हो गए। इन ही से † सब वर्णों की उत्पत्ति हुई। ये दोनों शब्द आर्य्यों में मांगलिक माने गए हैं और ओम् को जो इन दोनों में पहिला है 'शब्द ब्रह्म' कहा गया है। वेदों और उपनिषदों में ओम् की महिमा भरी पड़ी है। ये दोनों शब्द बहुत दिनों तक हां ‡ और कार्य्यारंभ का काम देते रहे हैं और इनही से 'हूं' और 'अब' शब्द निकले हैं जो अब तक अपने प्रकृत अर्थ को लिए हुए हैं।

हम ऊपर कह चुके हैं कि उच्चारण के मुख्य स्थान तीन हैं कण्ठ, तालु और ओष्ठ जिनसे अ इ और उ की उत्पत्ति हुई। पीछे इन्हीं तीन स्थानों से तीन ऐसे विलक्षण अव्यक्त वर्णों की उत्पत्ति हुई जो पीछे से समस्त स्पर्श वर्णों के प्रकृति वर्ण हुए। बहुत काल तक निरन्तर अभ्यास करने से उन लोगों ने तालु के ऊपर नीचे दो और भिन्न स्थानों का साक्षात्कार किया। ये दोनों * स्थान मूर्द्धा और दन्त थे। इन दो स्थानों से अभ्यास द्वारा दो और स्वरों का विकाश हुआ जो ऋ और ऌ कहलाए। अब यह पूर्वाविष्कृत अ इ और उ के साथ मिल कर पांच स्वर हो गए। इधर तालु-स्थान से उच्चरित अव्यक्त वर्ण से भी मूर्द्धा और दन्त स्थान भेद से दो और अव्यक्त वर्ण उत्पन्न हो गए। इस समय तक मनुष्यों की वर्ण-माला में पांच स्वर और पांच अव्यक्त व्यंजन एक अनुस्वार और एक विसर्ग बारह वर्ण थे।

इसके बहुत पीछे क्रमशः तालु मूर्द्धा दन्त और दांत और ओष्ठ के संयोग से चार अर्धव्यक्त वर्ण य र ल और व की उत्पत्ति हुई तथा ए ऐ और ओ औ संध्यक्षरों का विकाश हुआ। स्वरों को कालानुसार लोगों ने उच्चारण कर उन के ह्रस्व दीर्घ प्लुत और ऊंचे नीचे और मध्यम भेद से उदात्त अनुदात्त और स्वरित वर्णों का उच्चारण करना सीखा। विसर्ग व्यञ्जनों से निरन्तर अभ्यास द्वारा उन लोगों ने सकार को उत्पन्न किया और फिर इस को क्रमशः मूर्द्धा तालु और दन्त भेद से तीन भेदों में विभक्त कर ष, श और स का विकाश किया।

उन पांच अव्यक्त व्यञ्जनों को जिनका वर्णन हम ऊपर कर आये हैं क्रमशः सानुनासिक और निरनु नासिक दो भेद हो गये। इन का उच्चारण कैसा था

---

* ओंकारश्चाथ शब्दश्च द्वाविमौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ।

† ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधिविश्वेनिषेदुः। यस्तन्नवेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुः त इमेसमासते।

‡ श्वेत केतुर्हवा आरुणेयः पाञ्चालानां परिषदमाजगाम। स आजगाम जैवलिं प्रवाहणं परिचारय माणम्। तमुदीक्ष्या भ्युवाद कुमार ३ इति सभोः ३ इति प्रतिशुश्रावानुशिष्टो न्वसि पित्रत्योमिति होवाच। वृ० ६।२।१

* इसी लिये वर्णमालाकार ने चवर्ग के बाद ट वर्ग और तवर्ग को रक्खा है।

हम बतला नहीं सकते पर इतना हम अवश्य कह सकते हैं कि यदि ये अव्यक्त न थे तो अर्धव्यक्त से कुछ ही स्पष्ट थे जिनका उच्चारण करना हमारे लिये नितान्त कठिन क्या असंभव है। इसका उदाहरण यदि कहीं कुछ मिल सकता है तो उन असभ्य जंगली जातियों में मिल सकता है जिन में वर्णो का विकाश उतना नहीं हुआ है पर यह श्रोत्र और जिह्वा विषय है लिखने का विषय नहीं। सानुनासिक वर्ण पीछे अभ्यास द्वारा विशेष परिमार्जित हो कुछ व्यक्त कहे जाने योग्य हो दो भेदों में विभक्त हो गए। इस प्रकार प्रत्येक वर्ण से तीन तीन वर्णो की सृष्टि हुई और उनकी संख्या पांच से पन्द्रह हो गई। इससे बहुत पीछे अभ्यास बढ़ने से प्रत्येक निरनुनासिक के दो दो भेद हो गये जिन में प्राण का अल्पव्यय हुआ वे अल्पप्राण और जिनमें अधिक व्यय हुआ वे महाप्राण हुए। इस तरह बहुत दिनों निरन्तर अभ्यास और सहस्रों वर्ष के अटूट परिश्रम से मनुष्यों ने पच्चीस स्पर्श वर्णो का विकाश किया और मानवी भाषा की वर्णमाला को समाप्त कर धातु कल्प में पैर रखने की योग्यता प्राप्त की।

जगन्मोहन वर्म्मा।

कपिलवस्तु।

बौद्ध धर्म्म के तिरोभाव के साथ साथ भारतवर्ष से "कपिल वस्तु" का नाम तक मिट गया। अब इस समय "कपिलवस्तु" नाम का कोई राज्य नहीं है। भारतवर्ष बहुत ही प्राचीन देश माना जाता है। जितने नगर और ग्राम इस देश में ध्वस्त हुए हैं उतने और किसी देश में नहीं। यदुपति की मथुरा, रघुपति की वह अयोध्या न जाने कहां पानी के बुल्ले के समान विलीन हो गई। उनके नाम इतिहास के पृष्ठों की शोभा बढ़ाने को केवल रह गए हैं। रघुपति तथा यदुपति का नाम तो केवल दृष्टान्त की भांति लिया जाता है, कितने ही नरपतियों के कितने ही समुन्नत जाज्वल्यमान शिखर मिट्टी के ढेर में मिल गए हैं।

थोड़ी सी पुराकीर्ति का पता पा कर ही कितने पुरातत्वप्रिय पण्डित कभी कभी केवल कल्पना ही के सहारे ऐतिहासिक भ्रम और प्रमाद में पड़ जाते हैं। कपिलवस्तु (स्थान) के विषय में भी इसी प्रकार के अनेक भ्रम और प्रमाद प्रचलित चले आते थे। न जाने कै बार कितनी जगह कपिलवस्तु के चिन्ह मिलने का हल्ला हुआ और पीछे से भ्रम सिद्ध हुआ। तथापि अनुसन्धान की धुन वैसी ही बनी रही और अन्त में बा० पूर्णचन्द्र मुकर्जी ने अपने विलक्षण अनुमान और अध्यवसाय के बल से उस प्राचीन राजधानी का चिह्न संसार को दिखला दिया।*

कपिलवस्तु कहां थी इस बात को अनेक देशों के विद्वान पूछते आते थे। शाक्य नरपति शुद्धोदन के उस नगर का अवशेष जहां सिद्धार्थ के प्रमोद प्रासाद बने थे देखने को भावुक विद्वानों और बौद्ध मतानुयायी जन समाजों का उत्सुक रहना स्वाभाविक था। जिस भगवान बुद्ध

---

* Report on a tour of exploration of the antiquities in the Terrai, Nepal, by Babu Purna Chundra Mukarjee

के धर्म्म को मनुष्यजाति का तृतीयांश मानता है उनकी जन्म और लीला भूमि का पृथ्वी के गर्भ में अज्ञात रूप से पड़ा रहना कलंक की बात थी। बौद्धों का कपिलवस्तु सर्व श्रेष्ट तीर्थ है।

कपिलवस्तु के वर्तमान आविष्कारक सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता स्वर्गीय पूर्णचन्द्र मुखोपाध्याय हैं।

इन्होंने बहुत थोड़े समय और व्यय में नैपाल राज्य के अन्तर्गत हिमालय की तराई में साखुओं के जंगल से ढकी हुई ऊंची नीची भूमि को खुदवा कर कपिलवस्तु के गड़े हुए कीर्तिचिन्हों का उद्धार किया है। मायादेवी के मंदिर की दीवार, कोट का खंडहर, अशोक का स्तम्भ आदि इधर उधर दबे मिलते हैं। इनके ऊपर इतना जंगल था कि खड़े होने को जगह नहीं थी।

बौद्ध साहित्य जानने के पूर्व "कपिलवस्तु" के इतिहास को भी जान लेना आवश्यक है। कपिलवस्तु की व्युत्पत्ति के संबन्ध में बौद्ध साहित्य में नाना प्रकार की आख्यायिकाएं हैं।

एक आख्यायिका इस भांति है। उस समय इक्ष्वाकु वंशीय कोशल राज के चार पुत्र तथा पांच कन्याएं थीं। वे माता के कुटिल षटचक्र से देश से निकाल दी गईं।

उन्होंने महर्षि कपिल देव के आश्रम में जा आश्रय लिया और महर्षि की कृपा से उस महा वन के बीच एक विचित्र राजधानी स्थापित की। उन्होंने उस राजधानी का नाम कपिलवस्तु रक्खा क्यों कि वह सांख्य शास्त्र के प्रधान प्रवर्तक महामुनि कपिल का आश्रम था। यह घटना कब की है इतिहास उसका निर्णय करने में असमर्थ है। विकलवस्तु के राजवंश की स्थापना के साथ ही साथ पास ही में 'कोली' नामक एक और राजवंश की प्रतिष्ठा हुई। इन दोनों राजवंशों के बीच विवाह सम्बन्ध हो गया। इससे क्षत्रियों की शाक्य शाखा का प्रताप हिमालय की तराई में बहुत बढ़ गया। कपिलवस्तु के राजा जयसेन के पुत्र सिंहहनु के साथ कोलराज औकक की कन्या काञ्चना का विवाह तथा औकक के पुत्र अञ्जन का विवाह जयसेन की कन्या यशोधरा के साथ हुआ। इन्हीं अञ्जन ने ईसा के ६९१ वर्ष पूर्व जो संवत् चलाया उसे 'अञ्जनाब्द' कहते हैं।

दशवें अञ्जनाब्द में अञ्जन की भांजी कांचना के गर्भ से शुद्धोदन का जन्म हुआ। द्वादश अञ्जनाब्द में अञ्जन की कन्या मायादेवी ने जन्म ग्रहण किया। कपिलवस्तु के राजकुमार शुद्धोदन से कुमारी मायादेवी का विवाह हुआ।

इन्हीं माया देवी के गर्भ से ६७ अञ्जनाब्द वैशाखी पूर्णिमा, मङ्गलवार को भगवान् शाक्यसिंह ने जन्म ग्रहण किया। महात्मा शाक्यसिंह का जन्म काल विद्वानों के अनेक तर्क वितर्क करने पर भी ठीक ठीक निश्चय नहीं हुआ है। मुखोपाध्याय महाशय ने भगवान शाक्य सिंह का जन्म काल ६७ अञ्जनाब्द मान लिया है अर्थात् ईसा के आविर्भाव के ६२३ वर्ष पहिले महात्मा शाक्यसिंह का जन्म हुआ। इस विषय में मत भेद रहने पर भी "कपिलवस्तु" के स्थाननिर्देश में कोई बाधा नहीं हो सकती। महात्मा शाक्यसिंह का चरित्र नाना भाषाओं में नाना प्रकार से लिखा है। पर मुख्य मुख्य बातों में भेद नहीं है। उनके जन्म, शिक्षा गृहत्याग, साधन और धर्मप्रचार के प्रथम और अन्तिम उद्योग का विवरण प्रायः सभी ग्रन्थ

में एक सा पाया जाता है।

सब ग्रन्थों का मत है कि वे कपिलवस्तु के समीप लुम्बिनी नामक बन में धरती पर गिरे और कुशीनार के शालबन में उन्होंने निर्वाण पद प्राप्त किया। इन दोनों पवित्र स्थानों को महाराज अशोक ने स्तम्भ स्थापित करके निर्दिष्ट कर दिया था। इन स्तम्भों और उन पर की लिपियों का बहुत से विदेशी परिव्राजकों ने उल्लेख किया है। बा० पूर्णचन्द्र के पहिले लोगों ने कई स्थानों को जन्म-स्थान बतलाया पर उन में से किसी में अशोक का स्थापित स्तम्भ नहीं पाया गया। पर मुखोपाध्याय महाशय ने जिस स्थान को जन्मस्थान बताया है उसमें अशोक का स्तम्भ निकला है।

राजपुत्र होने पर भी भगवान बुद्धदेव का जन्म और मरण राजभवन में नहीं हुआ। दोनों ही घटनाएं बन के बीच हुई थीं। आसन्न प्रसवा मायादेवी पतिगृह से पितागृह को जा रही थी कि मार्ग ही में शालबन (मतांतर से अशोकबन) के बीच भगवान बुद्ध का जन्म हुआ।

सभी बौद्धग्रंथों में इस स्थान का नाम 'लुम्बिनी-बन' लिखा है। यहां अशोकस्तम्भ के सिवाय एक "मायादेवी का मन्दिर" भी निर्मित हुआ था। बहुत दिनों तक बौद्ध यात्री उसके दर्शन को आते रहे, पीछे यह पृथ्वी की गोद में छिप गया। तबसे बराबर कई हाथ मिट्टी के नीचे दबा पड़ा रहा। अन्त में मुखोपाध्याय महाशय ने इसे फिर संसार के सामने रक्खा। यूनानियों के आने के पहिले भारतवर्ष में ईंट की ऐसी अच्छी कारीगरी होती थी इस से इसका पता चलता है। जो लोग हमारी स्थपतिविद्या को यूनानियों का अनुकरण बतलाते हैं वे लोग इस के द्वारा बहुतेरी नई बातें जान सकते हैं। मानव जाति की यह निर्माण कला बहुत ही पुरानी है यह स्वीकार करना पड़ेगा। मायादेवी के मंदिर की नींव पर जैसा सुन्दर काम बना है वह अत्यन्त प्राचीन काल के अभ्यास का फल जान पड़ता है। काल के प्रभाव से हमारे यहां के सब कीर्तिचिह्न लुप्त हो गए हैं। इसीसे बहुतेरे इतिहासलेखक अपना पाण्डित्य प्रगट करने का अवसर पाकर प्रायः सब बातों में हम लोगों की मौलिकता पर सन्देह प्रकट करते हैं। ऐसे लोगों की बकबाद की अपेक्षा 'मायादेवी' के मंदिर की ईंट अधिक काम की है। मुखोपाध्याय ने ऐसे ही ऐसे प्रमाण ढूंढ़ कर इन ग्रीक अनुकरण वादी इतिहास लेखकों की असारता दिखाई है।

शुद्धोदन का राजप्रासाद 'धार्त्तराष्ट्र' नाम से प्रसिद्ध था और खाई और दीवार से घिरे हुए दुर्ग के भीतर था। उस समय का दुर्गनिर्माण कौशल कैसा था इसका पता संस्कृत साहित्य से भी कुछ लगता है। आज कल के दुर्ग भी उसी पुराने ढांचे पर बने हैं। यह बात काव्यों और पुराणों में जो दुर्ग के वर्णन हैं उन्हें पुराने चित्रों के साथ मिलाने से स्पष्ट हो जाती है। दुर्ग के चारों ओर ऊंची दीवार और खाई होती थी। दीवार में फाटक होते थे जिनमें बेड़े और ताले लगते थे। रक्षा के लिये हथियार इकट्ठे रहते थे।

शरशय्या पर पड़े पड़े भीष्मपितामह ने महाराज युधिष्ठिर को जो उपदेश दिए थे उन में दुर्ग बनाने की शिक्षा भी थी। इस का विवरण महाभारत के शांतिपर्व में है। शुद्धोदन के राजदुर्ग का जो वर्णन 'ललितविस्तर' में मिलता है वह भी

इसी प्रकार है। दुर्ग के भीतर का शुद्धोदन का राजप्रासाद भगवान बुद्ध की लीलाभूमि होने के कारण बौद्ध यात्रियों में तीर्थ माना गया है।

महात्मा शाक्य सिंह के जन्म के सातवें पांच दिन पीछे मायादेवी ने स्वर्गारोहण किया तब उनकी छोटी बहिन महाप्रजापति देवी ने जो शुद्धोदन की दूसरी रानी थी बच्चे के पालन का भार लिया। शाक्य लोग देवोपासक थे। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि लुंबिनी वन से राजभवन में लाए जाने पर बुद्धदेव का जातकर्म्म संस्कार एक देव मंदिर में हुआ था जिसका नाम किसी किसी बौद्धग्रंथ के अनुसार यक्षमन्दिर और किसी किसी के अनुसार ईश्वरमन्दिर था। इस मन्दिर में शिव, स्कन्द, नारायण, वैश्रवण, इन्द्र, कुवेर, चन्द्र, सूर्य्य और ब्रह्मा आदि की मूर्त्तियां स्थापित थीं। यह भी बौद्ध यात्रियों के लिये एक दर्शनीय स्थान माना जाता था।

जातकर्म्म के उपरान्त कुमार का नाम सिद्धार्थ वा सर्वसिद्धार्थ पड़ा। ज्योतिषियों ने कुंडली बना कर सुनाई कि राजकुमार यदि संसार में रहेंगे तो चक्रवर्ती राजा होंगे, नहीं तो सन्यास ग्रहण करके बुद्धत्व प्राप्त करेंगे। राजा शुद्धोदन को अपने पुत्र को चक्रवर्ती बनाने ही की अभिलाषा थी। उन्हों ने अपने पुत्र के लिये रम्य, सुरम्य और शुभ नामक तीन बड़े बड़े प्रासाद बनवाए। राजकुमार ने कौशिक (विश्वामित्र) मुनि से शास्त्र पढ़ा और शुकदेव से शस्त्र विद्या सीखी। इसके उपरान्त २९ वर्ष की अवस्था में वे राजपाट, स्त्री यशोधरा (किसी किसी के मत से गोपा) और पुत्र राहुल को छोड़ पूर्णिमा की प्रशान्त चांदनी में नगर के 'मंगलद्वार' नामक फाटक के पार हो कर घर से निकल गए। इसी को बौद्धग्रंथों में 'महाभिनिष्क्रमण' कहा है।

सबेरा होते ही "कपिलवस्तु" में हाहाकार मच गया। सिद्धार्थ के जन्मफल से उन्हें चक्रवर्ती महाराज न बना के उन्हें सन्यासी बना संसार से बिदा कर दिया। ६ वर्ष तक सिद्धार्थ उस शोकसन्तप्त पुरी में नहीं गए। मगधदेश के अन्तर्गत 'उरुविले, नामक स्थान में बोधिद्रुम के नीचे घोर तप करते रहे। इसके उपरान्त बुद्धत्व प्राप्त करने पर अपने शिष्यों को लिए हुए वे अपनी जन्मभूमि की ओर गए और कपिलवस्तु के निकट अपना डेरा डाला। इस नवीन सन्यासी का तेज सारी पुरी में छा गया। राजा, रानी, मंत्री सब ने उस समय इस नए धर्म्म की दीक्षा ली, और संयम में प्रवृत्त हुए। प्रजा भी सांसारिक वासनाओं से विरक्त हो सद्गति की इच्छुक हुई।

सिद्धार्थ के सन्यास आश्रम में चले जाने से राजा शुद्धोदन ने अपने दूसरे पुत्र "नन्द" को सिंहासन पर बिठाने का विचार किया। वृद्ध राजा शुद्धोदन ने अभिषेकोत्सव की सब तैयारियां करने और आनन्द उत्सव मनाने की भी घोषणा कर दी। किन्तु नन्द सिंहासन पर पैर रखने के पहिले ही अपने बड़े भाई के पवित्र चरणों पर जा गिरा और उसने छत्र सिंहासन के बदले सन्यासियों का कौपीन और भिक्षापात्र धारण कर लिया। सिद्धार्थ के पुत्र राहुल तथा आनन्द, अनिरुद्ध आदि शाक्यराजकुमारों ने एक एक करके सन्यास ग्रहण किया। रनिवास की महिलाएँ भी इस नए महामंत्र से दीक्षित होने के लिये लालायित हो उठीं।

पृथ्वी के इतिहास में ऐसी घटनाएं बहुत कम हुई हैं। इसके पश्चात् राजकुमार सिद्धार्थ कई बार कपिलवस्तु में आए। एक बार वैशाली नगर में ठहरे हुए थे इसी बीच शाक्य और कोली राजवंश के बीच भारी झगड़ा उठ खड़ा हुआ। दोनों पक्ष की सेनाएं अस्त्र शस्त्र सहित रोहिणी नदी के निकट युद्ध के लिए इकट्ठी हुईं। यह खबर पाकर शान्तिमूर्ति सिद्धार्थ दोनों सेनाओं के बीच अटल पर्वत के समान जा खड़े हुए और उपदेश देने लगे। हिंसा प्रतिहिंसा का भाव दूर हो गया। प्रेम और मैत्री की ध्वनि सुनाई पड़ी। रक्तलोलुप सेना के अनेक लोग शस्त्रशासन के बदले शास्त्रशासन स्वीकार कर धर्म्मसंघ, और बुद्ध की जय मनाने लगे।

इधर शुद्धोदन के जीवन के दिन भी पूरे हो चले थे। सिद्धार्थ आकर पिता की शय्या के निकट बैठ गए शुद्धोदन ने भी सिद्धार्थ का मुख देखते हुए प्रफुल्लित मन से आनन्द लोक को प्रस्थान किया। सिद्धार्थ को फिर जाने के लिये तैयार देख रनिवास की स्त्रियां उनकी पंथानुगामिनी होने के लिये तैयार हो गईं। उस समय भी स्त्रियां सन्यास की अधिकारिणी नहीं समझी जाती थीं। आनन्द नामक शिष्य के अधिक अनुरोध से महात्मा शाक्य सिंह का हृदय दयार्द्र हो गया और उन्होंने उन लोगों को भी संघ में ले लिया। इसी समय से स्त्रियां भिक्खुनी होने लगीं। इसी भांति शाक्यवंशीय अनेक पुरुषों के बौद्धधर्मावलम्बी होने से कपिलवस्तु की भूमि शाक्य सिंह के समय में हीं एक पवित्र तीर्थ स्थली हो गई।

तीर्थ यात्रियों के निरन्तर यत्न और धन व्यय से कपिलवस्तु बहुत दिनों तक एक गौरव की दृष्टि से देखा जाता रहा, किन्तु शाक्य सिंह के परिनिर्वाण प्राप्त होने के पूर्व ही विरूढ़क नामक कोसलाधिपति के क्रोध ने कपिलवस्तु को विध्वस्त करके उसे स्मशान भूमि बना दिया था। महात्मा शाक्य सिंह ने उस स्मशान में पदार्पण करके बचे हुए शाक्यों को फिर आश्रय प्रदान किया—

शाक्य लोगों ने प्राचीन राजधानी को परित्याग कर वहां से थोड़ेही दूर पर एक नये स्थान को अपनी राजधानी बनाया।

कपिलवस्तु के ध्वस्त हो जाने पर उसका पता लगाना नितान्त कठिन हो गया था। देवनाम प्रियदर्शी ने निज राज्याब्द (राजकाल) के इक्कीसवें वर्ष में बौद्ध भिक्षु (सन्यासी) अपने गुरु के साथ इस पुनीत तीर्थ में स्तम्भ स्थापन कर और उस स्तम्भ पर लिपि खोदवाकर स्थान निर्देश करने वालों की असीम सहायता की थी। पीछे काल कराल के चक्र में पड़कर वह भी लोप हो गया। कपिलवस्तु और उसके समीपस्थ जो अन्य स्थान तीर्थवत प्रतिष्ठा को प्राप्त थे उनमें राज्यप्रासाद, मङ्गलद्वार, लिपिशाला, जन्मस्थान यक्ष मंदिर, माया देवी का मंदिर इत्यादि विशेष रूप से उल्लेख योग्य हैं।

अशोक के उपरान्त ईसवी की पांचवीं शताब्दी के आरंभ में प्रसिद्ध फाहियान नामक चीनी यात्री इन सब तीर्थ स्थानों के देखने को आया था। उसने अपने पर्यटन वृत्तान्त में, पूर्व चिन्हों के विलुप्त होने की बातों का उल्लेख किया है। उस समय यहां न कोई राजा था, न प्रजा थी केवल सुनसान जंगल था। और दो एक वानप्रस्थ सन्यासी रहते

थे। उसके उपरान्त सातवीं ईसवी में हुएन्त्सांग नामक विख्यात चीन का यात्री आया। उसके समय में सीमा चिन्हादि सब विलुप्त हो गये थे, पर वह सम्पूर्ण रूप से पृथ्वी के पेट में नहीं पड़ चुका था पीछे काल पाके वे भी अदृश्य हो गए।

कपिलवस्तु का नाम जानने पर भी किस स्थान पर कपिलवस्तु थी, इसका निर्णय करना कठिन नहीं बल्कि असम्भव हो गया था। वह जगह चारों ओर ऊंची नीची, उसके किनारे जंगल है और स्तूप टूट गया है। मुखोपाध्याय महाशय ने उसी आरण्य–समाच्छादित तराई में जाके तौलिया नामक तहसीली कचहरी से अपने अनुसन्धान का आरम्भ किया किन्तु वहां उन्हें पहिले एक प्राचीन शिवालय मिला। इस स्थान में पुराने जमाने के चिन्हों को देख उसे उन्होंने बौद्ध साहित्यवर्णित यज्ञ मंदिर मान अनुसन्धान में प्रवृत्त हुए यहां से एक कोस उत्तर दिशा में तिलौरा है। उसे अब भी वहां के लोग "तिलौरा कोट" कहते हैं। वहां की भूमि को खुदवा मिट्टी को हटवा के उन्होंने उस दुर्ग की नींव को निकाला और अनेक प्रमाणों द्वारा उसी को कपिलवस्तु प्रमाणित किया है।

फिर भगवानपुर की तहसीली कचहरी से एक कोस उत्तर में रोमिन देवी नाम से एक पुराना स्थान पा गये। यह लुम्बिनी वन नामक महात्मा शाक्य सिंह का जन्म स्थान है। लुम्बिनी वन में माया देवी का मन्दिर माया देवी की प्रस्थर की मूर्ति और अशोकस्तम्भ को देखा। इस प्रकार निःसन्देह, लुम्बिनी वन का निर्णय हो जाने से उनको कपिलवस्तु नाम निर्देश करने में यथेष्ट सहायता मिली।

इस प्रकार एक भारतवासी विद्वान की चेष्टा से इन स्थानों का पता चला था जो कि चिरकाल तक इतिहास प्रिय पाठकों को न केवल स्मरण रहेगा वरन भारतवासियों का मुखोज्वल होता रहेगा।

केदारनाथ पाठक।

टिप्पणी।

असली कपिलवस्तु का पता आज तक नहीं लगा है इम्पीरियल गजेटियर जिल्द १४ पृष्ठ ४०१ में लिखा है।

"The exact site of Kapilvastu is not known, the accounts of the Chinese pilgrims disagree, and it has been suggested that the site shown to them were not the same, and that Fa Hian believed Kapilvastu to be represented by Piprahwa in Basti District, 9 miles south-west of Rummendei, while Hiuen Tsaung was taken to a different place Tilaura Kot 140 miles north-west of the garden.

कपिलवस्तु के ठीक स्थान का पता नहीं है। चीन के यात्रियों के विवरण परस्पर विरुद्ध हैं जिससे अनुमान होता है कि उन लोगों ने भिन्न स्थानों को देखा। फाहयान ने पिपरहवा को जो रोमिनदेई से ९ मील दक्षिण-पश्चिम कोण में है कपिलवस्तु समझा और हायनशांग को तिलोरा कोट जो रोमिनदेई से १४ मील पूर्वोत्तर कोण में है कपिलवस्तु बताया गया।

देवदह शब्द देवहृद का अपभ्रंश है। इसे कलि राज्य भी कहते थे। यहां की राजधानी का नाम रामगढ़ था और यहीं की राजकन्या माया देवी थी जो भगवान बुद्धदेव की माता थी। वह कपिलवस्तु से कोल ग्राम वा देवदह को जाती थी और बीच में लुंबिनी वन में बुद्धदेव का जन्म हुआ। तिलौरा के पास ही सागरवा और निगलिहवा है, सागरवा में एक बड़ा सागर वा हृद भी है। जिससे अनुमान होता है कि तिलौरा आदि जिसे मि० मुकर्जी ने कपिलवस्तु समझा है देवदह वा कोलिग्राम हो। यह बुद्ध के धातु स्तूप पावनेन का भी पता परिनिर्वाण सूत्र में है, यहां पर एक अशोक स्तूप भी था जिस का खंड डा० फोरर को १८९७ में मिला था। मुकर्जी महाशय लिखते हैं कि उन्हें

कोई स्तूप या लेख वहां नहीं मिला और डा० फुहरर ने झूठ मूठ वहां स्तूप मान लिया है। यह ठीक नहीं मालूम होता मुझे प्रायः उधर जाने का अवसर पड़ा है वहां स्तूप का खंड अवश्य था। स्तूप पर डा० फुहरर के अनुसार यह लेख है:-

देवानंपियदस्सिन लाजिना चोदसवसाभिसितेन बुद्धस्स कोनाकमनस थुबे दुतियं वाढिते। वीसतिवसाभिसितेन च अतनागच महीयते सिलाथुबे च उसपासिते।

अर्थात् देवानां प्रियदर्शी राजाने अपने अभिषेक के चौदहवें वर्ष में बुद्ध के कोनाकमन (कोलिग्राम) के स्तूप को बढ़ाया और बीसवें वर्ष यहां आकर उस की प्रतिष्ठा की और यहां शिला स्तूप बनवाया। यहां "कोनाकमन" वास्तव में कोलिग्राम का अपभ्रंश मालूम होता है। यद्यपि लोगों का मत है कि यह 'कोणाङ्गमन' बुद्ध का परिनिर्वाणस्थान है पर यह भ्रम है। पहिले तो कोणाङ्गमन का यहीं परिनिर्वाण हुआ इस का प्रमाण कहीं बौद्ध ग्रन्थ में नहीं है। द्वितीय कोणाङ्गमन महात्मा बुद्धदेव से सैकड़ों वर्ष पूर्व के माने जाते हैं उन के स्थानों का पता अशोक के काल तक मालूम होना असम्भव प्रतीत होता है। कोलिग्राम में भगवान बुद्धदेव के धातुका एक अंश गया था जिस पर रामग्राम वालों ने स्तूप बनवाया था। उसी स्तूप को अशोक ने परिवर्द्धित (मरमत) कराया और कोनाकमन लिखा। अतः मि० मुकर्जी ने कोलिग्राम, देवदह या रामग्राम को ही भ्रमवश हुंनत्सांग के लेखानुसार कपिलवस्तु माना है। हम कपिलवस्तु पर कभी लिखेंगे।

जगन्मोहन वर्म्मा।

सभा का कार्य विवरण।

बोर्ड आफ़ ट्रस्टीज़ का विशेष अधिवेशन

शनिवार तारीख १६ सितम्बर १९११।

सन्ध्या के ५ बजे। स्थान—सभाभवन।

(१) बा० राम प्रसाद चौधरी सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (तारीख २६ अप्रैल १९११) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) हिसाब जांचने के कार्य से बाबू शिव प्रसाद गुप्त का इस्तीफा उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय और उनके स्थान पर पण्डित सन्तराम आडिटर नियत किए जांय।

(४) बाबू गोविन्ददास का १५ अगस्त का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने बोर्ड के मंत्री के पद से इस्तीफा दिया था।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय और उन के स्थान पर बाबू राम प्रसाद चौधरी मंत्री चुने जांय।

(५) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

बोर्ड आफ ट्रस्टीज का अधिवेशन।

शनिवार ता० २८ अक्टूबर १९११।

सन्ध्या के ५½ बजे।

(१) गत अधिवेशन (ता० १६ सितम्बर १९११) का कार्य विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) सन् १९१०-११ के लिये स्थायी कोश के आय व्यय के सम्बन्ध में प्रबन्ध कारिणी समिति की रिपोर्ट उपस्थित की गई और स्वीकृत हुई।

(३) निश्चय हुआ कि बाबू गौरी शंकर प्रसाद बी० ए०, एल एल० बी० और पण्डित माधव प्रसाद पाठक इस बोर्ड के सभ्य चुने जांय।

बोर्ड आफ़ ट्रस्टीज का अधिवेशन

शनिवार तारीख २७ अप्रैल १९१२।

सन्ध्या के ५½ बजे। स्थान-सभाभवन।

(१) बाबू श्यामसुन्दर दास जी सभापति चुने गए।

(२) ता० १६ सितम्बर १९११ और २८ अक्टूबर १९११ के कार्य विवरण पढ़े गए और स्वीकृत हुए।

(३) डाक्टर शोभाराम का ता० २५ मार्च १९१२ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि अवकाश न रहने के कारण इस वर्ष वे सभा का हिसाब न जांच सकेंगे अतः इस कार्य से इस वर्ष उनका इस्तीफा स्वीकार किया जाय।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय और उन के स्थान पर सन् १९११-१२ का हिसाब जांचने के लिये बाबू महावीर प्रसाद अथवा उनके स्वीकार न करने पर बाबू कृष्णलाल नियत किए जांय।

(४) निश्चय हुआ कि सन् १९१२-१३ का हिसाब जांचने के लिये निम्नलिखित सज्जन नियत किए जांय अर्थात (१) बाबू आशुतोष सिंह और (२) बा० महावीर प्रसाद अथवा उनके अस्वीकार करने पर बाबू छबूलाल।

(५) निश्चय हुआ कि आगामी ५ वर्षों के लिये इस बोर्ड के निम्नलिखित पदाधिकारी नियत किए जांय:—

सभापति

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय बी० ए०, एल एल बी०

उपसभापति।

बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए०
राय शिवप्रसाद

(६) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

साधारण सभा

शनिवार ता० २५ मई १९१२ सन्ध्या के ६॥ बजे। स्थान—सभा भवन।

(१) गत अधिवेशन (ता० २७ अप्रैल १९१२) का कार्य विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) प्रबन्धकारिणी समिति का ता० २३ मार्च १९१२ का कार्यविवरण सूचनार्थ पढ़ा गया।

(३) निम्न लिखित सज्जन सभासद चुने गए :-

१ कुंवर लाखन सिंह-वजीरपुरा-आगरा ३) २ दीवान चेत सिंह कर्मीदार आनरेरी मजिस्ट्रेट और मुन्सिफ पो० पारना, ज़िला आगरा ३) ३ बाबू महादेव सिंह, हे० पण्डित, हुसेनाबाद थाना, पो० मझिआंव, पलामऊ १॥) ४ बाबू नन्दकिशोर लाल, हेड पण्डित, अपर प्राइमरी स्कूल, सोनपुरा ज़ि० पलामू १॥) ५ पण्डित गोपीनाथ त्रिपाठी, हेड मास्टर, मि० ह०स्कूल, बगहा, चम्पारन १॥) ६ बाबू शिवनन्दन प्रसाद शर्म्मा, सेकण्ड मास्टर, मि० ह० स्कूल, बगहा, चम्पारन १॥) ७ पण्डित विद्या प्रसाद पाण्डेय, तौलहा, पो० रामनगर, चम्पारन १॥) ८ पण्डित दुर्गा प्रसाद मिश्र, लालबाज़ार, बेतिया, चम्पारन १॥) ९ बाबू लल्ला सिंह, अध्यापक, पाठशाला रमवापुर जगतराम, पो० बिस्कोहर, ज़ि० बस्ती १॥) १० पण्डित महादेव प्रसाद अध्यापक, पाठशाला बगया, पो० डुमरियागंज, ज़ि० बस्ती १॥) ११ बाबू माधवसिंह, सहायगोवर्द्धन, काशी १॥) १२ बाबू बूटा मल, सब डिविज़नल आफिसर, इरिगेशन, बांदा सी० पी० १॥) १३ पण्डित विश्वनाथ शालिग्राम दीक्षित, पटेल, बांदा सी० पी० ३) १४ बाबू भगवानदास महन्त पुरी, केराकत, ज़ि० जौनपुर १॥) १५ बाबू जयराम दास कौलापुरी, केराकत, ज़ि० जौनपुर १॥) १६ ठाकुर दिग्विजय सिंह ज़मींदार, मौजा पलसू, पो० सहार, ज़ि० मथुरा ५) १७ पं० जानकी नन्दन शर्म्मा—पं० कन्हैयालाल का मंदिर, ऊपर कोट, बुलन्दशहर १॥) १८ पं० रामप्रपन्न शास्त्री काव्यतीर्थ, साहित्याध्यापक, श्रीरघुनाथ पाठशाला, जम्बू, काश्मीर १) १९ पं० सत्यदेवराम त्रिपाठी मौज़े केल्हुआ, पो० हरिहरपुर, ज़ि० बस्ती १॥) २० चतुर्वेदी मदनमोहन पाण्डेय, कारखाना चूना, कटनी, मुरवाड़ा, ज़ि० जबलपुर ५) २१ बाबू उमराव सिंह, मुख्याध्यापक, देवनागरी पाठशाला, हल्दौर, ज़ि० बिजनौर १॥) २२ पं० बद्रीदत्त जोशी हेड, भूंसक, स्थान विलन्दा, पत्रालय हसवा, प्रान्त फतहपुर ३) २३ बाबू कंचन प्रसाद अर्ज़ीनवीस, तहसील कैसरगंज, ज़ि० बहराइच ३) २४ बाबू गया प्रसाद, अर्ज़ीनवीस, तहसील कैसरगंज, ज़ि० बहराइच १॥) २५ पं० गोरचरण गोस्वामी सम्पादक, श्रीकृष्ण चैतन्य चन्द्रिका, वृन्दावन, मथुरा १॥) २६ कुंवर रामदीन सिंह, कालाकांकर १०) २७ शेख अताउल्लाह मुख्तार, कुंवर रामदीन सिंह साहब, कालाकांकर, मानिकपुर, ज़ि० प्रतापगढ़ १॥) २८ पं० विश्वेश्वर दयाल मिश्र, थर्ड मास्टर, हनुमत हाई स्कूल, कालाकांकर १॥) २९ ठाकुर महादेव सिंह सेकण्ड मास्टर, हनुमत हाईस्कूल, कालाकांकर १॥) ३० बाबू घनश्यामदास मारवाड़ी, मऊ नाट भंजन, ज़ि० आज़मगढ़ १॥) ३१ बाबू चन्द्रप्रसाद नायक, मझौली गांव पो० फरेन्दा, ज़ि० गोरखपुर १॥) ३२ बाबू कन्हैया लाल, रमई पट्टी, मिर्ज़ापुर १॥) ३३ बाबू ऊधो प्रसाद अग्रवाल, रजिस्ट्रार कानूनगो, तहसील मिर्ज़ापुर १॥) ३४ पं० चन्द्रभाल वाजपेयी ताल्लुकदार कहंदा, पो० मवई, ज़ि० उन्नाव ५) ३५ बाबू सीताराम, चुनार, ज़ि० मिर्ज़ापुर ३)।

(४) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफे उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए:-(१) बाबू शिव पूजन सिंह-हेड मास्टर तहसीली स्कूल रसड़ा, ज़ि० बलिया (२) पं० राधा कुमार व्यास, काशी (३) बाबू भगवती लाल, बादशाही मंडी, प्रयाग।

(५) उपमंत्री ने निम्न लिखित सभासदों की मृत्यु की

सूचना दी:—(१) राजा मोहन विक्रम शाह देव बहादुर जो इस सभा के बड़े उत्साही सभासद थे (२) बाबू बालगोविन्द छेदकर्के, नहर गंज, मेरठ।

सभा ने इन सज्जनों की मृत्यु पर शोक प्रगट किया।

(५) निम्न लिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईं—

जैन ग्रंथ रत्नाकर कार्य्यालय, हीराबाग, गिरगांव, बम्बई-सज्जन चित्त वल्लभ। पं० चिरंजी लाल गिरधारी लाल शर्म्मा मेठियाना पो० नन्द प्रयाग गढ़वाल-श्री बदरी माहात्म्य। बाबू रामकिशुन नन्द किशोर,मुरादाबाद-तत्व विचार ग्रंथ, समाज बन्धु। पं० माधव शास्त्री काशी-श्री मद्वाचार्य्य चरित्र। गोरक्षा-बन्ध प्रचारक मंडली, एम० हिल पोस्ट बम्बई गायत्री भाष्य का। बाबू शिव प्रसाद क्लार्क डिस्ट्रिक्ट सुपरिण्टेण्डेण्ट का दफ्तर श्रो. आर. आर. फैजाबाद-प्रश्नोपनिषद भाष्य। संयुक्त प्रदेश की गवर्न्मेंट Sacred Books of the Hindus, Addenda and Corrigenda to the Educational Code United Provinces. मुंशी अमृत लाल सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस, उदयपुर-विचार परिणाम। ठाकुर शिव कुमार सिंह, सब डिपटी इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स, कवि-चक्रवर्ती सम्राट जार्ज पञ्चम का जीवन चरित्र. Indian Antiquary for April, 1912. कसौटी गई तथा परिवर्तन में प्राप्त-शेक्सपियर कथा गाथा, सरल पत्र बोध,नाटकीय कथा, श्री मद्भागवत संग्रह, हिन्दी भारत भाग १ और २, संक्षिप्त विष्णु पुराण, रामायणीय संग्रह ग्रीस और रोम की दन्त कथाएं, संक्षिप्त कल्कि पुराण, भारतीय उपाख्यान माला खण्ड १ और २, संक्षिप्त मारकण्डेय पुराण, मनोहर सच्ची कहानियां,संक्षिप्त पाराशर स्मृति,उपदेश रत्नमाला, संक्षिप्त मनुस्मृति, हिन्दी निबन्ध शिक्षा, हिन्दी हितोपदेश, शिष्टाचार पद्धति,आश्चर्य्य सप्तशती. दश कुमारों का वृत्तान्त, हिन्दी आरव्योपन्यास भाग १ और २ हिन्दी व्याकरण शिक्षा, कथा सरित्सागर ११ वां भाग,पुतलीमहल भाग १ गुलबदन भाग १ और २,वीर जयमल, अद्भुत खून जयपराजय, प्रतिज्ञापालन, जासूस चक्कर में, खूनी का भेद, प्रेममयी, तारा दूसरा भाग, व्यायाम। लाला हंसा राम, चुनार, जि० मिर्जापुर-चित्रगुप्त कीर्ति। बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा, काशी-माला।

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

प्रबन्धकारिणी समिति।

शनिवार तारीख १ जून १९१२।

सन्ध्या के ६ बजे। स्थान-सभाभवन।

(१) गोस्वामी रामपुरी के प्रस्ताव तथा पण्डित निष्कामेश्वर मिश्र के अनुमोदन पर बाबू श्यामसुन्दर दास जी सभापति चुने गए।

(२) ता० २० अप्रैल, २७ अप्रैल और २८ अप्रैल १९१२ के कार्यविवरण पढ़े गए और स्वीकृत हुए।

(३) गोस्वामी रामपुरी के प्रस्ताव पर सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि बनारस की म्युनिसिपल बोर्ड से प्रार्थना की जाय कि वह अपने Election rules and bylaws को नागरी अक्षरों में भी प्रकाशित करे।

(४) उपमंत्री ने सूचना दी कि प्रबन्धकारिणी समिति के सभासदों में इस वर्ष निम्नलिखित सात सज्जनों के स्थान खाली होते हैं अर्थात् गोस्वामी रामपुरी, बाबू युगलकिशोर, बाबू काली प्रसन्न चेटर्जी, बाबू भोलानाथ महरोत्रा, पण्डित मुन्नालाल चौबे, पण्डित श्रीधरपाठक और सेठ खेमराज श्रीकृष्ण दास। इसके अतिरिक्त इस मास के अन्त तक सभा के अधिवेशनों में रायपूरन चन्द्र, उपाध्याय पं० बदरी नारायण चौधरी,पं० चन्द्रधर शर्म्मा बी० ए०, पं० सखाराम गणेश देउस्कर, पं० रमा शंकर मिश्र और राय शिव प्रसाद की उपस्थिति अथवा उनके सम्मतिपत्र की संख्या यदि पूरी न हुई तो इन सज्जनों के स्थान भी खाली हो जायंगे।

निश्चय हुआ कि आगामी वर्ष के लिये कार्यकर्ताओं और प्रबन्धकारिणी समिति के सभासदों के चुनाव के लिये निम्नलिखित सूची बनाई जाय और पत्रिका में चुनाव विषयक सूचना छप जाने के अनन्तर इस पर पुनः विचार किया जाय :—

एक सभापति और दो उपसभापति

पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

लाला छोटे लाल

बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए०

उपाध्याय पण्डित बदरी नारायण चौधरी

पण्डित श्याम बिहारी मिश्र एम० ए०

पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी

पण्डित रामावतार पाण्डेय
राय शिवप्रसाद
बाबू गोविन्द दास
पण्डित चन्द्रशेखरधर मिश्र

एक मंत्री और दो उपमंत्री

पण्डित रामनारायण मिश्र बी० ए०
पण्डित निष्कामेश्वर मिश्र
बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा
बाबू जुगल किशोर
गोस्वामी रामपुरी
बाबू ब्रजचन्द्र
पण्डित सर्य्यनारायण त्रिपाठी
बाबू भोलानाथ मह्रोत्रा

काशी से प्रबन्ध कारिणी समिति के सभ्य

बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए०
राय शिवप्रसाद,
बाबू गोविन्द दास
पण्डित रामनारायण मिश्र
पण्डित निष्कामेश्वर मिश्र
बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा
गोस्वामी रामपुरी
बाबू जुगल किशोर
बाबू भोलानाथ मह्रोत्रा
पण्डित सर्य्य नारायण त्रिपाठी
बाबू ब्रजचन्द्र
बाबू गौरीशंकर प्रसाद
पण्डित कृष्णाराम मेहता
पण्डित रमाशंकर मिश्र

मध्यप्रदेश और बरार से

पण्डित मुन्नालाल चौबे
बाबू मुरलीधर वर्म्मा
पण्डित बिनायक राव
राय बहादुर पण्डित हनुमान प्रसाद पांडे
राय बहादुर बाबू गंगा सिंह

संयुक्त प्रदेश से

ठाकुर हनुमन्त सिंह
पंडित श्रीधर पाठक
उपाध्याय पंडित बदरी नारायण चौधरी
बाबू शिवकुमार सिंह
पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी
बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन
बाबू अयोध्या सिंह उपाध्याय
ठाकुर गदाधर सिंह
पंडित सूर्य्य नारायण दीक्षित

बम्बई से

सेठ खेमराज श्रीकृष्ण दास
पंडित तनसुख राम मनसुख राम त्रिपाठी
प्रोफ़ेसर टी० के० गज्जर
कविगोविन्द गिल्ला भई

बिहार से

राय पूरन चन्द्र
पंडित रामावतार पांडे एम० ए०
पंडित भुवनेश्वर मिश्र
डाक्टर लक्ष्मीपति
बाबू युगल किशोर अखौरी

बंगाल से

पंडित सखाराम गणेश देउस्कर
मिस्टर काशी प्रसाद जायस्वाल
बाबू हरिकृष्ण जौहर
बाबू राजेन्द्र प्रसाद
पंडित बाबू राव पराड़कर
पंडित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी

(५) संयुक्त प्रदेश की हिन्दी हस्तलिपि परीक्षा के सम्बन्ध में सब कमेटी की रिपोर्ट उपस्थित की गई ।

निश्चय हुआ कि सब कमेटी की सम्मति के अनुसार निम्नलिखित बालकों को पारितोषिक और प्रशंसापत्र दिए जांय:-

मिडिल विभाग

१ कृष्ण सिंह बोरा-कक्षा ६-टाउन स्कूल-अल्मोड़ा ५)
२ जयवल्लभ लोहुमी-कक्षा ६-टाउन स्कूल-अल्मोड़ा ४)
३ रुद्रदत्त पांडे-कक्षा ६-टाउन स्कूल-अल्मोड़ा ३)

४ हीरावल्लभ त्रिपाठी–कक्षा ६–टाउन स्कूल–अल्मोड़ा
५ ठाकुर दास–कक्षा ६–तहसीली स्कूल–तालबेहट–
जि० ललितपुर
६ नत्थी सिंह–कक्षा ५–पोखड़ा स्कूल–गढ़वाल
७ रामशकल राय–कक्षा ६–तहसीली स्कूल–आजमगढ़
८ नौबत राम–कक्षा ६ ब–तहसीली स्कूल–कोल–
जि० अलीगढ़
९ गौरीशंकर सिंह–कक्षा ५–टाउन स्कूल–सुलतानपुर

प्रशंसापत्र

अपर प्राइमरी विभाग

१ भगवान दीन–कक्षा ३–तहसीली स्कूल–कानपुर ५)
२ देवराम पांडे–कक्षा ४–पाठशाला टुंगमिल–जि० नैनीताल ३)
३ रामभरोस–कक्षा ३–तहसीली स्कूल–कुलपहाड़–
जि० हमीरपुर २)
४ जगदीश प्रसाद–कक्षा ४–स्कूल बेहटा–तहसील
डालमऊ, जि० रायबरेली
५ लखमीचन्द–कक्षा ४ अ–पाठशाला कोल–जि० अलीगढ़
६ हरिप्रसाद–कक्षा ४–पाठशाला बाजार पृथ्वीगंज–
तहसील और जि० प्रतापगढ़
७ रामगोपाल–कक्षा ३–स्कूल बेहटा कलां–तहसील
डालमऊ–जि० रायबरेली
८ राम अवतार–कक्षा ३–स्कूल तरौहा–कर्वी जि० बांदा

प्रशंसापत्र

लोअर प्राइमरी विभाग

१ कालिका प्रसाद–कक्षा २–स्कूल सगरा–तहसील और
जि० प्रतापगढ़ ४)
२ राम श्री–कक्षा १–स्कूल बिधौनी–जि० इटावा २)
३ भगवती–सेक्शन ब–स्कूल पाली–जि० इटावा २)
४ कृष्णप्रसाद सिंह–कक्षा २–शम्भूपुर स्कूल–जि० आजमगढ़
५ देवीदीन–कक्षा २–ब्रांच स्कूल–राठ–जि० हमीरपुर
६ ज्योति स्वरूप–कक्षा ३–संस्कृत पाठशाला–बिसौली
जि० बदायूं
७ जगनारायण सिंह–कक्षा २–टीकर–जिला बस्ती

प्रशंसापत्र

(६) बाबू गौरीशंकर प्रसाद की यह सम्मति उपस्थित की गई कि अदालत के हिन्दी शब्दों के संग्रह के लिये बरोदा के प्रचलित शब्दों की सूची अथवा वहां की न्यायधारा की पुस्तकें मंगवानी चाहिए और संग्रह करने के कार्य्य में प्राय, १००) रु० का व्यय होगा।

निश्चय हुआ कि बरोदा से न्याय धारा की पुस्तकें मंगवाई जांय और तब यह विषय समिति के सम्मुख पुनः उपस्थित किया जाय।

(७) कालाकांकर के पण्डित देवदत्त शर्म्मा का १६ मई का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे अपना शेष जीवन सभा को देना चाहते हैं यदि सभा केवल उनके भोजन वस्त्र का प्रबन्ध कर दे (२) कालाकांकर के श्रीमान् राजा रामपाल सिंह का एक तैलचित्र सभाभवन में लगाया जाय।

निश्चय हुआ कि (१) पण्डित देवदत्त शर्म्मा से पूछा जाय कि उनका मासिक व्यय कम से कम कितना पड़ेगा और क्या वे एक दिन के लिये काशी आ सकेंगे (२) जिस समय सभाभवन के लिये नवीन तैलचित्रों के बनवाने का विचार किया जाय उस समय इस प्रस्ताव पर भी ध्यान रक्खा जाय।

(८) बाबू शिवकुमार सिंह का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभा की ओर से नागरी के सुन्दर अक्षरों की कापियां विद्यार्थियों के लिये प्रकाशित की जांय।

निश्चय हुआ कि निम्नलिखित सज्जनों से प्रार्थना की जाय कि वे कृपापूर्वक इस विषय में विचार कर सभा को अपनी सम्मति दें अर्थात् बाबू श्यामसुन्दर दास, पं० निष्कामेश्वर मिश्र, बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा और बाबू बेणी प्रसाद।

(९) ग्रन्थमाला के सम्पादक की सम्मति के सहित पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के "राजा अजयदेव के सिक्के" और "रानी सोमलदेवी के सिक्के" शीर्षक लेख तथा पं० ब्रजनन्दन प्रसाद मिश्र अनुवादित यूनान का प्राचीन इतिहास उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के दोनों लेख तथा पण्डित चन्द्रधर शर्म्मा का "सुकन्या की वैदिक कहानी" शीर्षक लेख, ये तीनों ही बहुत छोटे हैं अतः पं० चन्द्रधर शर्म्मा जी से प्रार्थना की जाय कि वे कृपापूर्वक इन्हें नागरीप्रचारिणी पत्रिका में छापने की अनुमति दें। (२) पं० ब्रजनन्दन प्रसाद मिश्र से पूछा जाय कि क्या वे अपने अनुवाद के प्रकाशित करने की आज्ञा मूलग्रन्थ के प्रकाशकों से ले चुके हैं।

(१०) ग्वालियर की हिन्दी साहित्य सभा का पत्र उप-

स्थित किया गया जिस में उन्होंने अपने पुस्तकालय के लिये सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मांगी थीं।

निश्चय हुआ कि उन्हें १०) रु० की पुस्तकें बिना मूल्य और इस के अतिरिक्त और जो पुस्तकें चाहें वे अर्द्ध मूल्य पर उन्हें दी जांय।

(११) बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि श्रीमान् महाराजा साहब बीकानेर ने अपने राज्य में हिन्दी को स्थान दे कर उसका बड़ा उपकार किया है और वे इस सभा को भी समय समय पर सहायता देते रहते हैं। अतः वे इस सभा के संरक्षक चुने जांय।

निश्चय हुआ कि यह प्रस्ताव साधारण सभा में विचारार्थ उपस्थित किया जाय।

(१२) उपमंत्री ने निम्नलिखित सभासदों की सूची उपस्थित की जिन्होंने कई बार तगादा करने पर भी अपना तीन वर्ष का चन्दा नहीं दिया:—(१) बा० गणपति राय सक्सेना ४॥) (२) बा० गणेश प्रसाद जैन शिवालाघाट, काशी ४॥) (३) पण्डित घोड़ो पन्त क्लार्क, गणेश दीक्षित की गली, काशी ४॥) (४) डाक्टर जैमंगलसिंह, काशी ६) (५) बा० मुन्नी लाल, बरना का पुल काशी, ४॥=) (६) बा० लक्ष्मी नारायण सिंह, सराय गोवर्द्धन, काशी ६) (७ पंडित हरि शंकर जोशी, गायघाट, काशी ४॥) (८) बा० धर्मी चन्द, आर्यसमाज बहराइच ४॥) (९) बा० अवध बिहारी लाल, क्लास ८, हाई स्कूल, इटावा ६) (१०) पण्डित आचार्य्य सदाशिव झा, हेड पण्डित, बीच इन्स्टीट्यूट, मधेपुर, जि० भागलपुर ४॥) (११) पण्डित ओंकारेश्वर केदार व्यास, नरसिंह जी का मन्दिर, ब्यावर ४॥) (१२) बा० कुन्दन लाल कायस्थ, सरवां, पो० शाहाबाद, जि० हरदोई ६) (१३) बा० कृष्ण बलदेव वर्म्मा, बड़ा बजार, कालपी ६) (१४) पण्डित कृष्ण जी नारायण साठे मरहठा लाज, बड़ू बाजार, कलकत्ता ४॥) (१५) पण्डित गोवर्द्धन चन्द्र यती गोरों का दर्वाजा, होशियारपुर सिटी ४॥) (१६) गोस्वामी गोवर्द्धन लाल जी, श्री राधारमण जी का मन्दिर, चिमुहानी, मिर्ज़ापुर ६) (१७) ठाकुर चन्द्रबली सिंह मौजा निनायां, पो० सरवन खेड़ा, जि० कानपुर ६) (१८) बा० जगन्नाथ प्रसाद, हेड क्लार्क, डिस्ट्रिक्ट आफिस, पो० आर० आर० लखनऊ ६) (१९) पण्डित दुर्गा प्रसाद त्रिपाठी, रजिस्ट्रार, कोआपरेटिव सोसाइटी का दफ्तर, लखनऊ ४॥ (२०) बा० ब्रजकिशोर कपूर, वकील, शाहाबाद, जि० हरदोई ६) (२१) पण्डित ब्रजराज भट्टाचार्य्य, एंग्लोवर्नाक्यूलर पण्डित मुरादाबाद १५) (२२) चौधरी मथुरा प्रसाद सिंह, रामनगर बनारस ४) (२३) बा० राधा कृष्ण सोन्थालिया, पो० मंडावा ६) (२४) पण्डित राम बीज पाण्डे, हेड पण्डित, मिडिल इङ्गलिश स्कूल, अरवल, जि० गया ४॥) (२५) पण्डित रामनारायण शर्म्मा एल० एम० एस०, असिस्टेंट सर्जन आन प्लेग ड्यूटी करनाल ६) (२६) पण्डित रामस्वरूप शर्म्मा, मेयो कालेज, अजमेर ४॥) (२७) पण्डित ललिता प्रसाद अग्निहोत्री, हेड क्लार्क, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, बस्ती ८॥) (२८) पण्डित सूर्यकुमार मिश्र, ईस्ट इण्डिया बंक, हरदोई ६) (२९) ठाकुर सूर्य्यकुमार वर्म्मा, सम्पादक, मनोरंजक हिन्दी पुस्तकमाला, लश्कर ग्वालियर ८॥) (३०) पण्डित सूर्य्यबली शर्म्मा, सेकेंड क्लर्क, इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स का दफ्तर, नार्दर्न सर्कल, लश्कर ६) (३१) बा० हरगोविन्द प्रसाद, दिनकुआ, सरकारी भट्टा लखनऊ ६) (३२) पंडित उमाकान्त शुक्ल, काशी ३॥)।

निश्चय हुआ कि पंडित उमाकान्त शुक्ल का एक वर्ष का डेढ़ रुपया छोड़ कर शेष चन्दा उनसे ले लिया जाय और अन्य सज्जनों के नाम नियमानुसार सूची "ख" में लिखे जांय।

(१३) निश्चय हुआ कि इस समय सभा विसर्जित की जाय और शेष कार्यों के लिये पुनः आगामी शनिवार ता० ८ जून १९१२ को अधिवेशन किया जाय।

प्रबन्धकारिणी समिति

शनिवार तारीख ८ जून १९१२ सन्ध्या के ६ बजे

स्थान—सभाभवन।

(१) गोस्वामी रामपुरी के प्रस्ताव तथा बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा के अनुमोदन पर बाबू श्यामसुन्दर दास जी सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (ता० १ जून १९१२) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) हिन्दी साहित्य सम्मेलन कार्यालय प्रयाग के मंत्री का २१ मई १९१२ का पत्र उपस्थित किया गया जिस में उन्होंने लिखा था कि (क) उनके पुस्तकालय के लिये द्वितीय सम्मेलन के मन्तव्य १२ के अनुसार सभा को अपनी प्रकाशित पुस्तकों की एक प्रति उन्हें देनी चाहिए, (ख) प्रथम हिन्दी साहित्य

सम्मेलन का हिसाब उनके पास भेज देना चाहिए और जो कुछ बचत हो उसेभी सम्मेलन कार्यालय में भेज देना चाहिए।

निश्चय हुआ कि उनको लिखा जाय कि (क) यह सभा अपनी सब पुस्तकों की एक एक प्रति उन्हें देनेके लिये सहर्ष उद्यत है पर वह यह जानना चाहती है कि क्या सम्मेलन का कार्यालय स्थायी रूप से प्रयाग में स्थित हुआ है अथवा उसके और किसी स्थान में भी जाने की कुछ सम्भावना है और यदि सम्मेलन कार्यालय किसी ऐसे स्थान में रहा जहां हिन्दी का एक अच्छा पुस्तकालय वर्तमान हो तो क्या उस अवस्था में भी सम्मेलन कार्यालय में एक नये पुस्तकालय का स्थापित करना आवश्यक होगा। (ख) प्रथम सम्मेलन का हिसाब मार्च १९१२ की नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित किया गया है जिससे विदित होगा कि प्रथम सम्मेलन में जितनी आय हुई थी उस से ११६)७ सभाने उसमेंअधिक व्यय किया है। यदि सम्मेलन समिति यह द्रव्य देने के लिये प्रस्तुत हो तो सभा को प्रथम सम्मेलन के कार्यविवरण की सब प्रतियां उसके पास भेज देने में कोई आपत्ति नहीं होगी। सम्मेलन समिति का ध्यान इस बात पर भी दिलाया जाय कि जो नियम द्वितीय सम्मेलन में स्वीकृत हुए थे उनका प्रभाव प्रथम सम्मेलन के सम्बन्ध में नहीं पड़ सकता।

(४) पण्डित जानकी शरण त्रिपाठी का ५ जून १९१२ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने पृथ्वीराज रासो के पांच पृष्ठोंके प्रस्ताव को पुस्तकाकार छपवाने के लिये सभा से आज्ञा मांगी थी।

निश्चय हुआ कि उन्हें यह आज्ञा नहीं दी जा सकती।

(५) निश्चय हुआ कि पुस्तकालय के लिये दो नई अलमारियां और तीन शोकेस बनवा लिये जांय और इनके लिये १२०) रु० तक का व्यय स्वीकार किया जाय।

(६) बाबू गौरीशंकर प्रसाद और बाबू बलभद्र दास का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि काशी की दीवानी कचहरी में नागरी प्रचार के लिये एक हिन्दी का टाइप राइटर खरीद लिया जाय।

निश्चय हुआ कि यह प्रस्ताव आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय और उसमें प्रस्तावकर्ता भी निमंत्रित किए जांय।

(७) गर्मी के कपड़ों के लिये सुखनन्दन चपरासी का प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि उसे जाड़े और गर्मी के कपड़े सभा की ओर से बनवा दिए जाया करें पर इन दोनों में प्रति वर्ष उसके एक मास के वेतन से अधिक व्यय न हो। यह निश्चय उन सब चपरासियों के लिये होगा जो सभा की सेवा एक वर्ष से अधिक समय तक कर चुके हों।

(८) सभाभवन समिति का ६ जून १९१२ का पत्र सूच-नार्थ उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि अब उन्हें अपने अधिवेशनों के लिये सभाभवन की आवश्यकता नहीं है।

(९) निश्चय हुआ कि अब से सभा का हाल किसी को भी नियत फीस लिये बिना न दिया जाय। मंत्री को अधिकार होगा कि यदि उन्हें किसी अवस्था में शान्तिभंग होने की आशंका हो तो फीस मिलने पर भी वे हाल न दें।

(१०) उपमंत्री ने सूचना दी कि केदार चौकीदार के नाम २) शिवचरन चौकीदार के नाम =) बाबू रामचन्द्र वर्म्मा के नाम १५।-)॥ और मुंशी भगवान प्रसाद के नाम २) बहुत दिनों से हिसाब में चला आता है। यह रुपया उन्हें पेशगी दिया गया था पर नौकरी छोड़ देने के कारण उनसे वसूल नहीं हुआ। इसमें से केदार चौकीदार का वेतन २)। और बाबू रामचन्द्र वर्म्मा का एक बिल १२।-)॥ का बाकी है।

निश्चय हुआ कि बीस रुपये साढ़े तीन आने की ये सब रकमें व्यय में लिख ली जांय।

(११) वेतनवृद्धि के लिये काशी प्रसाद तिवारी का प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि १ जुलाई १९१२ से इनके मासिक में ५) रु० की वृद्धि की जाय।

(१२) वेतन वृद्धि के लिये सुखनन्दन मिश्र का १८ अक्तूबर १९११ का प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया जिस पर मंत्री ने आज्ञा दी थी कि १ अक्तूबर १९११ से जब तक कोई दूसरा चपरासी नियत न हो तब तक उसे ॥) प्रति मास अधिक दिया जाय।

निश्चय हुआ कि सुखनन्दन चपरासी को १ अक्तूबर १९११ से ७) रु० मासिक वेतन दिया जाय।

(१३) ५), १०), और ५०) रु० के नोट पर नागरी अक्षर न रहने के सम्बन्ध में लेजिसलेटिवकाउन्सिल में जो प्रश्न पूछा गया था वह गवर्न्मेंट के इस उत्तर के सहित उपस्थित किया गया कि समस्त प्रश्न पर गवर्न्मेंट विचार कर रही है।

निश्चय हुआ कि गवर्न्मेंट से पूछा जाय कि इस सम्बन्ध में अन्त में क्या निश्चय हुआ है।

(१४) बाबू वंशीधर वैश्य का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने प्रस्ताव किया था कि (क) समस्त नागरी-प्रचारिणी सभाओं को उन विषयों पर जिन्हें साहित्य सम्मेलन वा अन्य सभाओं ने उचित समझा हो लेख छपवाना और पत्र व्यवहार द्वारा उसे कार्य रूप में लाना चाहिए (ख) नागरी प्रचारिणी पत्रिका में हिन्दी की समस्त सभाओं का वृतान्त छपना चाहिए (ग) हिन्दी फाइनल परीक्षा में ऐसी पाठ्य पुस्तकें होनी चाहिए जिनसे विद्यार्थियों को हिन्दी का अच्छा ज्ञान हो जाय।

निश्चय हुआ कि बाबू वंशीधर वैश्य को लिखा जाय कि (क) इस सम्बन्ध में वे अपना तात्पर्य स्पष्ट रूप से लिखें (ख) पत्रिका का आकार बढ़ने पर इस सम्बन्ध में विचार हो सकेगा (ग) इस विषय पर गवर्न्मेंट विचार कर रही है।

(१५) पण्डित रामचन्द्र शुक्ल का लिखा हुआ बाबू राधाकृष्ण दास का जीवन चरित्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि इसकी ५०० प्रतियां सभा द्वारा छपवाई जांय और ग्रन्थकार को इसके लिये ५०) रु० का पुरस्कार दिया जाय।

(१६) उपमंत्री ने जूलाई १९११ से मई १९१२ तक के आयव्यय का हिसाब उपस्थित किया।

निश्चय हुआ कि सन् १९११-१२ के व्यय के लिये जो बजेट स्वीकृत हुआ है उसमें निम्नलिखित संशोधन किया जाय।

	बजेट	संशोधन
डाक व्यय	३००)	५५०)
पुस्तकों की बिक्री में व्यय	-	१५०)
सुधाकर स्मारक	-	६०)
साहित्य सम्मेलन	-	१८०)
फुटकर	१५०)	३५०)
छपाई	९९०)	२०९०)
यात्रा व्यय		६०)

(१७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

साधारण अधिवेशन

शनिवार तारीख २९ जून १९१२

सन्ध्या के ६ बजे। स्थान—सभाभवन।

(१) गत अधिवेशन (तारीख २५ मई १९१२) का कार्य विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) प्रबन्धकारिणी समिति के तारीख २७ और २८ अप्रेल १९१२ तथा १ जून १९१२ के कार्यविवरण सूचनार्थ पढ़े गए।

(३) निम्नलिखित सज्जन सभासद चुने गए—(१) बाबू विंध्येश्वरी प्रसाद मुदर्रिस पुरास पो० रसड़ा, बलिया १॥) (२) बाबू शीतल प्रसाद काशी १॥) (३) बाबू शारदा प्रसाद गुप्त, पो० अह-रौरा जि० मिर्जापुर ३) (४) बाबू पुरुषोत्तम दास वैष्णव, ठि० बाबू राम नारायण प्रसाद, शेरपुर, जि० मुज़फ्फरपुर ५॥) (५) बाबू केदार नाथ शर्मा ५५ टेम्पलरोड नेनाव सी० आई० १॥) (६) पण्डित लीला धर प्रसाद पांडे, मुख्तार, रूप कला कुञ्ज, छपरा ५॥) (७) पण्डित सिद्ध गोपाल पांडे, क्लर्क मुहकमा कमसरियट, रावल पिंडी १॥) ८ पण्डित उमाशङ्कर मिश्र, हेडक्लर्क, नं० ८ मूल बार रावलपिंडी, पंजाब १॥) ९ सेठ विट्ठल दास बाल मुकुन्द डागा, ठि० राय बहादुर सेठ धर्मालाल रामरत्न दास, १४७ कमर्शियल स्ट्रीट, बंगलोर ३) १० बाबू मदन गोपाल नागर, बीकानेर ३), ११ बाबू गंगा प्रसाद शाह, लालगंज, जि० मुज़फ्फर पुर १॥) १२ बाबू रामनाथ खंडेलवाल, पो० अहरौरा, मिर्जापुर १॥) १३ बाबू योगेन्द्र प्रसाद ठि० बाबू राजेन्द्र प्रसाद ८६ हरिश्चन्द्र मुखर्जी रोड, भवानीपुर कलकत्ता ५) १४ बाबू मथुरा प्रसाद सिंह बी० ए० विलकिन्स प्रेस ५९ कालेज स्क्वायर, कलकत्ता १॥) १५ राय हरदत्त प्रसाद २५ ईडेन हिन्दू होस्टल कलकत्ता १॥) १६ बाबू जगदीश नारायण सिंह क्वीन्स कालेज बोर्डिङ्ग हाउस, काशी ३) १७ बाबू राजवंशी सिंह अमीन, बिहार सर्व, पो० गगहा जि० गोरखपुर १॥) १८ पं० रामशरण पांडे, हेड मास्टर, मिडिल स्कूल, डुमरी, पो० बारा, जि० गोरखपुर ३)

(४) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफे उपस्थित किए गए:-१ बाबू मुन्नीलाल गर्ग, काशी २ पं० जगदेव मिश्र, बलिया ३ बा० हरीदास वल्लभदास, मिर्ज़ापुर ४ बा० नन्दलाल कुंज गली, काशी ५ बा० जगन्नाथ स्वरूप, काशी ६ बा० नौरङ्ग सिंह बसरकापुर, जि० बलिया।

निश्चय हुआ कि ये इस्तीफे स्वीकार किए जांय।

(५) उपमंत्री ने निम्नलिखित सभासदों की मृत्यु की सूचना दी। अर्थात् (१) राय परमेश्वरी नारायण मेहता, मुज़फ्फरपुर, (२) आनरेबल लाला रामानुज दयाल, मेरठ और ३ पं० मथुरा प्रसाद मिश्र, मिर्ज़ापुर।

सभा ने इस पर बड़ा शोक प्रगट किया।

(६) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईं:-बाबू मूलचन्द किसन दास कापड़िया, सम्पादक, दिगम्बर जैन, सूरत-कलियुग की कुलदेवी। पण्डित बालमुकुन्द झा दरभङ्गा मन्दिर, मुरादपुर, पटना-वर्ण धर्म व्यवस्था। पं० राम प्रसाद पुरुषार्थी, एडवर्ड प्रेस, बड़ा बाजार, मुंगेर-पुरुषार्थ धर्म का जगत प्रचार, लौकिक विषय, पारलौकिक विषय भाग १ और २, पूजा पाठ स्तुति और प्रार्थना का प्राण घातक परिणाम, ईश्वर दर्शन भाग १ और २, स्वामी दयानन्द मत खण्डन हवन के विषय में, स्वामी दयानन्द मत खण्डन मृतक संस्कार का विषय, पुरुषार्थ धर्म क्या है और क्या करना चाहता है। पण्डित रामावतार पाण्डेय एम. ए. पटना कालेज, बांकीपुर—Elementary Text Book of the eternal law. बाबू कन्हैया लाल बुकसेलर, पटना-शकुन्तला नाटक। कारोनेशन बुक डिपो, नया बाजार, भागलपुर हिन्दू धर्म की विशेषता, बालनीति विज्ञान, मनसा पूजा अर्थात् विपहरी। बाबू रामशरण लाल, रिटायर्ड डिप्टी पोस्ट-मास्टर, बनारस सिटी-ज्ञानहुलास भाग १ और २। श्रीयुत परम हंस जी, औरङ्गाबाद, गया-परमहंस सार संग्रह। बाबू राधामोहन गोकुल जी, नं०१७ पगैया पट्टी, कलकत्ता-निर्द्धन राम, हारेराम व कुमारी। स्वामी सतगुरु प्रसाद शरण, तुलसी आश्रम, बघौली, हरदोई-भक्ति दर्शन, उपदेश पुष्पाञ्जलि, भक्ति और उपासना, भ्रान्ति भञ्जन, कर्तव्य त्याग का फल। पण्डित कृष्णेश्वर शर्मा, काशी-जानवरों के चित्र। एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल-कलकत्ता Journal & Proceedings Vol. VII No 10 Vol. VII Extra No 1911, Vol. LXXV Part I of 1912, Index to Rare Moghal Coins. बनारस म्युनिसपेलिटी-Administration Report of Benares Manicipality for 1911-12.

संयुक्त प्रदेश की गवर्नमेंट Fauna of British India (coleopetra) District Gazetteer Vol IX of Farrukhabad संयुक्त प्रदेश की प्रदर्शिनी, ५ प्रति, United Provinces Exibition 1910-11 (5 copies) नुमाइश मुमालिक मुतहृद: (उर्दू) ५ प्रति Notes on the English Pre-mutiny Records in the United Provinces, List of Sanskrit and Hindi MSS. purchased in Sanskrit College Benares in 1910-11. खरीदी गईं तथा परिवर्तन में प्राप्त-सोना और सुगन्ध, भोजपुर की ठगी, भयानक भेदिया, भूतों का डेरा, भूतों की लड़ाई, चम्पावती, चोर की बहादुरी, विचित्र दगाबाज़ी, बनवारी दास की हत्या, हत्या रहस्य, दो मित्र, रानी पन्ना, विक्रमांक देव चरित (गुजराती) साठीना साहित्य नूं दिग्दर्शन (गुजराती) यूरोप मां बुद्धि स्वातंत्र्य (गुजराती) शाहंशाह बाबुमर (गुजराती), गुजराती भाषा नो कोश प्रथम भाग (गुजराती) मणमणि, राजसिंह, गोरीगिरीश, अद्भुत प्रायश्चित्त सच्ची मैत्री आदर्श भगिनी, सौन्दर्योपासक, बूढ़ा वर, किशोरी नरेन्द्र, नासी अय्यार, खून भरा हीरा, प्रेमा का खून, पुरानी ढब्बो का चरित्र महारानी पद्मिनी, चन्द्रकान्ता उपन्यास भाग १-४, चन्द्रकान्ता सन्तति भाग २, ३, ४ और ११, कमलकुमारी पहिला भाग कोशल किशोर दूसरा भाग, भूतनाथ पांचवां भाग, हरिश्चन्द्र मेगजीन प्रथम भाग, बालप्रभाकर दूसरा भाग, निबन्धमालादर्श हनुमन्नाटक, रसराज और बिहारी सतसई (हस्तलिखित)। Indian Antiquary for May 1912.

(७) प्रबन्धकारिणी समिति के प्रस्ताव पर सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि श्रीमान् महाराजा साहब बीकानेर ने अपने राज्य में हिन्दी को स्थान देकर उसका बड़ा उपकार किया है और वे सभा को भी समय समय पर सहायता देते रहते हैं। अतः वे इस सभा के संरक्षक चुने जांय और यह प्रस्ताव नियमानुसार स्वीकृति के लिये आगामी वार्षिक अधिवेशन में उपस्थित किया जाय।

सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

बालमुकुन्दवर्म्मा उपमंत्री

———

यह स्थान

विज्ञापन दाताओं

के

लिये खाली है ।

मंत्री

नागरीप्रचारिणी सभा

बनारस सिटी ।

National Library
Calcutta-27